सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक ग्रन्थमाला

बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन

लेखक

[redacted]

डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन

हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थ-माला १६

बुन्देली

का

भाषाशास्त्रीय अध्ययन

लेखक

डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल

एम०ए० (हिन्दी एवं तुलनात्मक भाषाशास्त्र), पी-एच०डी०

प्रधान संपादक

डॉ० दीनदयालु गुप्त

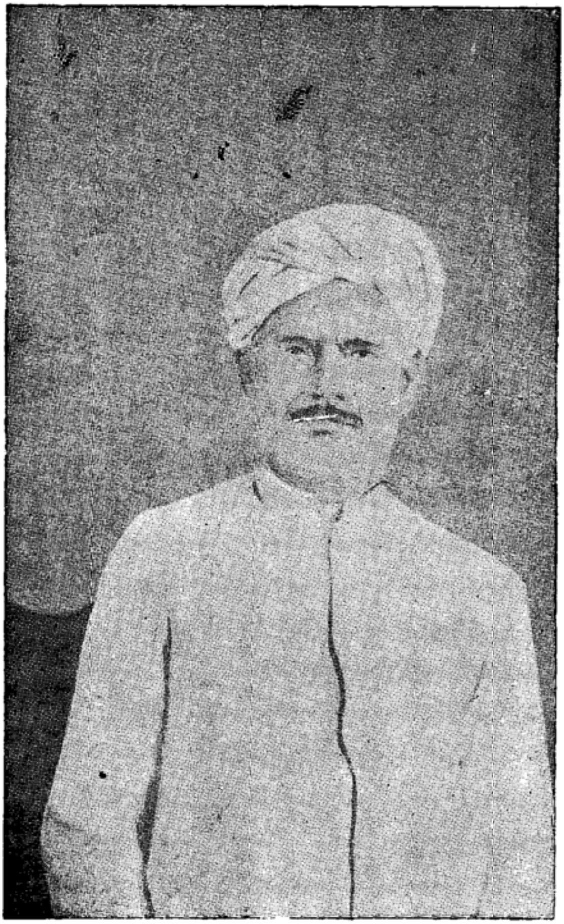
एम०ए०, एल०एल०बी०, डी०लिट्०

प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषाविभाग

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ
प्रथम संस्करण
जुलाई, १९६३

मूल्य १५ रु०

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिंटर्स
ऐशबाग रोड, लखनऊ–४.



स्वर्गीय सेठ श्री भोलाराम सेकसरिया

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत-जयन्ती के अवसर पर बिसवाँ-शुगर-फैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्च कोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थ माला' में संग्रथित होंगे। हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी साहित्य के भण्डार की समृद्धि करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त,
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी तथा
आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय।

परिचय

यों तो आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अध्ययन १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही प्रारंभ हो गया था और उस प्रारंभिक अध्ययन की पूर्णाहुति ग्यारह खंडों में प्रकाशित सर जार्ज ग्रियर्सन के 'भारतीय भाषाओं का सर्वे' (१८९४-१९२७ ई०) में हुई थी, किंतु एक-एक आधुनिक भाषा के सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन का पथ-प्रदर्शन प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् प्रो० ज्यूल ब्लाक ने 'मराठी भाषा' पर लिखी अपनी पुस्तक (१९१९) द्वारा किया था। उसके उपरान्त डा० सुनीति कुमार चैटर्जी का 'बंगाली भाषा की उत्पत्ति और विकास' पर महत्वपूर्ण अध्ययन (१९२६) में निकला था। हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं पर प्रारम्भिक कार्य डा० बाबूराम सक्सेना का 'अवधी का विकास' (१९३१) तथा लेखक का 'ब्रजभाषा' (१९३५) शीर्षक थे। इस अध्ययन शृंखला की नवीनतम कड़ी डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल का 'बुंदेली का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक प्रस्तुत अध्ययन है। उपर्युक्त कार्यों के समान यह भी विश्वविद्यालय के डाक्टरेट थीसिस के रूप में तैयार हुआ था।

डा० अग्रवाल के बुंदेली उपभाषा के इस अध्ययन की कई विशेषताएँ हैं। बुंदेली ध्वनियों का विश्लेषण नवीन वर्णनात्मक पद्धति के अनुसार किया गया है, बुंदेली के उपरूपों की विशेषताओं को विस्तार में दिया गया है, विषयप्रवेश में इस उपभाषा की 'ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' के संबंध में नवीन रोचक सामग्री है। अनेक महत्वपूर्ण परिशिष्टों के फलस्वरूप इस कृति की उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है, जैसे बुंदेली क्षेत्र के कुछ भाषा-संबंधी मानचित्र, बुंदेली के उपरूपों की तुलना की दृष्टि से संचित लगभग २०० वाक्यों की सूची, बुंदेली के लगभग १००० विशिष्ट शब्दों की सूची।

हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं से संबंधित अभी भी पर्याप्त कार्य शेष है। अनेक प्रमुख उपभाषाओं का अध्ययन होना बाकी है, उदाहरणार्थ खड़ी बोली का वर्णनात्मक अध्ययन अभी तक उपलब्ध नहीं है। प्रमुख भाषाओं के अध्ययनों के तैयार हो जाने पर हिन्दी प्रदेश की भाषा का पूर्ण ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक स्वरूप बनाना होगा। उसी प्रकार हिन्दी प्रदेश की शब्दावली का भी पूर्ण कोष तैयार होना है। इस प्रदेश की उपभाषाओं के नवीन,

पूर्ण तथा वैज्ञानिक भाषा-सर्वे फिर से होने की आवश्यकता है। इस प्रकार के अध्ययनों के समाप्त हो जाने पर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास भाषा-सामग्री के आधार पर लिखा जा सकता है। राजभाषा हिंदी के व्याकरणगत तथा कोशगत मानक रूपों को निर्धारित करने में भी उपर्युक्त अध्ययन विशेष सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

आशा है कि हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं की ध्वनियों, रूपों तथा शब्दावली के वैज्ञानिक वर्णनात्मक अध्ययनों की यह परंपरा नवयुवक विद्वानों के द्वारा शीघ्र सम्पन्न हो सकेगी, जिसमें इस प्रदेश के ऐतिहासिक, भौगोलिक, तुलनात्मक तथा सांस्कृतिक अध्ययनों को पूर्ण रूप दिया जा सके। मुझे वास्तविक प्रसन्नता है कि प्रदेश की उपभाषाओं के अध्ययन का जो कार्य हम लोगों ने लगभग तीस वर्ष पूर्व आरंभ किया था, वह डा० अग्रवाल जैसे सुयोग्य तथा उत्साही अध्यापकों के द्वारा निरंतर आगे बढ़ाया जा रहा है। मैं यह चाहूँगा कि यह उनका अंतिम कार्य न होकर इस क्षेत्र का प्रथम कार्य सिद्ध हो।

धीरेन्द्र वर्मा

भाषा विज्ञान विभाग,
सागर विश्वविद्यालय
जून २०, १९६३

वक्तव्य

भारतवर्ष में भाषाशास्त्र के अध्ययन की एक प्राचीन परम्परा रही है, जिसमें भाषा के विविध पक्षों का अध्ययन गम्भीर रूप में किया गया है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उत्थान के युग की कई शताब्दियों में यह अध्ययन रुका रहा, इसका कारण यही था कि उन शताब्दियों में अव्यवस्थित शासन और शिक्षा की दुर्व्यवस्था थी, परिणामतः जीवन के अन्य अनेक उपयोगी शास्त्रों का अध्ययन और अध्यापन बन्द था। जनता बहुधा अनपढ़ थी। पिछली दो शताब्दियों में यूरोपीय देशों ने सब प्रकार की उन्नति की और विविध शास्त्रों के मौलिक अध्ययन की रुचि वहाँ उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उपनिवेशन और ईसाई धर्म-प्रचार की क्रियाशीलता के साथ ही पाश्चात्य देशों में संसार की अनेक प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं के अध्ययन की जिज्ञासा भी बढ़ी। भारतवर्ष में आकर उन विदेशियों ने यहाँ की भाषाएँ सीखीं और संस्कृत भाषा के अतुल साहित्य-भण्डार का मन्थन किया। उन्होंने पाणिनि के अष्टाध्यायी जैसे संस्कृत के भाषाशास्त्रीय अध्ययनों से लाभ उठाया। इतना ही नहीं, उन विद्वानों ने भाषाशास्त्र के अध्ययन को अनेक नई दिशाएं प्रदान कीं, यही कारण है कि आज यह शास्त्र नृविज्ञान, समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, काव्यशास्त्र और अन्य अनेक ज्ञान और भावधाराओं के अध्ययन के लिए एक अनिवार्य साधन हो गया है।

भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ तथा बोलियाँ हैं। देश जिस प्रकार जाति-पाँति, मतपंथ और प्रदेशीय वर्गों में विभक्त है, उसी प्रकार यह अनेक भाषा-बोलियों में बँटा हुआ है। इस में जितने प्रकार की भाषाओं और जितने प्रकार की मानव-कोटियों के शास्त्रीय अध्ययन की गुंजाइश है उतनी किसी अन्य देश में नहीं है। आवश्यकता है, शिक्षा के प्रसार की, साथ ही, भारत की सुदीर्घ साहित्य-परम्परा तथा शास्त्रीय अध्ययनों के प्रति अभिरुचि उद्दीप्त करने की। विदेशी विद्वानों का अनुगमन उत्साहित कर सकता है परन्तु हमें नवीन अनुसंधानात्मक परख से अपनी परिस्थितियों के अनुकूल अपनी वस्तु के आँकने की मौलिक दृष्टि प्रदान नहीं कर सकता। ग्रीक, लैटिन, गॉथिक आदि भाषाओं पर आधारित विविध भाषाशास्त्रीय सिद्धान्तों के अन्धानुकरण का समय अब जाना चाहिए। इनसे प्रेरणा लेकर नयी दिशा और

नई गतिविधियों में हमें अपनी समस्या और अपनी निधि का अध्ययन करना चाहिए, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे प्राचीन साहित्य से अनेक क्षेत्रों में प्रेरक संकेत लिये और वे मौलिक अनुसन्धानों में प्रवृत्त हुए। सन्तोष की बात है कि भाषाशास्त्र और भारतीय विविध भाषा और बोलियों के अध्ययन में भारतीय विद्वानों की मौलिक अभिरुचि हुई है और उसके फलस्वरूप उच्च कोटि के ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। हिन्दी भाषा की बोलियों का भी अध्ययन हुआ है और उसकी बिखरी हुई भाषा-शक्ति बटोरी जा रही है।

हिन्दी की ब्रजी, अवधी तथा भोजपुरी बोलियों के अध्ययन का बड़ा सुन्दर कार्य विद्वानों ने किया था; परन्तु अनेक हिन्दी-बोलियों के शास्त्रीय अध्ययन अब भी अवशिष्ट हैं। बुन्देली एक बहुत विस्तृत भूभाग की प्रचलित उपभाषा है। उसके अध्ययन का कार्य सन् १९५३ में मैंने अपने अध्यवसायी शिष्य श्री रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल को दिया। डा० अग्रवाल हिन्दी भाषा और साहित्य के विद्वान और संस्कृत के अच्छे जानकार व्यक्ति हैं। साहित्य और भाषाशास्त्र, दोनों में प्रथम श्रेणी में एम०ए० परीक्षाएँ पास करने के बाद ये कई वर्षों से एम०ए० कक्षाओं का अध्यापन कार्य कर रहे हैं। इन्होंने पाश्चात्य और भारतीय, दोनों भाषा-अध्ययन प्रणालियों का समुचित ज्ञान प्राप्त किया है। अपने परिपक्व ज्ञान और अध्ययन के फलस्वरूप इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ को एक मौलिक अनुसन्धानात्मक प्रबन्ध-रूप में लिखा है। आशा है, देशी और विदेशी विद्वान इस ग्रन्थ का स्वागत करेंगे और डा० अग्रवाल भाषाशास्त्र के क्षेत्र में अपनी लेखिनी द्वारा और भी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर हिन्दी को समृद्ध बनायेंगे। उनकी मैं मंगल कामना करता हूँ।

डा० दीन दयालु गुप्त,
एम०ए०,एल-एल०बी०,डी०लिट्०,
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी तथा
आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
डीन, फैकल्टी ऑव् आर्ट्स्,
अध्यक्ष, हिन्दी-समिति,
उत्तरप्रदेश सरकार

लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ
जून १७, १९६३

दो शब्द

प्रस्तुत कृति लेखक के पी-एच०डी० प्रबन्ध 'ए डिस्क्रिप्टिव ऐनालिसिस ऑव बुन्देली' (A descriptive Analysis of Bundeli) का हिन्दी-अनुवाद है। मूल भी मुद्रण-सम्बन्धी कतिपय कठिनाइयों को पार कर शीघ्र ही प्रकाश में आ रहा है। इस अनुसंधान का कार्य 'बुन्देली भाषा का उद्भव और विकास' (औरीजिन एण्ड डेवलेपमेन्ट ऑफ बुन्देली लैंग्वेज) के रूप में सन् १९५३ में ही प्रारम्भ हो गया था। आवश्यक सामग्री संग्रह किए जाने पर लेखक को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि क्षेत्रीय प्राकृत और अपभ्रंश की समुचित सामग्री के अभाव में यह प्रयास पूर्वकृत कार्यों का प्रायः पिष्टपेषन-मात्र कहा जायगा। लेखक जब इसी असमंजस में पड़ा था, तभी डॉ सुमित्रमंगेश कत्रे के सत्प्रयत्नों ने भारतीय भाषाशास्त्र को एक नई दिशा प्रदान की। लेखक ने उनके इस प्रयास का शक्त्यनुसार लाभ उठाया, परन्तु 'अर्थ' को 'भाषा' से 'बलपूर्वक दूर ले जाने वाली' आधुनिक भाषाशास्त्र की 'उपसर्गीय' प्रवृत्ति से आविर्भूत होकर इस यज्ञ में दीक्षित कतिपय साहसिकों ने पुराने खेवे के भाषा-इतिहास के कार्यों को हेय-दृष्टि से देखना प्रारंभ कर दिया है; ऐसी स्थिति में लेखक अपनी इस कृति के सम्बन्ध में क्या कहे! उसकी दृष्टि से तो इस प्रबन्ध में आलोच्य-क्षेत्र की संकालिक भाषा का विशुद्ध व्याकरण-पक्ष सबल है परन्तु भाषा-विशेष की भौगोलिक व्यापकता का सर्वेक्षण, भाषा के ऐतिहासिक संकेतों के उद्घाटन से लेखक को न रोक सका। परिणामतः प्रबन्ध का वर्तमान रूप 'बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन' पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें इतना कुछ अवश्य मिलेगा कि गुरुजनों को निराश न होना पड़ेगा; शेष, सहृदय आलोचकों की सेवा में सादर प्रस्तुत है।

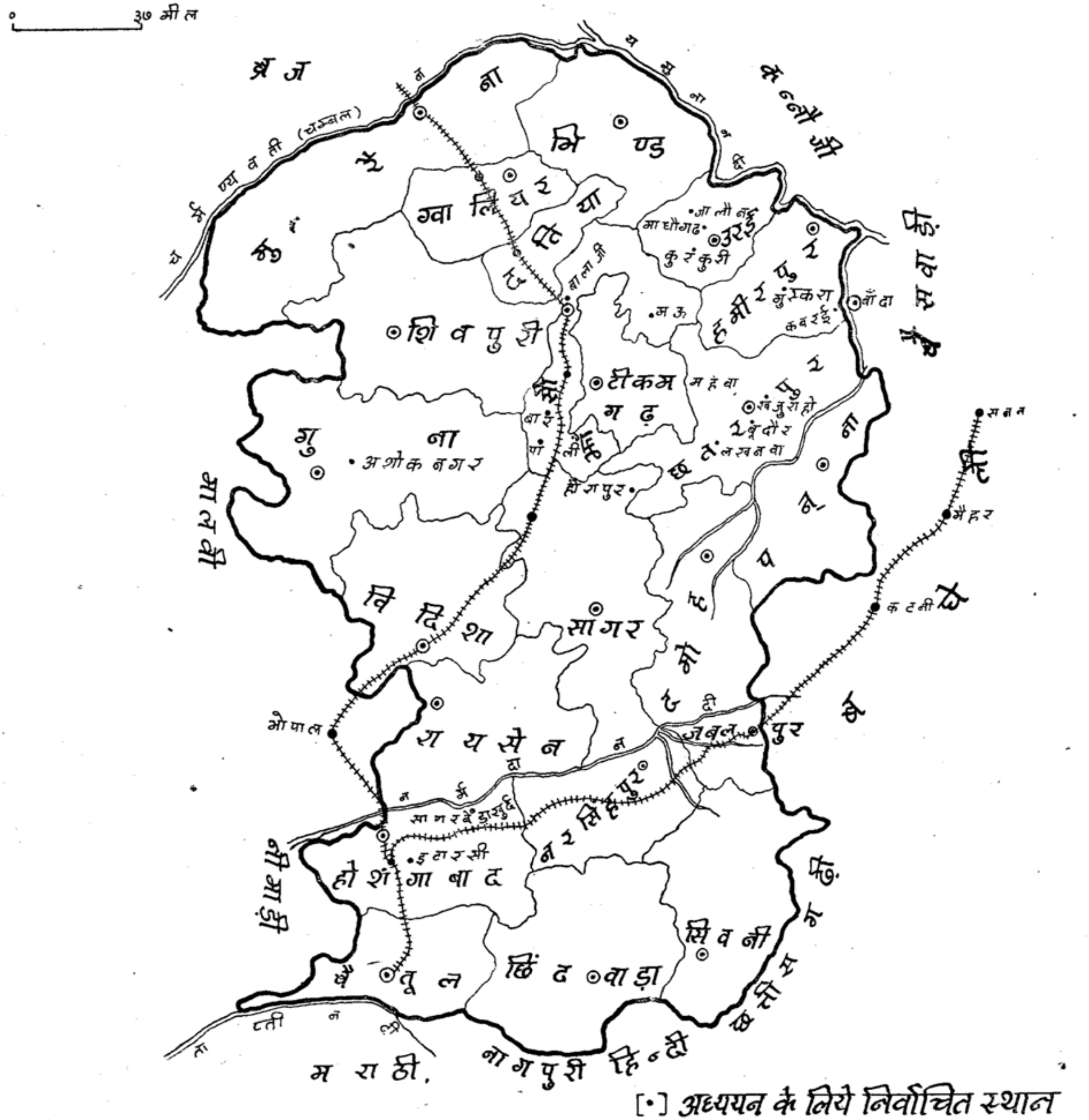
लेखक प्रेरणा-स्रोत संपूज्य डॉ दीनदयालु जी गुप्त तथा प्रबन्ध-निर्देशक आदरणीय डॉ० सरयूप्रसाद जी अग्रवाल का आजन्म ऋणी है, साथ ही, विद्वान एवं सहृदय परीक्षक-द्वय — गुरुवर डॉ० सुकुमार सेन, खैरा प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा आदरणीय डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, निदेशक, हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार—का विनत होकर आभार मानता है जिन्होंने प्रबन्ध को पी-एच०डी० के लिए स्वीकार करके उसे कृतार्थ किया है।

—लेखक

विषय-सूची

परिशिष्ट

बुन्देली भाषा-क्षेत्र



[•] अध्ययन के लिये निर्वाचित स्थान

विषय प्रवेश

गिरिराज विन्ध्य के अंचल में शत-शत निर्झरियों द्वारा पोषित इस दिव्य बुन्देल-भूमि को प्रकृति का सुन्दर वरदान तो मिला ही है; साथ ही, यह इतिहास के अनादि स्रोत से भारत के सांस्कृतिक वैभव का यशस्वी केन्द्र भी रही है। भू-तत्त्वान्वेषियों से छिपा नहीं है कि खटिका युग (Cretaceous period) से ही इस जरठा धरणी ने कितने भीम-भयंकर भूकम्पों का सामना किया है, कितने सागरों का अन्त देखा है। इतिहास के विद्यार्थी को भलीभाँति ज्ञात है कि महर्षि अगस्त्य और रघुवंशी राम के दक्षिणापथीय सांस्कृतिक अभियान यहीं से प्रारम्भ हुए; शुंग-सम्राट पुष्यमित्र और 'सर्वराज्योच्छेत्ता' समुद्रगुप्त की दिग्विजय तथा मौर्याधिपति अशोक की धर्म-विजय-सम्बन्धी गाथाएँ आज भी इस प्रदेश के पत्थरों पर अंकित हैं; भारतीय-हृदयों को अनुप्राणित करने वाली शकारि विक्रमादित्य और महाराज भोजकी कहानियों के जन्मदाता इसी प्रदेश के रत्न थे; चंदेलों का वैभव और पराभव, आन पर मर मिटने वाले बुन्देलों की आहुतियाँ, गोंडों के प्रभुत्व-सन्देश इस बात के साक्षी हैं कि भारत के हृदय-तल पर सुशोभित यह प्रदेश 'भारत का सच्चा हृदय' है।

इस बुन्देल-भूमि की राजनैतिक सीमाएँ नैतिक-विग्रहों के कारण समय-समय पर संकुचित एवं व्यापक होती रही हैं—'इत जमुना उत नरमदा, इत चम्बल उत टौंस'—उत्तर में पुण्य-सलिला यमुना, दक्षिण में प्रपात-रमणीया नर्मदा, पूर्वभाग में आदिकवि की वाणी से पवित्र हुई तमसा (टौंस) और पश्चिमी सीमा पर पुराण-चर्चित चर्मण्यवती (चम्बल)—यह सीमा बुन्देलखण्ड-केसरी महाराज छत्रसाल की कही जाती है, क्योंकि दोहे का अर्धांश इस तथ्य की पुष्टि कर रहा है—'छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस'। इतिहासज्ञ इस वीर-बुन्देला का स्थिति-काल सन् १६४८ ई० से १७३१ ई० तक मानते हैं।[1] इस प्रकार बुन्देलखण्ड की यह सीमा अधिक पुरानी नहीं कही जा सकती।

---

१. **बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी, पृ० १६३, २३१**

इस भू-भाग के बुन्देलखण्ड नाम की कल्पना ५००—६०० वर्षों से अधिक पुरानी नहीं जान पड़ती। जनश्रुति तो यह है कि गहरवारवंशीय काशीश्वर विन्ध्यराज की वंश-परम्परा में उत्पन्न हुए महाराज हेमकरन ने (जिनको इतिहासकारों ने वीर पंचम के नाम से अभिहित किया है) भाइयों द्वारा छीने हुए अपने राज्य की प्राप्ति के लिए 'विन्ध्यवासिनी देवी[1]' को प्रसन्न किया। आत्मोत्सर्ग के लिए उठी हुई करबाल की एक खरोंच मस्तक में लग गई और रुधिर का एक सबल विन्दु पृथ्वी पर जा गिरा, फलस्वरूप वीर पंचम की संतति 'बुन्देला' क्षत्रिय (बूँद < सं० विन्दु, कें प्रभाव सें राज्य-प्राप्ति) के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी जनश्रुति का आधार लेकर महाराज छत्रसाल के राजकवि गोरेलाल उपनाम 'लाल' कवि ने 'छत्र प्रकाश' में बुन्देला नाम की कल्पना की है :

'प्रथमहि राज आपनौ पावौ, परभुव भोगनहार कहावौ।
यह कहि हाथ माथ पर राखे, पुहुमी प्रगट बुन्देला भाखे ।।[2]'

इस जनश्रुति के आधार पर बहुत ही स्पष्ट जान पड़ता है कि वे गहरवारवंशीय काशीस्थ क्षत्रिय जिन्होंने किन्हीं कारणोंवश काशी से भागकर विन्ध्यभूमि में अपना प्रभुत्व स्थापित किया[3], विन्ध्य से सम्पर्क

---

१. **अनार्यों की प्रसिद्ध देवी, देखिए 'गउडवहो', श्लोक संख्या २८५–२३७, विन्ध्य के उत्तर-पूर्व अञ्चल में इनका प्रसिद्ध मन्दिर है।**

२. **छत्रप्रकाश—सम्पादक—श्यामसुन्दर दास, (ना० प्र० सभा, काशी) पृ० ७।**

३. Arjunpāl Gaharwār who had been encouraged by the goddess, with a promise that he should found the Bundelā Rāj, entered the service of the khangār chief who appointed him **बक्सी** of his army. On an occasion when the khangār had gone towards Bāndā to attend a wedding, Arjunpāl attacking slew them all. From his time, i.e. to say, from the year 1400 **संवत्**, is the date of the rise of Bundelā Rāj.

J. A. S. B. 1881, history of Bundelkhand.
by V. A. Smith.

(For other version of the story, where Pancham Singh had been used in place of Arjunpāl, see the same.)

रखने के कारण *विन्ध्येले > *विन्देले > 'बुन्देले' कहलाए[१]। विन्ध्य की अटवियों में रहने वाली जातियों का स्मरण 'विन्ध्य' के आधार पर किया जाता रहा है; यथा—'विन्ध्यवासिनः' (वायुपुराण १३१) 'विन्ध्यपृष्ठ-निवासिनः' (वायुपुराण १३४) 'विन्ध्य के वासी....' (तुलसी, कवितावली) आदि। 'विन्ध्यराज' 'विन्ध्यशक्ति' आदि व्यक्तिसूचक नामों का भी प्रयोग हुआ है। स्थान के आधार पर जातियों के नाम और जातियों के आधार पर स्थानों का नामकरण करने की प्रथा सामान्य है।[२] अतः स्पष्ट है कि 'बुन्देला' नाम 'विन्ध्य' से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है, जो इस जाति के व्यापक प्रभुत्व में आने पर अधिकाधिक प्रचलित होने लगा होगा। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि 'बुन्देलखण्ड' नाम परवर्त्ती है और बुन्देला जाति के राज्य-विस्तार के आधार पर कल्पित किया गया है।

'इण्डियन गजेटियर्स' (Indian Gazetteers) में दी हुई बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमाएँ पूर्णरूपेण वे ही हैं जो बुन्देल-वीर छत्रसाल के राज्य-विस्तार के लिए ऊपर उद्धृत की जा चुकी हैं। आधुनिकतम राजनैतिक विभाजन के आधार पर हम इस भू-भाग के अन्तर्गत आने वाले जिलों की परिगणना इस प्रकार करा सकते हैं :—

उत्तर प्रदेश—(i) जालौन (ii) हमीरपुर (iii) झाँसी (iv) बाँदा

मध्य प्रदेश—(v) टीकमगढ़ (vi) छतरपुर (vii) पन्ना (vii) दमोह (ix) सागर (x) नरसिंहपुर (xi) भिण्ड (xii) दतिया (xiii) ग्वालियर (xiv) शिवपुरी (xv) मुरैना (xvi) गुना (xvii) विदिशा (xviii) रायसेन (xix) होशंगाबाद

---

१. तुलना कीजिए—रुहेला-(रोह = पर्वत) से सम्बन्ध रखने वाले। बनेला—बन से सम्बन्ध रखने वाले। इसी प्रकार व्याघ्रदेव से सम्बन्ध रखने वाले बघेले तथा चन्द्रात्रेय से सम्बन्ध रखने वाले चन्देले।

२. हिन्दी के अभ्युदय काल में कबीलों और जातियों के आधार पर स्थान-नामकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है—बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड ही नहीं बैसवाड़ा, भीलवाड़ा, राजपूताना, गौंडवाना आदि।

क्षेत्रीय भाषा अथवा बोली के लिए 'बुंदेलखण्डी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सर जार्ज ए० ग्रियर्सन (Sir G. A. Grierson) द्वारा किया हुआ जान पड़ता है, क्योंकि १८४३ ई० में मेजर आर० लीच, सी० बी० (Major R. Leech, C. B.) ने इसे बुन्देलखण्ड की हिन्दुवी बोली (Hinduvee dialect of Bundelkhanda) कहा है।[१] स्थानवाची होने के कारण अधिक उपयुक्त होते हुए भी यह नाम श्रुति-मधुर नहीं कहा जा सकता; अतएव तुलना में अल्पाक्षरात्मक 'बुन्देली' शब्द का प्रयोग समीचीन समझा गया है। भाषा-व्यापकता की दृष्टि से उक्त सीमा में कुछ परिवर्तन आवश्यक होंगे; जैसे नर्मदा के दक्षिण में स्थित 'छिंदवाड़ा', 'सिवनी' तथा 'बैतूल' के जिले मराठी-मिश्रित होते हुए भी बुन्देली-भाषा-भाषी ही ठहरेंगे, साथ ही, पूर्व-स्थित 'बाँदा' जिला बुन्देली के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता।

स्वाभाविक प्रान्तों की पहिचान भाषा और बोली की एकता से ही नहीं होती, अपितु इसके लिए भौगोलिक एकता और पिछले इतिहास में एक साथ रहने की प्रवृत्ति पर भी ध्यान देना होता है। इस दृष्टि से यहाँ बुन्देलखण्ड की भौगोलिक गठन पर विचार कर सकते हैं :—'विन्ध्याचल के उत्तरी और दक्षिणी तट के बीच इतना बड़ा विस्तृत देश और रचना में वह उत्तर भारत के मैदान से इतना भिन्न है कि उसे उत्तर भारत में नहीं गिना जा सकता; विन्ध्य मेखला को दक्षिण में गिनना तो किसी को अभीष्ट न होगा। ×××× कलकत्ते से सूरत तक का रेल-पथ उसी रेखा को सूचित करता है। वह विन्ध्यमेखला और दक्षिण भारत की ठीक विभाजक रेखा है।'[२] उपरिकथित बुन्देली भाषा की उत्तर-दक्षिण सीमा इस भौगोलिक सीमा का अक्षरशः अनुकरण कर रही है।

'समूची विन्ध्यमेखला के पश्चिम से पूरब, गुजरात के अतिरिक्त, पाँच टुकड़े हैं :—१. राजपूताना २. मालवा का पठार ३. बुन्देलखण्ड ४. बघेलखण्ड-छत्तीसगढ़ ५. झाड़खण्ड; बुन्देलखण्ड में बेतवा (वेत्रवती), धसान (दशार्ण) और केन (शुक्तिमती) के काँठे, नर्मदा की उपरली घाटी और पंचमढ़ी से अमरकण्टक तक ऋक्षपर्वत का हिस्सा सम्मिलित है; उसकी पूर्वी सीमा टौंस (तमसा) नदी है। ×××× इस प्रकार बेतवा और

१. J.A.S.B. Vol. XII–'A Hinduvee Dialect of Bundelkhanda.'
२. भारतभूमि और उसके निवासी—जयचन्द्र विद्यालङ्कार, पृ० ६५।

केन काँठों तथा नर्मदा के उपरले काँठे वाला प्रदेश बुन्देलखण्ड है।'[1] वस्तुतः बुन्देली भाषा की अनिर्वचनीय एकता का दर्शन कराने वाला भू-भाग यही है।

सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता अर्थात् भारतीय इतिहास में एक साथ रहने की प्रवृत्ति पर भी विचार कर लेना चाहिए। बुन्देली जनता में अति प्रचलित एक बुझौवल है :

भैंस बंधी है ओरछै, पड़ा होशंगाबाद।
लगवैया है सागरै, चपिया रेवा–पार॥

इस दोहे में वस्तुतः बुन्देली (या बुन्देलखण्ड) की सीमा ही निर्धारित कर दी गई है; पर यह जनोक्ति भी अधिक पुरानी नहीं जान पड़ती, क्योंकि होशंगाबाद पन्द्रहवीं शती के प्रथम दशक में[2] और ओरछा सन् १५३१ में बसाया गया था[3]। सम्भवतः ओरछा राज्य के अभ्युदय ने ही इस उक्ति को जन्म दिया होगा। कुछ भी हो, सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता तो इस उक्ति के मूल में है ही। एक ही व्रत-उत्सव और तीज-त्योहार इस भू-खण्ड पर सभी जगह मनाए जाते हैं। वही कजरियाँ बरुआ सागर से लेकर गढ़ा-मँडला के गंगासागर तक बोई जाती हैं और 'कजरियों की लड़ाई' उसी चाव से गाँव-गाँव के ढोल-मँजीरों पर गूँजती है। एक छोर से दूसरे छोर तक वही 'फागैं' और 'राई' की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

रही, राज्य-सूत्र-संचालन की एकता। उसका प्रभाव भी भाषा को सुगठित करने में सहायक होता है। उसकी चर्चा बुन्देली भाषा के अनुमानित इतिहास के साथ-साथ की जा रही है।

प्राचीन लोक-साहित्य-सामग्री के अभाव में किसी भी भाषा का सुगठित एवं प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करना संभव नहीं। बुन्देली ही क्यों, अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए पर्याप्त मात्रा में अनुमान का सहारा लेना पड़ा है; क्योंकि भारतीय भाषाओं की साहित्यिक प्राकृतों एवं अपभ्रंशों की सामग्री अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध हो सकी है। दूसरे, आज की

१. भारतभूमि और उसके निवासी—जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ० ६५।
२–३. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी, पृ० १२४।

भाँति प्राचीन युग में क्षेत्रीय बोली-रूपों को स्पष्ट करने वाली सामग्री के संकलन का प्रयास नहीं हुआ था। यही कारण है कि साहित्य-समृद्ध पालि भाषा को विकसित करने का गौरव किस क्षेत्रीय भाषा को प्राप्त है, इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पैशाची एवं महाराष्ट्री प्राकृतों की आधारभूत जनपदीय बोलियाँ कौन-सी हैं, यह अब भी सुनिश्चित नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान बुन्देली का ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक ऐक्य हिन्दी की पश्चिमी बोलियों से है, अर्थात् ब्रज एवं खड़ी बोली से उसका नैकट्य (affiliation) प्रमाण-सिद्ध है, परन्तु प्राचीन आर्य भाषा संस्कृत से लेकर अद्यावधि बुन्देलखण्ड की प्रदेशीय भाषाएँ कौन-कौन सी रही हैं, इस सम्बन्ध में अधिक प्रामाणिकता के साथ भाषाविज्ञानेतर (non-linguistic) कारण ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

कालक्रमानुसार भारतीय आर्य भाषाओं का विकास तीन युगों में विभाजित करके देखा गया है :—

i) १५०० ई० पू०……………५०० ई० पू०। यह युग बुद्ध के पूर्व का है। जबकि साहित्यिक भाषाएँ छान्दस एवं संस्कृत थीं।

ii) ५०० ई० पू०………१००० ई०। इस युग की साहित्यिक भाषाएँ—पाली, क्षेत्रीय प्राकृतें एवं अपभ्रंशें थीं, साथ ही, शिष्ट-जन-परग्रहीत राष्ट्रभाषा संस्कृत का प्रसार भी व्यापक था।

iii) १००० ई० से अद्यावधि। इसे भाषा शास्त्रियों ने 'भाषा युग' की संज्ञा दी है।

वस्तुतः प्रागैतिहासिक वैदिक बोलियाँ ही व्यक्ति-देश-काल-भेद के अनुसार विकसित होकर आज आधुनिक आर्य भाषाओं के रूप में प्राप्त हैं।

भाषा की दृष्टि से जिसे हम संस्कृत-युग कहते हैं, भारतीय इतिहास में उसे प्रागैतिहासिक युग कहा गया है। उस समय बुन्देलखण्ड की स्थिति क्या थी, इसकी जानकारी पुराणों से होती है। वैवस्वत मनु की वंश परम्परा में महाराज ययाति के पाँच पुत्र हुए—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। साम्राज्य विभाजन में यदु को चर्मण्यवती, वेत्रवती तथा शुक्तिमती की धाराओं से अभि-

सिंचित प्रदेश हुआ। कालान्तर में महाराज चिदि के नाम पर इस वंश का नाम 'चेदि' पड़ा। इस प्रकार चेदि नाम शुरू-शुरू में चम्बल और केन के बीच यमुना के दक्षिणी प्रदेश अर्थात् केवल उत्तरी बुन्देलखण्ड का था। आधुनिक बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग उसमें कब से सम्मिलित हुआ, उसका कोई पुष्ट ऐतिहासिक निर्देश नहीं मिलता;[१] किन्तु बोली की एकता सिद्ध करती है कि चेदि लोग बहुत आरंभकाल से ही जमुना-प्रदेश से दूर दक्षिण तक समूचे बुन्देलखण्ड में पहुंच गए थे।[२]

रामायण काल में विन्ध्य अंचल में अनार्यों की अधिकाधिक बस्तियाँ थीं। निषाद, गुह, शबर आदि जातियों तथा ताड़का, सुबाहु, मारीच, कबन्ध आदि असुरों की क्रीड़ा-स्थली यहीं थी। पर साथ ही आर्यों के उपनिवेश भी स्थापित हो गये थे–अत्रि, बाल्मीकि, भरद्वाज, विश्वामित्र आदि आर्य-ऋषियों की यज्ञ-वेदिकाओं की पवित्र भूमि भी यही थी। इस प्रकार आर्य-द्राविड़-संस्कृति का संधि-स्थल आधुनिक बुन्देलखण्ड (बघेलखण्ड) भी जान पड़ता है। आज भी इस क्षेत्र की कोल, भील, गोंड, सहरिया, खेरुवा आदि अर्धविकसित जातियों में उनकी अपनी भाषाएँ सुरक्षित हैं।[३] संभव है आधार (Substratum) रूप में इनकी भाषाएँ भी बुंदेली के विकास में सहयोगी हुई हों और क्या आश्चर्य, यदि वैदिक भाषा का भारतीयकरण भी इसी प्रदेश में हुआ हो!

१. इतिहास प्रवेश—जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ० ९५।

२. विष्णुधर्मोत्तर पुराण

'चैद्यनैषधयोः पूर्वे विन्ध्यक्षेत्राच्च पश्चिमे।
रेवायमुनोर्मध्ये युद्धदेश इतीर्यते।।'

३. मध्य प्रदेश का इतिहास—डा० हीरालाल, पृ० ५–६ :—
मध्य प्रदेश में कोई ४५ प्रकार की जंगली जातियाँ पाई जाती हैं, इन सबमें गोंडों की संख्या सबसे अधिक है। इनकी जनसंख्या करीब २२ लाख है। आर्यों ने इनको पशु समान समझ कर घृणासूचक गौंड की उपाधि दी जिसका यथार्थ अर्थ उनकी भाषा में ढोर (पशु) होता है। ....सहस्रों वर्ष व्यतीत हो जाने के कारण बहुतेरे गौंड यह नहीं जानते कि रावण कौन है, पर वे अपने को अब भी रावणवंशी कहते हैं। कोई चार सौ वर्ष पूर्व जब इस प्रदेश में गोंडों का राज्य हुआ तब अपने सिक्कों पर इन्होंने पौलस्त्य वंश अंकित किया।

प्राकृत-युग (५०० ई० पू०—१००० ई०) : इस युग के प्रथम चरण को (५०० ई० पू०……२०० ई० पू०) भारतीय इतिहास में 'जन-साम्राज्यों का युग' कहा गया है।[1] महात्मा गौतम बुद्ध ने धर्म-प्रचार के लिए लोकभाषाओं को अपनाया और अर्थशास्त्री कौटिल्य ने लोक-मत को राजनीति-शास्त्र में स्थान दिया।[2] सम्राट अशोक ने अपने राज्य-संचालन में उसी लोक-मत और लोक-भाषा का व्यावहारिक रूप प्रदर्शित किया। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए 'अशोक के शिलालेख' तद्युगीन लोक-भाषाओं के प्रामाणिक (Authentic) नमूने कहे गए हैं।[3]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है 'पालि' का मूल-आधार किस क्षेत्र की भाषा है, विद्वान इस सम्बंध में एकमत नहीं हैं। सिंहली-परम्परा पालि को 'मागधीक' भाषा कहती है। इसमें सन्देह नहीं कि बुद्ध जी के प्रवचन इसी क्षेत्रीय भाषा में हुए होंगे, परन्तु व्याकरणिक गठन उसे मध्यदेशीया कहने के लिए वाध्य करती है। यथा :

१. प्राकृत-वैय्याकरणों द्वारा प्राप्त मागधी की प्रमुख भाषा-विशेषताएँ पाली में नहीं मिलतीं।[4]

---

१. **मध्यभारत का इतिहास - हरिहर निवास द्विवेदी, पृ० १६५ :—**
'सोलह जनपद' इस युग में एक मुहावरा-सा बन गया था। उन सोलह में ये आठ जोड़ियाँ थीं—१. अंग-मगध २. काशी-कोशल ३. वृजि-मल्ल ४. चेदि-वत्स ५. कुरु-पांचाल ६. मत्स्य-शूरसेन ७. अश्मक-अवन्ति ८. गान्धार-कम्बोज।

२. **तुलना कीजिये :—**
तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत………………वह (राजा) अपने प्रजा वर्ग के समान ही शील, वेष, भाषा तथा आचरण का ग्रहण करें। कौटलीय अर्थशास्त्र-अनुवादक-प्रो० उदयवीर शास्त्री, पृ० ५८१

३. 'The Ashokan Inscriptions are the oldest and best contemporary records of M. I. A.' Comparative Grammar of Middle Indo-Aryan Languages—Dr. Sukumar Sen, P. 5

४. The chief distinguishing features of Magadhi, as we know them from the Grammarians, are un-known to Pali. Viz.
i) The mutation of every r into l and every s into sh;
ii) The ending—e in nom. sing. mas. & neu. of a stem.
Pali Language and Literature Translated by B. K. Ghosh, P. 3.

सिंचित प्रदेश हुआ। कालान्तर में महाराज चिदि के नाम पर इस वंश का नाम 'चेदि' पड़ा। इस प्रकार चेदि नाम शुरू-शुरू में चम्बल और केन के बीच यमुना के दक्षिणी प्रदेश अर्थात् केवल उत्तरी बुन्देलखण्ड का था। आधुनिक बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग उसमें कब से सम्मिलित हुआ, उसका कोई पुष्ट ऐतिहासिक निर्देश नहीं मिलता;[१] किन्तु बोली की एकता सिद्ध करती है कि चेदि लोग बहुत आरंभकाल से ही जमुना-प्रदेश से दूर दक्षिण तक समूचे बुन्देलखण्ड में पहुंच गए थे[२]

रामायण काल में विन्ध्य अंचल में अनार्यों की अधिकाधिक बस्तियाँ थीं। निषाद, गुह, शबर आदि जातियों तथा ताड़का, सुबाहु, मारीच, कबन्ध आदि असुरों की क्रीड़ा-स्थली यहीं थी। पर साथ ही आर्यों के उपनिवेश भी स्थापित हो गये थे–अत्रि, बाल्मीकि, भरद्वाज, विश्वामित्र आदि आर्य-ऋषियों की यज्ञ-वेदिकाओं की पवित्र भूमि भी यही थी। इस प्रकार आर्य-द्राविड़-संस्कृति का संधि-स्थल आधुनिक बुन्देलखण्ड (बघेलखण्ड) भी जान पड़ता है। आज भी इस क्षेत्र की कोल, भील, गोंड, सहरिया, खेरुवा आदि अर्धविकसित जातियों में उनकी अपनी भाषाएँ सुरक्षित हैं।[३] संभव है आधार (Substratum) रूप में इनकी भाषाएँ भी बुंदेली के विकास में सहयोगी हुई हों और क्या आश्चर्य, यदि वैदिक भाषा का भारतीयकरण भी इसी प्रदेश में हुआ हो !

---

१. इतिहास प्रवेश—जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ० ९५।

२. विष्णुधर्मोत्तर पुराण

'चैद्यनैषधयोः पूर्वे विन्ध्यक्षेत्राच्च पश्चिमे।
रेवायमुनोर्मध्ये युद्धदेश इतीर्यते॥'

३. मध्य प्रदेश का इतिहास—डा० हीरालाल, पृ० ५–६ :—
मध्य प्रदेश में कोई ४५ प्रकार की जंगली जातियाँ पाई जाती हैं, इन सबमें गोंडों की संख्या सबसे अधिक है। इनकी जनसंख्या करीब २२ लाख है। आर्यों ने इनको पशु समान समझ कर घृणासूचक गौंड की उपाधि दी जिसका यथार्थ अर्थ उनकी भाषा में ढोर (पशु) होता है। ....सहस्त्रों वर्ष व्यतीत हो जाने के कारण बहुतेरे गौंड यह नहीं जानते कि रावण कौन है, पर वे अपने को अब भी रावणवंशी कहते हैं। कोई चार सौ वर्ष पूर्व जब इस प्रदेश में गोंडों का राज्य हुआ तब अपने सिक्कों पर इन्होंने पौलस्त्य वंश अंकित किया।

२. पाली का

i) गिरनार के अशोकी शिलालेख की भाषा[१] तथा

ii) विन्ध्य-क्षेत्र की पैशाची भाषा से निकट का सम्बन्ध है[२]।

इसके अतिरिक्त कुछ भाषा-इतर कारण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं ;

i) साँची-भरहुत के बौद्धोपासना स्तूप अधिकाधिक संख्या में इस क्षेत्र में मिले हैं।

ii) महान् अशोक अपने पिता विन्दुसार के राजत्वकाल में अठारह वर्ष तक 'अवन्ति' का शासक बनकर इस प्रदेश में रहा था और विदिशा की श्रेष्ठि-पुत्री से उसने विवाह किया था, उससे उसके संघमित्रा और महेन्द्र दो संतानें हुई थीं.......जब अशोक ने इन संघमित्रा और महेन्द्र को धर्म-प्रचार के लिए सिंहल-द्वीप भेजा, तब स्वभावतः

---

१. i) Pāli, a purely Literary (religious) language cultivated in the South-West and the South and under a growing influence of Sanskrit, shows good affinity with the South-Western dialect of Asokan, Page, 14.

ii) ये उज्जयिनी की उस भाषा में हैं जिसका पालि के साथ अधिक साम्य है, पाइअ सद्द महण्णव—भूमिका, पृष्ठ ३१, हरगोविंद त्रिविक्रम चन्द सेठ :

२. सच तो यह है कि पालि भाषा का शौरसेनी और मागधी की अपेक्षा पैशाची के साथ ही अधिक सादृश्य है जो निम्न उदाहरणों से स्पष्ट जाना जा सकता है:—

		सं०	पालि	पैशाची	शौरसेनी	मागधी
i) स्वरमध्यवर्त्ती	—क—	लोक	लोक	लोक	लोअ	लोअ
	—ग—	नग	नग	नग	णअ	णअ
	—च—	शची	सची	सची	सई	शई
	—ज—	रजत	रजत	रजत	रअद	लअद
ii) सर्वत्र	श, ष, स,	श, ष,स	स	स	स	श
iii) सर्वत	न	न	न	न	ण	ण

पाइअ सद्द महण्णव, पृष्ठ १४. १५,

वे धम्मपद आदि बुद्धागम साहित्य को, जिसका दूसरी-तीसरी-संगीति के पश्चात् 'थेरवाद' रूप इस समय तक बन चुका था, मध्यदेशीया इसी शौरसेनी में ही अपने साथ ले गए। वहाँ उसका सिंहली-भाषा में अनुवाद हुआ परन्तु सौभाग्य से गाथाएँ ज्यों की त्यों मूल शौरसेनी में सुरक्षित रहीं। पीछे जब भारत में इस साहित्य का लोप हुआ, तब बुद्धघोष ने इसी सिंहली अनुवाद से उसका पुनः पालि-अनुवाद किया और इस अनुवाद में ये गाथाएँ ज्यों की त्यों लौट आईं। इन गाथाओं को ही पालि कहा जाता है।[1]

उक्त तथ्यों से ऐसा जान पड़ता है कि 'पालि' तद्युगीन 'दाशार्णी' (बुन्देली) का आश्रय लेकर ही विकसित हुई होगी और यही कारण है कि वह एक ओर शौरसेनी, दूसरी ओर अर्धमागधी तथा तीसरी ओर पैशाची प्राकृतों से समानता रखती है[2]।

---

१. भारतीय इतिहास की रूप-रेखा—जय चन्द्र विद्यालंकार, पृष्ठ ३८९.

2. i) The essentials of Pali phonology and morphology agree with Shaurseni of the second M. I. A. period more than with any other form of M. I. A. (The Origon and Development of the Bengali language by Dr. S. K. Chatterjee, Introduction 'Origion of Literary Pali'. page 57) and 'Pali is the precursor of shaurseni' Indo-Aryan and Hindi by the same author.

ii) There are many remarkable analogies precisely between Arsa (Ardhamāgadhi) and Pali in vocabulary and morphology. Pali, therefore, might be regarded as a kind of Ardhamagadhi. Pali language and literature. by Dr. B. K. Ghose, Introduction, page 5.

iii) पाइअ सद्द महण्णव—पृष्ठ १४ तथा History of Sanskrit language by A. B. Keith, Page 29.

प्राकृत-युग का दूसरा चरण लगभग २०० ई० पू० से ५०० ई० तक माना जाता है। भारतीय इतिहास में यह युग 'हिन्दू-संस्कृति निर्माण-युग' कहा गया है। निरर्थक कर्म-काण्ड का विरोध करते हुए महात्मा गौतम बुद्ध ने जिस आचार-प्रधान धर्म को देकर आर्यावर्त में एक नया जीवन फूँका था, उस में अब मंदता आने लगी थी। अन्तिम मौर्यों ने जब उस धर्म की आड़ में अपनी कायरता को छिपाना चाहा, तब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और एक नए पौराणिक धर्म का अभ्युदय हुआ। बौद्ध-धर्म यदि जनता के लिए था तो वैदिक धर्म का यह नया रूप भी उससे बढ़कर जनता का धर्म बनकर आया। इस नूतन संस्कृति के विधायक कहे गए हैं विदिशा के पुष्यमित्र शुंग, उज्जयिनी के विश्रुत 'हिन्दू-संवत्-प्रवर्त्तक' महाराज विक्रमादित्य, उछेहरा (आधुनिक पन्ना के पास) के प्रसिद्ध वाकाटक सम्राट 'विन्ध्यशक्ति और प्रवरसेन'[१] तथा पद्मावती (आधुनिक पवाँया) के भारशिव नाग। निस्संदेह इस युग में बुन्देलखंड संस्कृति-विधायकों से घिरा हुआ था।

इस युग का संस्कृत वाङ्मय अपने वैदिक वाङ्मय से विषय और भाषा-शैली दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त भिन्नता रखता है। प्राकृत के प्रथम चरण से ही संस्कृत बोलचाल की भाषा न रह गई थी और अब तक तो भारत तथा वृहत्तर भारत में यह शिष्ट-सुसंस्कृत व्यक्तियों के विचार-विनिमय की भाषा हो गई थी और उसका यह रूप १६वीं सदी तक साहित्यिकों तथा वाङ्मय-कारों द्वारा सँवारा जाता रहा।

---

१. **वाकाटक वंश :—द्विजः प्रकाशो भुवि विन्ध्यशक्तिः। पुराणों में इस राजवंश को 'विन्ध्यक' या विन्ध्य देश का राजवंश' कहा गया है। जिससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि ये लोग विन्ध्य प्रदेश के रहने वाले थे। विदिशा के नागों और प्रवरिक का उल्लेख करते समय भागवत पुराण में इन सब को एक ही वर्ग में रखकर 'किलकिला के राजा लोग' कहा गया है, इसका अभिप्राय यही है कि उक्त पुराण मालवा, विदिशा और किलकिला को एक ही प्रदेश मानता है। इस प्रकार सभी सम्मतियों के अनुसार इस राजवंश का स्थान बुंदेलखण्ड में ठहरता है।**

'अंधकार युगीन भारत'—काशीप्रसाद जायसवाल, अनु० रामचन्द्र वर्मा, ना० प्र० सभा काशी, पृष्ठ १४४, १४५.

पालि, जिसका विकास प्राकृत-युग के प्रथम चरण में ही हो चुका था, मध्यदेश में स्थित होने के कारण, सरलता से प्रान्तीय स्तर से उठकर भारत की एक व्यापक भाषा बनने का गौरव प्राप्त कर सकती थी, परन्तु इस नए धर्मान्दोलन से, जिसे राजाश्रय प्राप्त था, उसे बड़ा व्याघात पहुंचा और वह केवल बौद्ध-साहित्य की भाषा बनकर धार्मिक क्षेत्र में ही सीमित रह गई। वैदिक धर्म की इन बदली हुई परिस्थितियों का प्रभाव बौद्ध-धर्म पर भी पड़ा। फलस्वरूप 'महायान' बौद्धों का एक नया सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ, जिसने महात्मा बुद्ध की चेतावनी पर ध्यान न देकर[1] बौद्ध ग्रंथों के लिए संस्कृत भाषा का आश्रय लिया। अतः संस्कृत-प्रवेश (infiltration) से भी पालि भाषा की व्यापकता संभव न हो सकी।

अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास प्रभृति कवियों के नाटकों में तथा अन्यान्य प्राकृत-वैय्याकरणों के ग्रन्थों में पाई जाने वाली प्राकृतें अपने बोलचाल के रूप का विकास अशोक के पूर्व ही कर चुकी थीं। क्योंकि अशोक के प्रसिद्ध शिलालेखों के अतिरिक्त, साँची एवं भरहुत के प्राकृत-अभिलेख (inscriptions) जो कि भारत में एक ही स्थान में पाए जाने वाले प्राकृत-अभिलेखों में संख्या में सर्वाधिक हैं, २०० ई० पू० तक के हैं। ब्हूलर का मत है कि इन अभिलेखों की भाषा साहित्यिक पाली से बहुत कम भिन्नता रखती है और पद-रचना पाली तथा गिरनार- शिलालेख के ही समान है।[2] उक्त कथन से आभास मिलता है कि आलोच्य क्षेत्र में पालि को जन्म देने वाली क्षेत्रीय प्राकृत का विकास हो रहा था। भारतीय कथा साहित्य का मूल-स्रोत गुणाढ्य की बड्डकहा (वृहत्कथा) इसी विकसित रूप का ही

---

१. **भिक्षुओ, बुद्ध-वचन को छंद में न करना चाहिए। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' अपराध लगेगा .... अनुजानामि भिक्खवे, सकाय निरूत्तिया बुद्धवचनं परियापुणितं (अनुमति देता हूं, भिक्षुओं, अपनी भाषा में बुद्ध-वचन सीखने की। पालि महा व्याकरण-भिक्षु जगदीश काश्यप, भूमिका, पृष्ठ-६.**

२. Buhler offers the following remarks on the language representcd by these inscriptions, "The language of these inscriptions differ very little from the literary Pali and the word-forms are in general of the type of Pali and of Ashoka's Girnar-edict. Historical Grammar of Inscriptional Prakrits-by Dr. M. A. Mahendale, Page-148.

परिणाम कहा जा सकता है। ईसा की प्रथम सदी की यह रचना विन्ध्याटवी में पाई जाने वाली जंगली जातियों की जन-कथाओं का एक संग्रह कही गई है। कथा सरित्सागर का यह उल्लेख, 'कि गुणाढ्य ने यह पैशाची विन्ध्यवासिनी स्थान के पश्चिम में अवन्ति के आस-पास कहीं भूत-पिशाचों की बातें सुनकर सीखी थी[१]; वररुचि के प्राकृत-प्रकाश का यह सूत्र 'पैशाची प्रकृतिः शौरसेनी'[२]; तथा राजशेखर का यह श्लोकांश, 'आवन्त्याः पारियात्राः सहदशपुरजैः भूतभाषां भजन्ते'[३], एक साथ मिलाकर देखने से ज्ञात होता है कि पैशाची भी 'आलोच्य-क्षेत्र' की ही भाषा थी जो ईसा की आरंभिक सदी में 'जन-भाषा' का रूप प्राप्त कर चुकी थी।

प्राकृत का तृतीय चरण, जिसे भाषाशास्त्रियों ने 'अपभ्रंश-युग' कहा है, ५०० ई० से १००० ई० तक चलता है। इस काल में राजसत्ता तो विभिन्न वंशों में हस्तातंरित हुई, पर गुप्तों द्वारा व्यवस्थित शासन-प्रणाली लगभग ज्यों की त्यों बनी रही। शासन के अन्तर्गत ग्रामों-नगरों आदि की पंचायतें स्थानीय प्रबन्ध स्वतंत्रता से करती थीं। व्यापारियों के 'निगम', कारीगरों की 'श्रेणियाँ' तथा शिल्पियों के 'संघटन' कमाधिक मात्रा में अपना पुराना आदर्श अपनाए हुए थीं; उनकी अपनी मुहरें थीं। स म्राज्य 'देशों' अथवा 'भुक्तियों' में विभाजित था। आलोच्य क्षेत्र (यमुना-नर्मदा का मध्यवर्ती प्रदेश) एक ऐसी ही सुगठित इकाई थी जिस पर सम्राट द्वारा नियत सामन्त शासन किया करता था। 'जेजा' कन्नौज-साम्राज्यान्तर्गत ऐसा ही एक सामन्त था जिसकी सुव्यवस्था की ऐसी धूम मची कि जब इस वंश ने अपने को स्वतंत्र घोषित किया, तब इसके नाम पर ही, जेजाक भुक्ति > जेजाहुति > जुझौति, इस प्रदेश का नाम चल पड़ा[४]। ठीकइसी प्रकार भाषा की आन्तरिक व्यवस्था मे भी कोई अभूतपूर्व परिवर्तन नहीं मिलता[५]।

---

१. मध्यभारत का इतिहास-हरिहर निवास द्विवेदी, पृष्ठ-५२.

२. दशमः परिच्छेदः।२।.

३. काव्यमीमांसा दशमोऽध्यायः-

४. महोबा लेख—(इलाहाबाद के अजायबघर में सुरक्षित)
'जिस प्रकार पृथु से पृथ्वी कहलाई, उसी प्रकार 'जेजा' से 'जेजाभुक्ति'।
बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी, पृष्ठ ५०.

५. तथा प्राकृतमेवापभ्रंश··········तस्य च लक्षणं लोकादेव सम्यगवसेयम्।
नमिसाधु (१०६९ ई०), काव्यालंकार वृत्ति.

देश-काल-भेद के अनुसार जो परिवर्तन स्वाभाविक हैं वे ही इस युग की देन हैं। 'उकार' की प्रवृत्ति जो संस्कृत—अः से चलकर प्राकृत—ओ में परिवर्तित होकर–उ बन रही थी, सबसे पहिले ३०० ई० में आभीर क्षेत्रों (सिन्धु-सौवीर) में परिलक्षित हुई थी।[1] यही प्रवृत्ति अन्य क्षेत्रों में विकसित हुई तथा अन्य कतिपय विकसित प्रवृत्तियों को लेकर, वह अपभ्रंश (अवहंस, अवहट्ट) भाषा कहलाई। छठीं-सातवीं सदी तक इसका रूप निखर चुका था[2] और दसवीं सदी तक यह देश-भेद के आधार पर कई क्षेत्रीय रूपों में परिलक्षित की जा चुकी थी।[3] ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि अपने-अपने राज्यों को ही 'राष्ट्र' समझने वाली संकीर्ण राज-नैतिक-इकाइयों में देश बँटता जा रहा था। फिर भी यह संकीर्णता अथवा प्रान्तीयता प्रधानतः 'जन-भाषा' में रही। काव्य-भाषा में यह देशी शब्दा-वली रूप में ही स्थान पा सकी जो नगण्य नहीं। यह 'काव्य-भाषा' पश्चिमी क्षेत्र की अपभ्रंश थी, परन्तु जैसा नमिसाधु कहते हैं—'क्वचिन्मागध्यापि दृश्यते'-स्वतंत्र रूप से एक पूर्वी अपभ्रंश का भी विकास हो रहा था।

भारतीय आर्य भाषाओं का तीसरा काल जिसे 'भाषा-युग' कहा गया है, १००० ई० से प्रारम्भ होता है। भारतीय जन जीवन में यह युग राजनैतिक चेतना के ह्रास का युग था। भिक्षुओं के दल के दल तमाश-बीन होकर देखते रहे और इधर अरबों ने सिंध को विजय कर लिया। मिहिरभोज ऐसा प्रतापी सम्राट मुलतान को केवल इसलिए नहीं ले सका कि वहाँ के मुस्लिम शासकों ने धमकी दी थी कि आगे बढ़ोगे तो हम सूर्य मंदिर तोड़ देंगे। चालुक्यराज जयसिंह भी विजय-प्राति के लिए सिद्धियों,

---

१. **हिमवत् सिन्धु सौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः।**
उकार बहुलां तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत् ।। भरत नाट्यशास्त्र १७.६२.

२. "The different references to Ap. Lit. show that Ap. was rising slowly as an Abhir-dialect to that of literary importance during 300-600 A. D. Its importance went on increasing as centuries rolled on and it finally became equal in status to Sanskrit, Prakrit by 10th C. A. D. It retained this to the end of 12th C. A. D."
Historical Grammar of Apabhransa by G. V. Tagare, Page-9.

३. **प्राकृतसंकृतमागधपिशाचशौरसेनी च।**
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः। रुद्रट, काव्यालंकार, २-१२.

पर आश्रित थे। तब सामान्य जनता का क्या कहना, शासन के प्रति उनकी उपेक्षा स्वाभाविक थी। १०वीं सदी तक ह्रास थोड़ा है, इसके बाद यकायक अधिक।

धर्म-कर्म में अंधविश्वास बढ़ने से धर्म के प्रति भी जागरूकता कम होती गई। यदि बौद्धावलम्बी वाममार्गी साधनाओं में व्यस्त थे, तो पुराणधर्मी बाह्याडम्बरों में प्रवृत्त। इस युग के धर्म-सम्प्रदायों की संख्या भारत की एक अभूतपूर्व घटना कही जा सकती है। विचारों की प्रगति रुक जाने से सामाजिक जीवन भी अत्यधिक विश्रृंखलित हो गया। जातियों में ऊँच-नीच का भाव, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, समुद्र-यात्रा-निषेध आदि संकीर्णताएँ भारत में १०वीं सदी से १६वीं सदी तक धीरे-धीरे आईं।

इन परिस्थितियों का प्रभाव समाज को एक सूत्र में बाँधने के माध्यम 'भाषा' पर पड़ना स्वाभाविक है। वस्तुतः इस संक्रान्ति-युग (१०वीं सदी से १६वीं सदी तक) की भाषा-विविधता भाषा शास्त्रियों के लिए विवाद का विषय बनी हुई है। तद्युगीन हिन्दी-भाषा की तीन धाराएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं:—

i) **राज दरबारी भट्ट—नायकों द्वारा पोषित रासोग्रंथों की भाषा**:—आधारभूत शब्दावलि (Basic Vocabulary) तथा व्याकरणिक ढाँचा तो नव्य भारतीय आर्य भाषाओं का मिल रहा है, परन्तु प्राकृत-अपभ्रंश-शब्दावली की प्रचुरता के कारण भाषा में कृत्रिमता अधिक आ गई है। षड्भाषा के प्रति कवि की आस्था तथा हिन्दी के आदिकालीन निर्विभक्तिक प्रयोगों के कारण 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा तो अपभ्रंश के अधिक निकट पहुँच गई है।[१]

ii) **भारतीय संतों द्वारा अपनायी गई सधुक्कड़ी-भाषा**—यह भारत की एक व्यापक काव्य-भाषा का प्रतिनिधित्व करती जान पड़ती है। चाहे महाराष्ट्र-संत नामदेव और तुकाराम हों या पंजाब के गुरु नानक अथवा पूर्वाञ्चल

१—**पृथ्वीराज रासो की भाषा—डा० नामवरसिंह, पृष्ठ-३३.**

कबीर, सभी ने जिस भाषा का प्रयोग किया है. उसका व्याकरणिक ढाँचा, प्रथम वर्ग की भाषा से बहुत भिन्न नहीं कहा जा सकता। फिर भी खड़ी बोली के विशेष पुट एवं प्रान्तीय शब्दावली की प्रचुरता के कारण उन सबका काव्य जनसाधारण के अधिक निकट आ गया है। वस्तुतः यह भाषा तीसरे वर्ग की क्षेत्रीय बोलियों की सूचना ऊँचे स्वर के साथ दे रही है।

iii) **प्रान्तीय जनभाषाएँ**:—९वीं सदी से १२वीं सदी तक के भारत में न जाने कितने सामन्ती राज्यों का अभ्युदय हुआ—जेजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चन्देले, छत्तीसगढ़ के कलचुरि, अवध के गहरवार, बिहार के पाल, बंगाल के सेन, अजमेर के चौहान, मालवा के परमार, काठियावाड़ के चालुक्य और पूर्वी राजपूताने के कछवाहे—इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि बहुत-सी प्राचीन उपजातियाँ और गण-गोत्र मिलकर नवोदित जातियों और क्षुद्र राष्ट्रों का रूप धारण कर रहे थे। इन रजवाड़ों के राजदरबारों में चाहे कृत्रिम साहित्यिक भाषा को ही प्रश्रय मिला हो परन्तु जातियों की भिन्न इकाइयों के आधार पर भाषा-इकाइयों का अभ्युदय अवश्य माना जा सकता है। यही कारण है कि इस युग में एक ओर विद्यापति ने मैथिली को, सिद्धों ने मगही को, सूफी संतों ने अवधी को, ग्वालियर के चतुरों ने ग्वालियरी को और अमीर खुसरो ने खड़ी बोली को अपनाया। वस्तुतः यह युग जनभाषाओं के अभ्युदय का था।

विकास के इस युग में भी विन्ध्यक्षेत्रीय बुन्देली का स्वतंत्र साहित्यिक विकास न हो पाया। इसका प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि कलाप्रिय तोमरों के राज्य-केन्द्र ग्वालियर की भाषा 'ग्वालियरी' एक ओर ब्रज का तथा दूसरी ओर बुन्देली का साहित्यिक उत्तरदायित्व सँभाल रही थी। काव्य-रसिक ओरछा भी 'ग्वालियरी' के अत्यधिक निकट था। अतएव बुन्देली का विशिष्ट रूप निखार में न आ सका। फिर भी ब्रज भाषा के परवर्ती साहित्यिक रूप में बुन्देली के योगदान को सरलता से समझा जा सकता है। यथा—

लोगों ने हीन-भावना के दर्शन किए हैं, अतएव भाषा-निष्कर्षों का ही सहारा लेना अधिक उचित समझा गया है। वस्तुतः वह दृष्टिकोण भी अव्यावहारिक नहीं, क्योंकि जातीय एकता की सुदृढ़ इकाइयों के आधार पर ही नामों को स्थायित्व मिलता है। 'बुन्देली' नाम का प्रचलन ऐसी ही प्रवृत्ति का परिचायक है।

क्षेत्रीय रूपों को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ बुन्देली की सामान्य व्याकरणिक विशेषताओं का उल्लेख करना चाहेंगे। बुन्देली की ये निम्न विशेषताएँ दाशार्णी (धसान) द्वारा अभिसिंचित भू-प्रदेश में भली-भाँति देखी जा सकती हैं। वस्तुतः यह प्रदेश ही बुन्देलखण्ड का मध्यवर्ती और भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। भारतीय इतिहास में 'दशार्ण' जनपद का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। इस प्रदेश में, चाहे तुर्क हों, चाहे मुगल, किन्हीं का भी स्थायी प्रभाव न रह सका। अंग्रेजों के आने पर भी 'सेन्ट्रल एजेन्सीज़' (Central Agencies) के रूप में इसने अपना भिन्न अस्तित्व बनाए रखा। यदि हम भाषाओं के नामकरण के लिए पुरातनोन्मुख हों यथा—कौरवी, पांचाली, कोशली—तो निस्सन्देह बुन्देली का सर्वाधिक उपयुक्त नाम 'दाशार्णी' होगा। इस 'दाशार्णी' की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१. खड़ी बोली (-आ) और ब्रज (-औ) की तुलना में यह ओकारांत भाषा है:—

बुन्देली	खड़ीबोली	ब्रज
माथो	माथा	माथौ
मोओ	मेरा	मेरौ
कर्रो	कड़ा	करौ
गओ	गया	गयौ
ऐसो	ऐसा	ऐसौ

२. स्वर मध्यवर्त्ती एवं शब्दांत महाप्राण ध्वनियों के महाप्राणत्व का ह्रास बुन्देली की उल्लेखनीय प्रवृति है। यथा :—

गदा < गधा
जाँग < जाँघ
कई < कही
दूद < दूध

३. जहाँ तक भाषा की विविध व्याकरणिक विशेषताओं की संख्या का सम्बंध है, बुंदेली अपनी समीपवर्त्ती भाषाओं—एक ओर ब्रज और मालवी तथा दूसरी ओर बैसवाड़ी और बघेली – का ध्यान रखती हुई मध्यम-मार्ग का अनुसरण करती है। यथा :—

अ. सर्वनाम-रूप :—

	ब्रज	बुन्देली	अवधी
(i)	या	ई	ए
	वा	ऊ	ओ
	का	की	के
	जा	जी	जे
(ii)	मेरौ	मोओ	मोर
	तेरौ	तोओ	तोर

ब. सहायक-क्रियाएं :—

(i) वर्तमान

बुन्देली		बैसवाड़ी	
आँव	आँय	आहिवँ	आहिन
आय	आव	आहि	आहिव
आय	आँय	आही, आय	आहीं

(ii) भूत

बुन्देली	ब्रज
तो, ते, ती, तीं	(i) हतो, हते, हती, हतीं
	(ii) हो, हे, ही, हीं

(iii) भविष्यत्-रचना ऐतिहासिक-ह्-(सं०-स्य-) पर आधारित है, किन्तु बाह्य प्रभावों के रूप में ब्रज का -ग्- और अवधी का -ब्- भी सीमावर्त्ती क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं । (मानचित्र परिशिष्ट)

स. (i) वर्त्तमान काल की रचना -उ- विकरण लेने से होती है जबकि ब्रज में -व् और बैसवाड़ी में -न्- विकरण से। यथा :—

ब्रज	बुन्देली	बैसवाड़ी
आवतु	आउत	आबत

और (ii) ये वर्त्तमानकालिक रूप वचन एवं लिंग के अनुसार परिवर्तित नहीं होते, जैसे ब्रज और खड़ी बोली में होते हैं :—

	ब्रज	खड़ी बोली	बुन्देली
पु० एक व०	-तु	-ता	-त
स्त्री० एक व०	-ति	-ती	
पुं० बहु व०	-त	-ते	
स्त्री० बहु व०	-तिँ	-तीँ	

४. क्रियार्थक संज्ञाएं -बी एवं -बु केवल बुन्देली क्षेत्र तक ही सीमित हैं।

५. निपात ई (=ही) एवं ऊ (=हू) अनोखे ढंग से जोड़े जाते हैं जो अन्य भाषाओं में नहीं हैं। यथा:—राम ऊ चरन खों = रामचरण को भी आदि।

६. आय (< सं० अयं) भाषा में उल्लेखनीय रूप से प्रयुक्त होता है।

७. बुन्देली का आदरार्थक रूप जू (= जी) लगभग १४वीं सदी का है; हओ जू, काए जू, हाँ जू आदि।

खाँ बोली

'दाशार्णी' के आधार पर दी हुई 'बुन्देली' की विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि वह अपनी व्याकरणिक संयोजना में एक ओर ब्रज और मालवी से तो दूसरी ओर अवधी और बघेली से भिन्नता रखती है। पर दाशार्णी के अतिरिक्त शेष बुन्देली क्षेत्र के बोली-रूप सीमावर्तिनी भाषाओं से प्रभावित हैं। विशेषकर इस कारण, जिस समय आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हो रहा था, उस समय राजनैतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड सुगठित इकाई के रूप में नहीं था। उत्तर-पूर्व में चन्देलों का राज्य था जिनकी राजधानियाँ महोबा, कालिंजर या खजुराहो थीं। इस राज्य की पश्चिमी सीमा धसान नदी तक रही, कभी-कभी बेतवा तक। बुन्देली की खाँ-बोली की पश्चिमी सीमा भी बेतवा तक पहुंचती है। नहीं कहा जा सकता कि इन राजनैतिक इकाइयों का

कहाँ तक प्रभाव भाषा के विकास में पड़ता है ! इसके पश्चात् बुन्देलों के चरम विकास के अवसरों पर भी महोबा कभी बुन्देलों के अधिकार में नहीं आया, कड़ा के मुसलमानी सरकार के अधीन रहा। महोबा का दक्षिणी-पूर्वी भाग जो आज भी 'बनपरी' (बनाफरी) कहलाता है तथा उत्तरवर्त्ती क्षेत्र–राजपूतों की प्रधानता के कारण जो रजपुतानौ कहलाता है, निश्चय ही क्रम से बघेली और बैसवाड़ी बोलियों से मिश्रित बुन्देली का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं, यहाँ के ब्राह्मण भी शादी-विवाह में पूर्वी भागों से बँधे हुए हैं। अतएव हम इस खाँ-बोली को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—बेतवा तटवर्त्ती जलालपुर से वर्मा नदी के किनारे-किनारे यदि हम महोबा और पन्ना को मिलाएं तो निश्चय ही इस रेखा के पूर्व भाग की बोलियाँ उत्तर में बैसवाड़ी और दक्षिण में बघेली से प्रभावित कही जायेंगी; तथा पश्चिमी भाग विशुद्ध बुन्देली का क्षेत्र कहा जाएगा। नीचे जो विशेषताएँ इस बोली की दी जा रही हैं, वे पूर्व भाग पर तो पूरी तौर से घटित होती हैं, साथ ही पश्चिमी भाग में भी कम नहीं है :—

१. स्वरमध्यवर्त्ती तथा शब्दांत महाप्राण ध्वनियाँ पूर्ण रूप से अल्पप्राण नहीं हुई हैं, जैसे :—

कहनैं = कहना

कभत = कहता

मोहै = मुझको

२. प्रसरित संज्ञा-रूप भी कम मात्रा में नहीं मिलते। (बैसवाड़ी से तुलनीय)

बैलवा = बैल

घुड़वा = घोड़ा

बसुरवा = भंगी

बसुरिया = भंगिन

पड़वा = भैंस का बच्चा

३. निपात आय। (बघेली से तुलनीय)

४. कारण सूचके कृदन्त -ऐं। (बैसवाड़ी से तुलनीय)

कहैं सैं = कहने से
कहैं मैं = कहने में
खाऐं कौ = खाने का

५. ए-, ओ-, जे-, के- सार्वनामिक रूप। (बैसवाड़ी से तुलनीय)

६. -बी या -हन भविष्यत्काल के उत्तम पुरुष बहुवचन रूपों की बैसवाड़ी से तुलना की जा सकती है। यथा—

हम आबी या आहन = हम आयेंगे।
हम करबी या करहन = हम करेंगे।

७. 'आय' सहित वर्तमान कालिक सहायक क्रियाएँ?[1]

८. शब्दादि में महाप्राण सहित कारक चिह्न।[2]

कौं बोली

विकास के इस युग में (१००० ई०) बेतवा का उत्तरवर्त्ती प्रदेश कभी कछवाहों और कभी चौहानों के अधिकार में रहा, तुर्की राज्य भी इसी उत्तरी मैदान तक सीमित था तथा अलाउद्दीन की विजय-यात्राएँ इसी उत्तरी बुन्देलखण्ड-मार्ग से, जो कालपी होता हुआ झाँसी रेल-मार्ग से मिलता है, होती रहीं। इसके दक्षिणवर्ती प्रदेश में मुगलों का राज्य कभी स्थायी न रह सका। इन राजनैतिक परिस्थितियों के कारण यह प्रदेश दशार्ण-प्रदेश से अलग रहा और शूरसेन प्रदेश के निकट होने के कारण इस प्रदेश में आधुनिक ब्रज से समानता रखने वाली कुछ विशेषताएँ मिलती हैं। यथा :—

१. संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण के औकारांत रूप; जैसे :—

माथौ = माथा
मोरौ = मेरा
बड़ौ = बड़ा

२.-ग्- प्रत्यययुक्त भविष्यत्-रचना।

३. सार्वनामिक विकारी रूप बाय, जाय आदि.

---

१. **पद रचना, क्रिया, ५.**
२. **पद रचना, सर्वनाम-कारक चिन्ह.**

खौं बोली

अब हम 'दाशार्णी' के दक्षिणी प्रदेश में आयेंगे जिसे खों-बोली कहा गया है। यह प्रदेश दक्षिण की ओर कुछ नुकीला होता गया है । उत्तर से दक्षिण को मिलाने वाले दो महा जन-मार्ग प्रसिद्ध थे । प्रयाग से इटारसी जाने वाला रेल-मार्ग एक की और ग्वालियर से इटारसी जाने वाला रेल-मार्ग दूसरे की संभावित सीमा का निर्देश कर रहा है । दूसरा मार्ग घूमता हुआ सम्भवतः पवाँया (प्राचीन पद्मावती) होता हुआ विदिशा और उज्जैनी को छूता था। वस्तुतः इन दोनों मार्गों के बीच का प्रदेश ही खों—बोली का क्षेत्र है । हमें ज्ञात है कि विकास के उस युग में इस प्रदेश पर कलचुरियों (प्राचीन चेदि वंश) का राज्य था जिनकी राजधानियाँ तेवर (त्रिपुरी) तथा चंदेरी (झाँसी जिला का दक्षिणतम भाग) थीं। जान पड़ता है चन्देलों तथा कलचुरियों की राज्य-सीमाएँ ही खाँ और खों बोलियों की अनुमानित विभाजक रेखाएँ होंगी। क्योंकि खों का प्रयोग एक ओर ललितपुर, टीकमगढ़, गुना क्षेत्र में मिल रहा है तो दूसरी ओर सागर और विदिशा में। इसके विपरीत खाँ का प्रयोग उत्तर में दशार्ण के मुहाने से लेकर दमोह-जबलपुर की सीमा तक मिलता है। इस प्रदेश की पश्चिमी सीमा अव्यवस्थित रही है। धार-राज्य (बाद में मालवा) सागर को अपने में शताब्दियों तक समेटे रहा। १४वीं सदी के प्रारंभिक दशक से ही मालवा मुसलमानों के सुनिश्चित अधिकार में आ गया और उसकी पूर्वी सीमा सागर तथा चंदेरी को छूती रही। स्वाभाविक है कि नवीनता के रूप में भाषा-गत कुछ विशेषताएँ मालवी से समानता रखेंगी।

इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण बात जो कि इस बोली-रूप में मिल रही है, वह है खड़ी बोली हिन्दी की तीन व्याकरणिक विशेषताओं का इस क्षेत्रीय भाषा में प्रवेश।

१—भविष्यत् कालिक रचना के लिए -ग्- कृदन्तीय रूपों का विकास।

२—विकारी बहुवचन प्रत्यय—ओं।

३—स्त्रीलिंग –ऊ,–आ संज्ञाओं का मूल रूप बहुवचन प्रत्यय–ऐं।

उक्त क्षेत्र की तद्युगीन सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करने से इस पश्चिमी प्रभाव को समझा जा सकता है। प्रमुख कारण यह जान पड़ता है

कि "तुर्कों द्वारा उत्तर भारत के विजयकाल से उत्तर-भारत के (विशेषतः पंजाबी और पछाँही) मुसलमानों के साथ-साथ वहाँ हिन्दू (राजपूत, जाट, बनिया, कायस्थ आदि) भी पर्याप्त संख्या में दक्षिण में जा बसे।"[1] उत्तरी भारत के खत्रियों के दक्षिण में बसने की एक रोचक घटना का उल्लेख आचार्य विनयमोहन शर्मा ने किया है।[2]

वस्तुतः 'दक्खिनी' के प्रभावस्वरूप ही उक्त व्याकरणिक विशेषताओं का प्रवेश बुन्देली में हुआ है। वैसे उत्तरी भारत से सन्तों के दक्षिण-प्रवेश की परम्परा तो ग्यारहवीं सदी में ही शुरू हो गई थी। इस प्रवेश का राज-मार्ग वही था जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, क्योंकि कमाधिक मात्रा में उपर्युक्त तीनों विशेषताएँ ग्वालियर-गुना (मालवा) और भिलसा होती हुई ही नर्मदा के दोनों काँठों में फैली है और सागर की पश्चिमी सीमा को छू रही हैं।

---

१. ना० प्र० पत्रिका–'दखिनी हिन्दी का गद्य और पद्य'—श्रीराम शर्मा, पृष्ठ ७३।

२. "चौदहवीं सदी में बहमनी साम्राज्य के शासक मुहम्मद प्रथम ने अपनी रियासत से सोने का सिक्का चलाना चाहा पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते थे, इसलिए मुहम्मद ने राज्य भर के सुनारों को मरवा डाला और उत्तर भारत से खत्रियों को ला बसाया।"

ध्वनिविचार

१. उच्चारण-विधि को ध्यान में रखते हुए बुन्देली की दस भिन्न स्वर-ध्वनियों को चार्ट में निम्न प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है :—

ई ऊ
इ उ
ए ओ
ऐ अ औ
आ

१-२. इसमें सन्देह नहीं कि शब्द-रचना में इ, ई का; उ, ऊ का और अ, आ का अर्ध-मात्राकालीन अभिन्न अंग है, यथा : पानी-पनिहारिन; नाऊ-नउआ; परन्तु इस आधार पर ध्वनिग्रामों की संख्या घटाकर उपर्युक्त दस ध्वनियों के स्थान पर सात स्वर तथा एक दीर्घमात्राबोधक ध्वनिग्राम रखकर भाषणध्वनियों का विश्लेषण वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि शब्द-रचना-स्तर पर ही इ, ए का तथा उ, ओ का भी ह्रस्व-रूप बनकर प्रयुक्त होता है; यथा : पेरना — पिराई, गोड़ना--गुड़ाई। अतएव स्पष्ट है कि इन ध्वनियों में मात्रा-काल का अन्तर उतना नहीं है जितना कि उच्चारण-स्थान का। उपर्युक्त दसों स्वर ध्वनियों को अलग मानकर चलना वैज्ञानिक तो है ही, साथ ही परम्परागत भी।

२. शब्दों के किसी एक अक्षर में स्वर-ध्वनियों की संहिति तीन-रूपों में विद्यमान है। एक को हम स्वर अनुनासिकता (Nasalization), दूसरे को संयुक्त रूप (Diphthongal) तथा तीसरे को मूल रूप कह सकते हैं। प्रथम एवं द्वितीय की चर्चा आगे विस्तार से की गई है। मूलरूपों को पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है जो कि काल-भेद के अनुसार ह्रस्व एवं दीर्घ कहे जा सकते हैं; अ, इ, उ स्वर ह्रस्व एवं शेष आ, ई, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ दीर्घ हैं।

३. उपर्युक्त सभी स्वर ध्वनियों के लघुतम अन्तर रखने वाले भेदात्मक शब्द-युग्मों को किसी भी मात्रा में संग्रहीत किया जा सकता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

अ	पर	=	लेकिन
आ	पार	=	किनारा
इ	पिरा	=	झाड़ू की टोकरी
ई	पीरा	=	बच्चा पैदा होते समय का दर्द
उ	पुरा	=	मुहल्ला
ऊ	पूरा	=	घास का एक छोटा गट्ठा
ए	पेरना	=	ईख पेरना
ऐ	पैरना	=	तैरना
ओ	पोर	=	गाँठ
औ	पौर	=	मकान का पहिला कमरा
इ-ई	पिरा	=	झाड़ू की टोकरी
ए-ऐ	पीरा	=	बच्चा पैदा होते समय का दर्द
	पेरा	=	पेड़ा
	पैरा	=	पैसा रखने का गोलक
उ-ऊ	कूरा	=	कूड़ा
ओ-औ	कौरा	=	कौर
	दुर	=	नाक का आभूषण
	दौर	=	दौड़ (संज्ञा)
	पूरा	=	चारे का बंडल
	पोरा	=	गाँठ

वस्तुतः लघुतम ध्वनि-सामग्री में अन्तर रखने वाले शब्द-युग्म शब्द की सभी सीमाओं में मिल जाते हैं और इस प्रकार उक्त दसों स्वर-ध्वनियों की ध्वनिग्रामीयता सुनिश्चित है।

४. ध्वनिग्रामों का उच्चारण-परिचय तथा उनके संस्वनों (Allophones) का शब्द की विभिन्न सीमाओं में वितरण स्पष्ट करना यहाँ अभीष्ट है :

४-१. /अ/ मध्यस्वर। इसके तीन संस्वन स्पष्ट हैं :—

(i) [अ̱] अग्रीकृत मध्यस्वर। यह य एवं ह में अन्त होने वाले संवृत्ताक्षर में प्रयुक्त होता है, यथा :

[क् अ̱ ह् न् आ] = कहना

[ब् अ य् आ] = बया = एक चिड़िया
[ग् अ य् आ] = गया = तीर्थ-विशेष

(ii) [अ̆] अर्धमात्राकालीन मध्यस्वर, जबकि यह संयुक्त स्वर स्थिति में आक्षरिक हो, यथा :--

[ग् अ̆ इ̆ या] = गइया = गाय
[क् अ̆ उ̆ बा] = कउवा = कौआ

(iii) [अ] ह्रस्व, मध्यस्वर; शेष सभी स्थितियों में इसका प्रयोग सम्भव है, यथा :--

[कर] = करना (आज्ञार्थ)
[कहत] = कहता (वर्तमान)
[गओ] = गया

यहाँ वह परम्परागत विवाद भी उल्लेखनीय है कि राम, चल आदि शब्दों को स्वरान्त माना जाए अथवा व्यंजनान्त। वस्तुतः विश्लेषण की सुविधा जिसमें हो, वही मार्ग श्रेयस्कर है । हमें इस सम्बन्ध में दो बातों पर ध्यान दिलाना है :–

(i) शब्दान्त में इस अ का उच्चारण कर्णगत नहीं । लिपि परम्परा का निर्वाह कर रही है, पर लिपि भाषा के लिए साधन है, साध्य नहीं । शब्द के मध्य में भी ऐसी ही कुछ असंगत स्थितियाँ भाषा-परिवर्तन के कारण आ उपस्थिति हुई हैं, यथा :

चलता एवं उल्टा में दोनों ही 'ल' समान-समय में उच्चरित होते हैं फिर एक स्वर-सहित और दूसरा स्वर-रहित क्यों ? उच्चारण में चुनना एवं चुन्ना (नाम-विशेष) में तथा सुनती एवं सुन्ती (सुमित्रा का अपभ्रंश) में कोई अन्तर नहीं।

(ii) शब्दान्त में 'अ' ही क्यों, सभी ह्रस्व स्वरों—इ और उ,का भी भाषा में लोप मिलता है। शान्ति, सांती; साधु, साधू; मति, मती बनकर आते हैं।

इन आधारों पर राम, चल आदि शब्दों को व्यंजनान्त मानकर चलने में सुविधा है।

४-४. / उ/तथा/ऊ / संवृत्त पश्च स्वर; शब्दान्त में ह्रस्व उ का प्रयोग नहीं मिलता। अन्यत्र प्रयुक्त भेदात्मक-युग्म इस प्रकार हैं :

आदि / उन / : / ऊन /

मध्य / पुरा / : / पूरा /

[उ̆] विलम्बित अनाक्षरिक उच्चारण जो कि संलग्न परवर्त्ती अक्षर के पर-भाग में पश्च-स्वरों—अ, आ, ओ, औ के अवस्थित होने पर सुनाई पड़ता है, यथा : महुअर (महूअर), कउआ (कऊवा), नउओ (नऊओ)। इन रूपों को यदा कदा महुवर, कव्वा, नव्वौ आदि रूप में लिखा देखते हैं। श्रुति की प्रधानता—आ के साथ विशेषत: है अन्यत्र कम।

४-५. /ए/ अर्धसंवृत्त, अग्र, दीर्घस्वर। इसके तीन संस्वन सुनाई पड़ जाते हैं।

[ए̆] अनाक्षरिक, यदि उसी अक्षर में पर भाग में -ओ हो :

द्योता = [दे̆ओ.ता] = देवता

द्योर = [दे̆ओ.र] = देवर

क्योला = [के̆ओ.ला] = कोयला

क्योटा = [के̆ओ.टा] = केवट

न्योता = [ने̆ओ.ता] = नेवता

[ए̱] ह्रस्व स्वर जिसका प्रयोग है विभक्ति-प्रत्यय के साथ होता है : यथा—

जे̱है = जिसको

ते̱है = तिसको, उसको

के̱है = किसको

ए̱है = इसको

बस्तुत: लिपि में इसके लिए कोई वर्ण नहीं है इसलिए इसके अंकित करने के लिए समीपस्थ वर्ण-चिह्नों द्वारा विविधता अपनाई गई हैं, यथा :

जेहै : जिहै : ज्यहै

तेहै : तिहै : त्यहै

केहै : किहैं : क्यहै

एहै : इहै : यहै

[ए] दीर्घ आक्षरिक स्वर। शेष सर्वत्र प्रयोग में आ रहा है; यथा :

/एट/ = एक गाँव

/मेड़/ = खेत का सीमाभाग

/गए/ = गए

४-६. / ओ / अर्धसंवृत्त, पश्च, दीर्घ स्वर। इसके भी तीन संस्वन उल्लेखनीय हैं।

[ओ̆] अनाक्षरिक, यदि उसी अक्षर में परभाग में ए हो; यथा : क्वेला [को̆ए-ला]

[ओ] ह्रस्व स्वर, जिसका प्रयोग - है विभक्ति-प्रत्यय के साथ संभव है, यथा :

मोहै = मुझको

तोहै = तुझको

ओहै = उसको

इन रूपों के लेखन में 'ए' ह्रस्व की तरह ही विविधता है, यथा

मोहै : मुहै : म्वहै

तोहै : तुहै : त्वहै

ओहै : उहै : वहै

/ ओ / दीर्घ, आक्षरिक, शेष सर्वत्र प्रयोग में आ रहा है, यथा :

/ओस/ /मोड़/ /गओ/ आदि।

४-७. / ऐ / अर्ध विवृत्त, अग्र स्वर। यह उच्चारण में संयुक्त (अ + ए ह्रस्व) है अथवा मूल स्वर; इस प्रकार का विवाद हिन्दी की बोलियों में पाए जाने वाले 'ऐ' स्वर के साथ लगा हुआ है; अतएव यहाँ भी इसके उच्चारण की प्रवृत्ति निश्चित की जानी चाहिए। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आगरा के पश्चिम की बोलियों में यथा कौरवी, बाँगरू एवं पंजाबी में वह मूलस्वर है; अन्यत्र संयुक्त स्वर। विभिन्न क्षेत्रों से आए हुए हिन्दी के विद्यार्थियों से वर्णमाला को सुनकर सरलता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसकी संयुक्तता के भी दो मूल्य हैं : १. ऐ = अ + ह्रस्व ए २. ऐ = अ + इ। बुन्देली की वर्णमाला का एकाकी 'ऐ' तो 'अइ' रूप में ही उच्चरित होता है, पर भाषा में उसके दो विभिन्न संस्वन कर्णगत होते हैं:

[ऐ] मूलस्वर जो कि एकाक्षरी पदों में तथा शब्दान्त में प्रयुक्त होता है, यथा :

i है, पै, कै, आदि ।

ii करै आदि ।

[ऐ] संयुक्त स्वर जो कि अ + ह्रस्व ए के संयोग से उच्चरित होता है, का प्रयोग शेष सभी स्थानों में पाया जाता है; यथा :

/पैसा/ [पए्सा]

/बैंर/ [बए्र]

४-८. / औ / अर्ध विवृत्त, पश्च स्वर। यह भी ऐ की तरह ही विवादपूर्ण स्थिति में है। हम इसके भी दो संस्वन स्वीकार करते हैं :—

[औ] मूल, जो कि एकाक्षरी पदों तथा शब्दान्त में प्रयुक्त होता है, यथा :

i /कौ/ (= का) /मौं/ (= मुँह),

ii करौ, तारौ

[औ] संयुक्त (अ + ह्रस्व ओ) अन्यत्र प्रयोग में आता है, यथा :

/ कौन / [कओन] = कौन

/ कौनो / [कओन्ओ] = कोना

५. स्वर अनुनासिकता शब्दभाण्डार एवं पदरचना दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह अनुनासिकता लगभग सभी स्वरों के साथ सभी स्थानों पर मिल जाती है, यथा :

	आदि	मध्य	अन्त
अँ	अँधरौ	कँधा	×
आँ	आँखी	काँख	दिनाँ (= दिन)
इँ	इँचनै (= खिँचना)	ढिगाँ (स्थान)	×
ईँ	ईँचनै (= खींचना)	पीँठ (पीठ	गईँ
उँ	उँचाई	मुँदगै (छिपना)	×
ऊँ	ऊँचौ	मूँदनैं (छिपाना)	कऊँ (= कहीं)
एँ	एँड़ ~ ऐँड़	गेँड़ुवा ~ गैँड़ुवा (= तकिया)	×
ऐँ	एँठ ~ ऐँठ	× ~ ऐँगर	हैँ, कहैँ
ओँ	ओँठ ~ औँठ	होँठ ~ हौँठ	×
औँ	× ~ औँक	× ~ पौँड़ा	हौँ, कहौँ

अर्थ की दृष्टि से इस अनुनासिकता पर विचार नासिक्य व्यंजनों के साथ किया गया है।

६. बिना किसी श्रुति के उच्चरित दो समीपस्थ स्वर यदि एकाक्षरी सिद्ध हों तो हम उस स्वर संहिति को संयुक्त-स्वर (Diphthongs) कहेंगे और यदि उनकी स्थिति भिन्नाक्षरीय है तो फिर इस स्थिति को स्वर-योग (Vowel-Combination) मात्र कहा जायगा। प्रथम स्थिति में (= संयुक्त स्वर) उन दो स्वरों में से केवल एक ही आक्षरिक होगा, दूसरा अनाक्षरिक। इस प्रकार आक्षरिक एवं अनाक्षरिक स्वरों के संयोग से ही संयुक्त स्वरों का उच्चारण होता है।[१]

इस सिद्धान्त के आधार पर बुंदेली शब्दों में प्रयुक्त स्वर-संयुक्तता (Diphthongisation) निम्न प्रकार की मिलेगी :

	अ	आ	इ–ई	उ–ऊ	ए–ऐ	ओ-औ
अ			√	√	√	√
आ			√	√	√	√
इ–ई		√	√			
उ–ऊ		√	√			
ए–ऐ			√		√	√√
ओ–औ			√		√√	√

१. Bloch & Trager—Outline of Linguistic Analysis, Page-34.

'When two vowels are uttered without hiatus, each may be the peak of a separate syllable or the two vowels may belong to the same syllable. The decisive factor is usually the distinction of the stress--whether each vowel is pronounced with a separate impulse of stress or whether a single impulse extends over both. In the latter case, either the first or the second vowel may be the syllabic; the other is said to be non-syllabic.....................A combination of a syllabic or a non-syllabic vowel is a diphthong,'

i	-अइ-	गइ-या	=	गाय
ii	-अउ-	कउ-वा	=	कौआ
iii	-अए-	अए-सा	=	ऐसा
iv	-अओ-	अओ-रत	=	औरतें
v	-आइ-	आइ-यो	=	आना
vi	-आउ-	नाउ-वौ	=	नाई (संबोधन, बहुवचन)
vii	-आऐ-	आऐ (आय)	=	आए
		राऐ-ओ (रायतो)	=	मट्ठे से बना खाद्य पदार्थ
viii	-आओ-	आऔ (आव)	=	आओ
		साऔ-कौ (सावकौ)	=	मौका
ix	-इइ-	पिइ-यो	=	पीना
x	-उइ-	कुइ-या	=	छोटा कुआँ
xi	-एऐ-	लेऐ (लेय)	=	ले
xii	-एऔ-	लेऔ (लेव)	=	लो
xii	-ओइ-	सोइ-ओ	-	सोना
xiv	-ओऐ-	सोऐ (सोये)	=	सोए
xv	-ओऔ-	सोऔ(सोव)	=	सोओ
xvi	-एइ-	खेइ-यो	=	खेना
xvii	-इआ-	निआ-री	=	अलग
xviii	-उआ-	जुआ-री	=	जुआरी
xix	-एओ-	केओ-ला	=	कोयला
xx	-ओए-	कोए-ला	=	कोयला

व्यंजन ध्वनियाँ

८. बुंदेली भाषा में व्यवहृत निम्न व्यंजन-ध्वनियों को स्पष्ट रूप से ग्रहण किया जा सकता है :—

	कंठ्य	कोमल तालु	तालु	कठोर तालु	वर्त्स्य	दन्त्य	दन्त्योष्ठ्य	द्वयोष्ठ्य
स्पर्श	+	क ख ग घ	+	ट ठ ड ढ	+	त थ द ध	+	प फ ब भ
स्पर्श-संघर्षी	+	+	च छ ज, झ	+	+	+	+	+
संघर्षी	ह	+	+	+	स	+	+	+
नासिक्य	+	ङ	ञ	ण	न, न्ह	+	+	म, म्ह
लुण्ठित	+	+	+	+	र, र्ह	+	+	+
उत्क्षिप्त	+	+	+	ड़, ढ़	+	+	+	+
पार्श्विक	+	+	+	+	ल, ल्ह	+	+	+
अर्धस्वर	+	+	य	+	+	+	व	+

९. उक्त ध्वनियों को एक अन्य ढंग से भी व्यवस्थित किया जा सकता है। इसके लिए ध्वनियों की व्यवहार-पद्धति को विशेष रूप से आधार बनाया गया है; सम्भव है इस प्रकार की व्यवस्था विशुद्ध उच्चारण की दृष्टि से कुछ त्रुटिपूर्ण सिद्ध हो :—

	कण्ठ्य	तालव्य	मूर्धन्य	दन्त्य	ओष्ठ्य	
स्पर्श	क ग	च ज	ट ड/ड़	त द	प ब	I
नासिक्य				न	म	II
तरल आदि			र	ल		
संघर्षी	ह			स		III

[इन चार्टों में प्रत्येक व्यंजन हलन्त-चिह्न-युक्त समझा जाना चाहिए]
उपर्युक्त चार्ट आवश्यक निर्देशों की अपेक्षा रखता है :—

i महाप्राणत्व की मुखरता की दृष्टि से भाषा की समस्त ध्वनियों को तीन वर्गों में विभक्त कर दिया गया है :

स्पर्श : महाप्राण तत्त्व से संयुक्त एवं वियुक्त—दो भिन्न व्यंजन ध्वनियों की कोटि रखने वाला वर्ग।

तरल : महाप्राण ध्वनियों की स्थिति संदेहास्पद।

संघर्षी : महाप्राण तत्त्व संघर्षण में विद्यमान है अतएव महाप्राण ध्वनि रहित वर्ग।

महाप्राण व्यंजन ध्वनियों के सम्बन्ध में बुन्देली भाषा के लिए एक तथ्य उल्लेखनीय है कि ये सब अल्पप्राण होने की प्रवृत्ति रखती हैं। शब्द के आदि में यह प्रवृत्ति न मिलेगी पर अन्यत्र इस विकास के लक्षण सरलता से देखे जा सकते हैं। शब्दान्त में महाप्राण तत्त्व सहित एवं रहित लघुतम शब्द युग्म खोजने पर ही मिल पाते हैं। परिगणना करके यह भी देखा गया है कि सघोष महाप्राण के अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति अन्य महाप्राण वर्ग की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक है। अल्पप्राणीकरण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

हाँत (हाथ), जीब (जीभ), कँदा (कँधा), पीँट (पीठ), जाँग (जाँघ), हाँप (हाँफ), भूँक (भूख), सूदौ (सीधा), दूद (दूध), गदा (गधा), लाब (लाभ) आदि।

ii उच्चारण-प्रयत्न की दृष्टि से तालु स्थानीय ध्वनियाँ स्पर्श-संघर्षी ठहरती हैं; परन्तु शब्द अथवा पद रचना में उनका योग ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार अन्य स्पर्श-ध्वनियों का; साथ ही, देश में परिव्याप्त वर्णमाला में वर्णों के क्रम की परम्परा भी उसी का समर्थन करती आ रही है, अतएव इन्हें भी स्पर्श-वर्ग में रखा गया है।

iii वर्त्स्य ध्वनि न एवं स का प्रयोग क्षेत्र यत्किंचित परिवर्तनों ङ,ञ,ण तथा श, ष) को स्वीकार करता हुआ दन्त से लेकर कण्ठ्य भाग तक है। इसीलिए उक्त ध्वनियों का प्रयोग-क्षेत्र चार्ट में अपेक्षाकृत विस्तृत है।

iv य, व में व्यंजनत्व की अपेक्षा स्वरत्व अधिक है, इसलिए उन्हें छोड़ दिया गया है।

स्पर्श ध्वनियाँ

१०. **कंठ्य** : इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का पश्च भाग कोमल तालु को स्पर्श करता है। घोषत्व एवं प्राणत्व की भिन्नता रखने वाले लघुतम शब्द-युग्म सिद्ध करते हैं कि भाषा में चार कण्ठ्य स्पर्श ध्वनिग्राम हैं :—

	/ क /	काल	
	/ ख /	खालै	खुरवा = कटोरा
	/ ग /	गाल	
	/ घ /		घुरवा = घोड़ा
प्राणत्व	/क-ख/	दुकत = छिपता	
		दुखत = दर्द करता	
घोषत्व	/क-ग/	चुकाउत = चुकाता	
		चुगाउत = चुगाता	

शब्दान्त में अवस्थित महाप्राण-ध्वनि अपना महाप्राणत्व खोकर अल्पप्राण होने की प्रवृत्ति रखती है, अतएव शब्दान्त में लघुतम शब्द-युग्मों का प्राय: अभाव है।

११. **तालव्य ध्वनियाँ** : च, छ, ज, झ उच्चारण में स्पर्श संघर्षी हैं। उनकी भिन्न ध्वनिग्रामीय स्थितियों को स्पष्ट करने वाले लघुतम शब्द-युग्म इस प्रकार हैं :—

/ च /	/ चाल /	
/ छ /	/ छाल /	
/ ज /	/ जाल /	
/ झ /	/ झाल /	= नहर का पानी जहाँ जोर से नीचे गिरता है।
/च-छ/	/ काँच /	
	/ काँछ /	= धोती का पिछला हिस्सा जो फेंटे में खोंसा जाता है।
/च-ज/	/ बचो /	= बचना (भूतकाल)
	/ बजो /	= बजना (भूतकाल)

इन ध्वनियों में संघर्षी तत्व की मात्रा कम नहीं है, इसका स्पष्टीकरण इस तथ्य से किया जा सकता है कि /च/ तथा /छ/ ध्वनियाँ संघर्षी /स/ ध्वनि से वैकल्पिक सम्बन्ध रखती हैं। ध्वनि-मोचन में संघर्ष स्पष्ट है :—

साँचउँ	~	साँसउँ	=	सचमुच
सौंचाव	~	सौंसाव	=	बच्चे की टट्टी धुलाओ
साँचे	~	साँसे	=	ढालने वाले साँचे
सिढ़ियाँ	~	छिड़ियाँ	=	सीढ़ियाँ

१२. **मूर्धन्य एवं उत्क्षिप्त ध्वनियाँ :** घोषत्व एवं प्राणत्व को बुंदेली ध्वनियों का अभिन्न अंग स्वीकार करते हुए मूर्धन्य ध्वनियों में ट, ठ, ड, ढ ये चार स्वतन्त्र ध्वनिग्राम जान पड़ते हैं जिनकी उच्चारण-विधि निम्न प्रकार है :—

जिह्वानीक कठोर तालु को सबलता के साथ स्पर्श करता है। ध्वनियों का उच्चारण-स्थान भी वर्त्स्य से लेकर मध्य तालु तक फैला हुआ है। जिह्वा-परिवेष्टन भी शब्दादि में अपेक्षाकृत कम है।

ड़, ढ़ ध्वनियों को भी उक्त वर्ग के साथ स्थान मिलना चाहिए, यद्यपि उनका उच्चारण-प्रयत्न निस्सन्देह भिन्नता लिये हुए है। इनके उच्चारण में जिह्वानीक मूर्धा-तालु को कठोरता से स्पर्श तो करता ही है, साथ ही जिह्वा का परिवेष्टन भी महत्वपूर्ण है। स्पर्श के उपरान्त जिह्वा झटके के साथ अपने स्वाभाविक स्तर तक आती है। इस उत्क्षेपण-क्रिया को ध्यान में रखकर इन्हें उत्क्षिप्त ध्वनियाँ कहा गया है। ड, ढ एवं ड़, ढ़ इन दोनों वर्गों के उच्चारण-प्रयत्न में महान अन्तर होते हुए भी, एक साथ रखने के दो कारण हैं :—

i उक्त वर्ग की ध्वनियाँ एक दूसरे की पूरक हैं; अर्थात् ड, ढ शब्द की जिन परिस्थितियों में प्रयुक्त होती हैं, उन क्षेत्रों को छोड़कर ही ड़, ढ़ का प्रयोग सम्भव है। इन पूरक-ध्वनियों के प्रयोग-क्षेत्रों की व्यवस्था निम्न प्रकार है :—

ड, ढ का प्रयोग शब्द के आदि भाग में होता है; यदि शब्द के मध्य में संभव है तो केवल द्वित्व-स्थिति में अथवा नासिक्य व्यंजन के पूर्वभाग में अवस्थित होने पर; शब्द के शेष क्षेत्रों में ड़, ढ़ का प्रयोग ही हो सकता है, अर्थात्

	आदि	मध्य			अन्त
		द्वित्व	नासिक्य व्यंजन—	शेष	
ड, ढ	√	√	√	×	×
ड़, ढ़	×	×	×	√	√

ii दोनों वर्ग समसामयिक शब्द-रचना तथा ऐतिहासिक शब्द-विकास में एक दूसरे से बँधे हुये हैं यथा :—

डण्डा — डँड़ौका (= छोटा डण्डा)

दण्ड > डाँड़

पाण्डेय > पाँड़े

१२-१. ऊपर तालिका में दी गई सामग्री के आधार पर सरलता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि [ड, ढ] एवं [ड़, ढ़] दो भिन्न वर्गीय ध्वनिग्राम नहीं हैं अपितु किसी एक ही वर्ग के दो भिन्न संस्वन हैं परन्तु इस तथ्य को इस रूप में स्वीकार करने में कठिनाइयाँ हैं :—

i [ड़, ढ़] एवं [ड, ढ] ध्वनियों के दोनों ही वर्ग भाषा में प्रयोग-बहुल हैं, अतएव छोटे-छोटे बच्चे भी ड एवं ड़ का तथा ढ एवं ढ़ का विशुद्ध एवं अलग-अलग उच्चारण करने में समर्थ हैं ।

ii विदेशी शब्दावली की पैठ हो जाने के कारण भाषा में कुछ ऐसे भी शब्द-युग्म मिलने लगे हैं जो उनकी भिन्न ध्वनिग्रामीय संदेहपूर्ण स्थिति को समाप्त करने में समर्थ हो रहे हैं, यथा :—

i	हाड़	ii	भेड़िया
	रोड		रेडियो

निश्चय ही समीपवर्ती ध्वनियों में वे तत्त्व विद्यमान नहीं हैं, जो ड को ड़ में अथवा ड़ को ड में परिवर्तित कर दें । इसलिए उपर्युक्त तर्कों के आधार पर टवर्गीय ध्वनियों के अन्तर्गत इन द्वन्द्वों—ड-ढ, ड़-ढ़ ध्वनियों—को भिन्न ध्वनि-ग्रामीय माना जा सकता है ।

[ड़], ल के पूर्वभाग में स्थिति होकर मूर्धन्य [ळ] के रूप में उच्चरित होता है। यथा [उळला] = उड़ला = अनाज की एक किस्म।

छोटे डण्डे के लिए, 'डँड़ौका' शब्द का प्रयोग होता है जिसे साधारणतः लोग उच्चारण को ध्यान में रखकर 'डँणौका' लिख जाते हैं पर इस 'ण' को जो कि अन्यत्र केवल वर्गीय व्यंजनों के पूर्व भाग में ही प्रयुक्त होता है, 'ड़ँ' के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

१२-२. नीचे कुछ लघुतम शब्द-युग्म लिये जा रहे हैं :—

शब्दादि :— /टाट/, /ठाट/, /डाट/, /ढाट/ (= cork)

(ड़, ढ़ का प्रयोग शब्द के आदि भाग में नहीं होता)

शब्द-मध्य :—i स्वरमध्यवर्ती :

(निरनुनासिक) / पटा / = फुसलाइये

/ पठा / = भिजवाइये

/ पढ़ा / = पढ़वाइये

(ड, ढ का प्रयोग सम्भव नहीं)

(अनुनासिक) /कौँड़ौ/ = आग जलाने का एक स्थान

/ कुँढ़ी / = एक भोजन पात्र

(ड, ढ का प्रयोग सम्भव नहीं)

ii द्वित्व :— /गड्डा/ (= गड़ला),

/गड्ढा/ (= गढ़ा)

(ड़, ढ़ का द्वित्व सम्भव नहीं)

iii नासिक्य व्यंजन के साथ :—

/ कन्डा / (= गोबर का उपला), /पण्डा/, /लम्डा/ (= लड़का)

(ढ के पूर्व नासिक्य व्यंजन से युक्त शब्द भाषा में उपलब्ध नहीं)

शब्दान्त :—

प्राणत्व /ट-ठ/ /पाट/ (= किनारा) /पाठ/

घोषत्व /ट-ड/ /चन्ट/ (= होशियार) /चन्ड/ (= प्रचण्ड)

/ट-ड़/ /छाँट/ /छाँड़/ (= छोड़ना)

१२-३. यत्र-तत्र कुछ अपवादों की ओर संकेत किया जा सकता है, यथा :—

कुडौल, सुडौल, डुग्डुगी, ढेंकाढ़ाई आदि में स्वरमध्य में ही ड, ढ का प्रयोग मिल रहा है, परन्तु आगे विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि यह यौगिक शब्दावली है। कु -, सु-, डुग-, ढेंका - आदि के पश्चात जंकचर (juncture) ध्वनिग्राम देकर इन अपवादों को नियमानुकूल बनाया जा सकता है।

१३. दन्त्य व्यंजन :—इस वर्ग के अन्तर्गत भी चार भिन्न ध्वनिग्राम मिल रहे हैं, जिनके लिये शब्द के आदि तथा मध्य कहीं से भी लघुतम शब्द-युग्म एकत्र किये जा सकते हैं :—

आदि /तान/ /थान/ /दान/ /धान/
मध्य /मताई/ /मथाई/

१४. ओष्ठ्य व्यंजन :—यहाँ भी अन्य वर्गों की भाँति चार ध्वनिग्राम हैं। दन्त्य वर्ग की भाँति शब्दान्त को छोड़कर अन्यत्र लघुतम शब्द-युग्म सरलता से मिल जाते हैं।

आदि /पार/ /फार/ /बार/ /भार/
मध्य /नपा/ (आज्ञार्थ = नापना) /नवा/ (आज्ञार्थ-झुकाना)
/फ/ के दो संस्वन कहे जा सकते हैं [फ] = द्वयोष्ठ्य स्पर्श
[फ़] = दन्त्योष्ठ्य संघर्षी

दोनों ही संस्वन भाषाभाषियों के लिए अति सुलभ हैं, क्योंकि फारसी-अरबी शब्दावली ग्रामवासियों में भी घर कर गई है। इन दोनों की प्रयोग-सीमाएँ इस प्रकार हैं :—

[फ] = शब्द-आदि और शब्द के मध्य में
[फ़] = शब्दान्त में

विदेशी शब्दों में पाया जाने वाला [फ़] शब्द के मध्य में आकर बुंदेली में द्वयोष्ठ्य स्पर्श हो गया है जबकि शब्दान्त में इसका उच्चारण संघर्षी ही सुनाई देता है :—

[रफा-दफा] [सफा] [अलफा] परन्तु
[साफ़], [माफ़]

नासिक्य व्यंजन

१५. ध्वनि-निर्माण में नासिका-तत्त्व का योग स्वर तथा व्यंजन, ध्वनियों के दोनों ही वर्गों के साथ सम्भव है। नासिक्य व्यंजन तो होते ही हैं, स्वर भी सानुनासिक हो सकते हैं। उच्चारण-प्रक्रिया दोनों की एक ही है—'अन्दर से आती हुई श्वास कोमल तालु के झुकने से नासिका विवर होकर निकलती है; साथ ही आवश्यक स्वर के लिये जिह्वा का स्पंदन होता है और सानुनासिक स्वरों की निष्पत्ति होती है'। नीचे नासिका-योग से निष्पन्न सम्पूर्ण बुन्देली ध्वनियों का अध्ययन अपेक्षित है। यहाँ यह बतला देना अप्रासांगिक न होगा कि हिन्दी की तुलना में बुन्देली के अधिकाधिक शब्दों में यह नासिक्यीकरण उल्लेखनीय है। शरीर-अंगों की द्योतक शब्दावली उदाहरणस्वरूप ली जा सकती है।

हाँत = हाथ
पाँव = पैर
पीँठ = पीठ
घूँटा = घुटना
घिँची, घाँटी = गला

मूँड़, ऊँठा, उँगरियाँ, एँड़ी, जाँघ, कँधा, पौँद, मूँ (मौँ), नौँ, नाँक, काँन मूँछ, दाँत, द्याँय (= शरीर), रोएँ, आदि।

१६. भाषा में पाई जाने वाली अनुनासिक ध्वनियों को हम इस प्रकार संग्रहीत कर सकते हैं :—

अर्ध-अनुस्वार (ँ) साधारणतः शिक्षित समुदाय के बीच स्वरों की अनुनासिकता स्पष्ट करने वाली नासिक्य-ध्वनि को इसी नाम से अभिहित किया जाता है। अभी हम इसे इसी रूप में स्वीकार किये लेते हैं। इस ध्वनि की उपस्थिति शब्दों में अर्थगत भेद लाती है, यथा :—

बाट = रास्ता
बाँट = तौलने के माप
सास = सास
साँस = श्वास
बास = सुगंधि
बाँस = बाँस

और भी,

मौड़ी (एक वचन) — मौड़ीँ (बहु वचन)
दी (एक वचन) — दीँ (बहु वचन)

ङ् जैसे सङ्कर, सङ्गै, सङ्खिया आदि के उच्चारण में श्वास कोमलतालु के स्थान पर रुक कर (रोकी जाकर) नासिका विवर की ओर उन्मुख होती है।

ञ् जैसे पञ्चा (= छोटी धोती), पञ्जा (= ताश का पत्ता)। श्वास, तालु-स्थान पर रुककर नासिकोन्मुख होती है।

ण् जैसे टण्टी, डण्डी। श्वास, टवर्गीय ध्वनियों के उच्चारण-स्थान पर रुककर नासिकोन्मुख होती है।

न् जैसे सन्तौ, चन्दा। इस ध्वनि के उच्चारण में श्वास दन्त स्थान पर रुक कर नासिकोन्मुख होती है।

न् जैसे नाम, अन्न, जन्म, आन। वर्त्स-स्थानीय नासिक्य ध्वनि।

म् जैसे मान, जुम्मौ, जम्ना, आम। ओष्ठ स्थानीय नासिक्य ध्वनि।

(अ) य, र, ल, व के पूर्व भाग में नासिक्य व्यंजन ध्वनि वाला कोई शब्द सामान्य बोलचाल की भाषा में नहीं जान पड़ रहा है। विदेशी 'डन्लप' में पाई जाने वाली ध्वनि वर्त्स स्थानीय 'न' से भिन्न नहीं कही जा सकती।

(ब) स के पूर्व में उच्चरित ध्वनि जैसे संसार, संसै, कंस, हंस आदि की नासिक्य ध्वनि यद्यपि संघर्षीपन लिये हुए हैं, फिर भी न के अत्यधिक समीप है।

(स) ह के पूर्व भाग में उच्चरित नासिक्य-व्यंजन ध्वनि से युक्त शब्दों का भी भाषा में पूर्ण अभाव जान पड़ता है। हिन्दी के सिंहासन, सिंहल, आदि शब्द बुन्देली में क्रमशः सिंघासन, सिंघल रूप में पाए जाते हैं, यथा :—

ठाकुर जू कौ सिङ्घासन (सिङ्गासन) लेताव।
डाक्टर सिङ्घल आए ते।

उपर्युक्त दी हुई सामग्री को निम्न चार्ट में इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है :—

	आदि	मध्य							अन्त
		–क, ख, –ग, घ,	–च, छ, –ज, झ,	–ट, ठ, –ड, ढ,	–त, थ, –द, ध,	–प, फ, –ब, भ,	–न,	–म,	
ङ्	+	√	+	+	+	+	+	+	+
ञ्	+	+	√	+	+	+	+	+	+
ण्	+	+	+	√	+	+	+	+	+
न्̱	+	+	+	+	√	+	+	+	+
न्	√	+	+	+	+	+	√	√	√
म्	√	+	+	+	+	√	√	√	√

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि ङ् से लेकर न्̱ तक तथा टिप्पणी अ, ब, स, में गिनाए गए नासिक्य व्यंजन पूरक स्थिति (Complementary positions) में प्रयुक्त हुए हैं। इसी को आधुनिक भाषाशास्त्री वर्गीय नासिक्य ध्वनि (Homorganic nasal sound) कहते हैं; वस्तुतः इसी के लिए देवनागरी लिपि में अनुस्वार (ं) चिह्न है। परन्तु उच्चारण विधि के अनुसार यह नासिक्य ध्वनि अधिकांश स्थानों में वर्त्स स्थानीय न् ध्वनि से अधिक निकटता रखती है, यथा :—

संत — सन्त (तवर्ग)
घंटा — घन्टा (टवर्ग)
चंचल — चन्चल (चवर्ग)
संसार — सन्सार (-स)

इसीलिए हम इस अनुस्वार को न् का एक संस्वन (Allophone) मान सकते हैं। इस संस्वन के लिए यदि कोई परम्परावादी भिन्न लिपि-चिह्न चाहता है तो हमें कोई आपत्ति नहीं।

१७. परिणामतः बुन्देली में ध्वनिग्रामीय स्तर पर ठहरने वाली नासिक्य ध्वनियाँ तीन ही हैं : अनुनासिक स्वर, न् तथा म्। अनुनासिक तथा निरनुनासिक स्वरों में अर्थ-भेद लाने वाले शब्दयुग्मों की चर्चा की जा चुकी

है; ऐसा भी संभव है कि नासिक्य व्यंजन न् अथवा म् ही स्थान विशेष पर कभी अनुनासिक स्वर और कभी नासिक्य व्यंजन का स्वरूप धारण कर लेते हों। भाषा-प्रवाह में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है; यथा :—

[पाण्डेय] /पान्डेय/ > पाँड़े
[पञ्च] /पन्च/ > पाँच
[वंश] /वन्श/ > बाँस
/ कम्प / परन्तु / काँप /

इसलिए देखना यह है कि ये नासिक्य व्यंजन (न् एवं म्) कहीं अनुनासिक स्वरों के विरोध (Contrast) में आते हैं, अथवा नहीं। ऐसे कतिपय उदाहरण यहाँ संग्रहीत किये जा रहे हैं; यथा :—

आदि	/ माँग /	= बालों में सिन्दूर-रेखा
	/ नाँग /	= साँप
	/ आँग /	= नौ माह के पूर्व का गर्भ
अन्त	/ मैँ /	= प्रथम पुरुष, एक वचन
	/ मैँन /	= मोम
	/ दीँ /	= दीमक
	/ दीँन /	= गरीब
मध्य	/ हन्स /	= पक्षी विशेष
	/ हँस /	= क्रिया-विशेष
	/खोन्चा/	= फेरी लगाकर बेचने वाले का सामान।
	/खोँचा/	= मुट्ठी भर अनाज

आदि एवं अन्त के लिए संग्रहीत उदाहरणों से वस्तु-स्थिति का ठीक-ठीक पता लगाना सम्भव नहीं हैं, मध्य में अवश्य ये दो जोड़े (सम्भव है और हों) नासिक्य व्यंजन एवं अनुनासिक स्वर में स्पष्ट विरोध (Contrast) उपस्थित कर रहे हैं। दूसरे, आदि एवं अन्त के उदाहरणों से यह भी निष्कर्ष निकल आता है कि वहाँ भी विरोधी शब्द-युग्म दे सकना बुन्देली भाषा-भाषियों के लिए कठिन नहीं है, यथा :—

नाम – आँग
नाक – आँक
मैँ – मैन
दीँ – दीन

इस प्रकार बुन्देली की ये तीन ध्वनियाँ न, म, ँ स्वतन्त्र ध्वनिग्राम हैं। न और म के भेदात्मक युग्म बहुलता से मिलेंगे :—

आदि	—	नाल
		माल
मध्य	—	कनाई
		कमाई
अंन्त	—	कान
		काम

१८. ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि ङ्, म्, ण् शब्द के आदि और अन्त में प्रयुक्त नहीं होते। मध्य में भी केवल वर्गीय व्यंजनों के पूर्व भाग में ही इनकी स्थिति है। इतर व्यंजनों के साथ प्रयुक्त होने पर -ङ्- अथवा -ग्ँ-; -ञ्- अथवा -ज्ँ- में सन्देह होने लगता हैं; यथा :—

राँग्बो–राङ्बो, राँज्बो–राञ्बो, माँग्बो–माँङ्बो। यदि उच्चारण की दृष्टि से द्वितीय स्थिति है तो मान्बो, रान्बो आदि की तुलना में आकर ङ् और ञ् की स्वतन्त्र ध्वनिग्रामीय स्थिति सिद्ध होती है, अतएव हम प्रथम स्थिति को ही मानकर चलने में सुविधा का अनुभव करते हैं, दूसरे ङ् अथवा ञ् के बाद एक जंकचर (Juncture) भी है जो कि भिन्न वर्गीय व्यंजनों को इन ध्वनियों से अलग करता है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह

चुन्नैं (= 'चुन्ना' को) को
चुननैं (= पसन्द करना) से।

१९. न्ह एवं म्ह व्यंजन-गुच्छ भाषा में मिल जाएँगे। इनको न् + ह अथवा म् + ह कहकर दो व्यंजनों का योग कहा जाये अथवा महाप्राण व्यंजन कहकर इन्हें एक इकाई रूप में स्वीकार किया जाए, इसका उल्लेख आगे व्यंजन-संयोग शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

अर्धस्वर

२०. संस्कृत में य,र,ल,व ध्वनियों को अन्तःस्थ व्यंजन कहा गया है। स्पष्ट है कि इनकी स्थिति मध्यवर्ती है; चाहे वर्णमाला में–स्पर्शोष्मणां अन्तर्मध्ये तिष्ठन्तीत्यन्तःस्थाः, चाहे उच्चारण-प्रयत्न में—पूर्ण एवं ईषत् की तुलना में 'नेम स्पृष्टाः' कहे गए हैं और चाहे इस दृष्टि से कि ये भाषा में कभी स्वर और कभी व्यंजन बनकर व्यवहृत होते हैं; पर यहाँ इनको दो वर्गों में विभक्त कर दिया गया है।

(i) **अर्धस्वर**—य, व, जो कि व्यंजनत्व की अपेक्षा स्वरत्व की मात्रा अधिक रखते हैं।[१]

(ii) रलयोः अभेदः के आधार पर **लुण्ठित** एवं **पार्श्विक**।

२१. सघोष 'य' के उच्चारण में जिह्वाग्र कठोर तालु की ओर (अर्थात् जहाँ से अग्र—संवृत्त अथवा अर्धसंवृत्त—स्वरों की निष्पत्ति होती है) अग्रसर होती है और तत्काल ही परवर्ती स्वर के उच्चारण-स्थान की ओर घूम जाती है। यही कारण है कि परवर्त्ती स्वर-संयोगों से इसमें उच्चारण-भेद आ जाता है। सघोष 'व' के उच्चारण का स्वरूप भी ऐसा ही है। यह स्थान-विशेष के आधार पर कहीं द्वयोष्ठीय और कहीं दन्त्योष्ठीय ठहरता है। इसके उच्चारण में जिह्वा का पश्च-भाग या तो पश्च—संवृत्त अथवा अर्धसंवृत्त स्वर के उच्चारण-स्थान की ओर बढ़ता है और शीघ्र ही परवर्त्ती स्वर की ओर मुड़ जाता है। इस प्रकार यह भी परवर्ती स्वरसंयोगों के अनुसार श्रुति-भेद रखता है।

२२. उपर्युक्त उच्चारण विधि से स्पष्ट है कि ये ध्वनियाँ अनाक्षरिक स्वर हैं। संयुक्त स्वरों की चर्चा करते समय इन स्वर-संयोगों का आवश्यक विवरण दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त श्रुति रूप में भी इन दोनों ध्वनियों की अवस्थितियों की परिगणना इसप्रकार है:—

---

१. i) 'तालु चिह्नों से प्रकट होता है कि हिन्दी 'य, व' के उच्चारण में व्यंजनात्मक की अपेक्षा स्वरात्मक अंश अधिक है।'

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, भारतीय साहित्य, अप्रैल १९५६

ii) In fact y, v behave much more like the vowels than the consonant.

Dr. M. Khan.

'A phonetic & phonological study of the word in Urdu. Page. 9

(i) /अ......आ/ /गया/=एक शहर
/हया/=शर्म
/बया/=एक चिड़िया
/तवा/=लोहे का एक बर्तन
/पवा/=एक गाँव
/जवा/=जौ

[व श्रुति ब के रूप में भी विकसित हुई है और ये शब्द तबा और जबा भी हो गए हैं।]

(ii) /इ.........अ, आ, ओ, औ ऐ/ पश्च स्वरों के साथ ही अधिक स्पष्ट कही जा सकती है।

/गइया/ = गाय
/भइयौ/ = भाई लोगो (सम्बोधन)
/जइयो/ = जाना (बहुवचन)
/पियत ∽ पिअत/ = पीता हूं
/पियै ∽ पिऐ/ = पीए

(iii) /उ......अ, आ, औ, ओ, ऐ/ आ, औ को छोड़कर अन्यत्र स्पष्ट नहीं कही जा सकती है।

/कउवा/ = कौआ
/नउवौ/ = नाई लोगो (सम्बोधन)
/कउवन ∽ कउअन/ = कौओं
/छुवौ ∽ छुऔ/ = छुइए
/छुवै ∽ छुऐ/ = छुए

(iv) /आ, ओ, ए......आ, ऐ/ खाँ-क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र व श्रुति स्पष्ट है जो कि वैकल्पिक ब रूप रखती है, पर खाँ-क्षेत्र में परवर्त्ती ऐ अनाक्षरिक स्वर बन जाता है; यथा :—

/आवै ∽ आबै/ (आय—खाँ-क्षेत्र) = आए
/रोवै ∽ रोबै/ (रोय—खाँ-क्षेत्र) = रोए
/खेवै ∽ खेबै/ (खेय—खाँ-क्षेत्र) = खेए
/आवा-जाई/ = आना-जाना
/सोवा-साई/ = सोना आदि काम
/खेवा-खाई/ = खेना आदि काम

(v) / आ......औ / खाँ-क्षेत्र में यह श्रुति संभव है :—

/ आऔ ~ आव /=आओ

उपर्युक्त निष्कर्षों को निम्न चार्ट में इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है :—

	अ	आ	इ-ई	उ-ऊ	ए-ऐ	ओ-औ
अ	+	य/व	+	+	+	+
आ	+	व	+	+	* य/व	व
इ-ई	य	य	+	+	य	य
उ-ऊ	व	व	+	+	य	व
ए-ऐ	+	व	+	+	* य/व	+
ओ-औ	+	व	+	+	* य/व	+

कुल सोलह श्रुति-स्थितियाँ हैं जिनमें य, पांच से, व, सात से तथा य, व चार स्थानों से सम्बन्धित हैं। तारांकित स्थानीय भिन्नता रखते हैं, य खाँ और व शेष क्षेत्र से सम्बन्धित श्रुति है।

२१-१ जंकचर (juncture) चाहे अल्प हो अथवा विलम्बित, के पश्चात इन ध्वनियों का उच्चारण अधिक ग्राह्य है, यथा :

शब्दादि / याद / = स्मरण
/ यार / = दोस्त
/ या ~ जा / = यह
/ वा ~ बा / = वह
शब्द मध्य / लत.यानैं / = लात मारना
/ कर.वानैं / = करवाना
/ कुल.यानैं / = छेद करना

साथ ही,

शब्दादि (व्यंजन पश्चात्)
/ क्यारी / = क्यारी
/ ख्वार / = चद्दर
/ क्यौड़ा / = केवड़ा

अनिवार्य रूप से सर्वत्र इन ध्वनियों के पश्चात्–आ अथवा–औ स्वर ही मिलेंगे, जो कि अपनी विवृत्त-स्थिति के कारण अति मुखर स्वर हैं। कम मुखर स्वर के पश्चात् अति मुखर स्वर व्यवहृत होने पर श्रुति की संभावना अधिक है अतएव य, व श्रुति ध्वनियाँ ही ठहरती हैं।

लुण्ठित एवं पार्श्विक

२२. संस्कृत-व्याकरण का 'रलयोः अभेदः' वाला सूत्र अब भी पुराना नहीं पड़ा है। बुन्देली में शब्दों के र अथवा ल ध्वनि से युक्त वैकल्पिक प्रयोग प्रायः मिल जाते हैं; यथा : सोरा ~ सोला = सोलह। व्याकरण-सम्बद्ध पदों में भी कहीं र और कहीं ल का प्रयोग सरलता से मिल रहा है; यथा :

फल (संज्ञा) परन्तु फर (क्रिया)
दौल्ला = बड़ी टोकरी परन्तु दौरिया = छोटी टोकरी

दोनों की एक साथ चर्चा करने का यह एक कारण है। अन्य कारणों के लिए इनकी उच्चारण-पद्धति देखी जा सकती है :—

/ र् / सघोष, वर्त्स्य, लुण्ठित। जिह्वानीक तालु के वर्त्सभाग का स्पर्श करता है। आदि स्थानीय होने पर यह स्पर्श सबल तथा दो या तीन पलोटें लेकर होता है, अन्यत्र स्पर्श सामान्य है; साथ ही पलोटें भी एक या दो ही होती हैं।

/ ल् / सघोष वर्त्स्य, पार्श्विक। इस ध्वनि के उच्चारण में जिह्वाग्र तालु का स्पर्श 'इ' स्थान की ओर जाकर करता है, परन्तु जिह्वा के शेष-भाग द्वारा उत्पन्न किए हुए खोखलेपन के पार्श्व भागों से वायु बाहर निकल जाती है।

उत्क्षिप्त ध्वनि ड़ जिसकी चर्चा विषय-क्रम १२ में की जा चुकी है, भाषा में यदा कदा 'र' ध्वनि के साथ वैकल्पिक प्रयोग रखती हुई जान पड़ती है। यथा :

करोड़ ~ करोर
मरोड़ ~ मरोर
सड़ ~ सर

अतएव ध्वनिग्रामीय स्थिति पर विचार करने के लिए इस प्रयोग-साम्य पर भी ध्यान रखना होगा।

आदि, मध्य एवं अन्त स्थानीय लघुतम शब्द-युग्म इस प्रकार हैं :—

/र ~ ल/	रार	=	एक चिपचिपा पदार्थ
	लार	=	लार
	भारौ	=	किराया
	भालौ	=	भाला

	करौं	=	कड़ा
	कल्लौ	=	घड़े का नीचे का हिस्सा
	बेर	=	फल-विशेष
	बेल	=	फ़ल-विशेष
/र ~ ड़/	तार	=	तार (wire)
	ताड़	=	वृक्ष-विशेष
	गारौ	=	घिसो
	गाड़ौ	=	गाड़ो

२२-१. ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्वरमध्यवर्ती र के लोप की प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है। यदि आज की भाषा से पचास वर्ष पूर्व की भाषा की तुलना कर ली जाए, तो उक्त तथ्य की पुष्टि सरलता से हो जायगी।

सर्वनाम	मोओ	< मोरो	= मेरा
	तोओ	< तोरो	= तेरा
	तुमाओ	< तुम्हारो	= तुम्हारा
	हमाओ	< हमारो	= हमारा
संज्ञा	चरखाई	< चरखारी	= एक रियासत का नाम
	बसवाई	< बसवारी	= एक गाँव का नाम
	प्याएलाल	< प्यारेलाल	= व्यक्ति-विशेष का नाम

[लिखित भाषा में अब भी 'र' का प्रयोग सुरक्षित है]

	साए	< सारे	= अभद्र भाषा में
	गाईं	< गारीं	= गालियाँ
	छिइँयाँ-बुकइँयाँ	< छिरियाँ-बुकरियाँ	= छेरी-बकरी
विशेषण	भाई	< भारी	
	काई माटी	< कारी माटी	= काली मिट्टी
अव्यय	अँगाईं-पछाईं	< अगारीं-पछारीं	= अगाड़ी-पछाड़ी
क्रिया	भओ धओ रान दे	< भरो धरो रहन दे	= भरा (हुआ) रखा रहने दो।
	दर्रा माएँ चलो आ	< दर्रा मारे चला आ	= बिना रुके चले आओ
	पई रइयो	< परी रहियो	= पड़ी रहना
	ठाओ रौ	< ठारो (ठाड़ो) रौ	= खड़ा रह

संघर्षी

२३. / स् / वर्त्स्य, अघोष, संघर्षी ध्वनि है। इसका प्रयोग शब्द के सभी भागों में संभव है।

शब्दादि	सत्तू, सात
शब्दान्त	बीस, रास (=राशि)
स्वरमध्यवर्त्ती	किसा, रासौ, हीँसा (=हिस्सा)
द्वित्व	रस्सी, लस्सी

२४. / ह / अलिजिह्वीय संघर्षी ध्वनि है। इस ध्वनि के घोषत्व एवं अघोषत्व के सम्बन्ध में विवाद है। अघोष महाप्राण ध्वनियों के साथ अघोष ह का ही उच्चारण संभव है पर अन्यत्र घोष ह ही उच्चरित होता है। इसके उच्चारण में स्वरतंत्रियाँ झंकृत होती रहती हैं जब कि एक त्रिकोणीय द्वार से वायु संघर्ष करती हुई गुजरती है।[1] ध्वनिग्रामीय स्थिति-स्पष्ट करने वाला आवश्यक शब्द-युग्म इस प्रकार है :

सार = गाय-बैल बाँधने की जगह
हार = चरागाह आदि

अधिकांश बुंदेली-क्षेत्र से स्वरमध्यवर्ती ह का लोप ऐतिहासिक दृष्टि से पुष्ट है; यथा :

दई < दही (कहीं-कहीं धई)
गोऊँ < गोहूँ (=गेहूँ)

तथा शब्दान्त में अर्धस्वर रूप में अवशेष उल्लेखनीय हैं :—

देँय < *देँह <देह
बाँय < बाँह <बाहु
भौँय < *भौँह

खाँ-क्षेत्र में स्वरमध्य में भी अर्धस्वर की स्थिति विद्यमान है; यथा :

/ कअत / ~ / कात / = कहत = कहता हूँ
/ दोअनैं / ~ / दोनैं / = दोहनैं = दोहना

1. A voiced h can be made. For this sound the vocal cords vibrate along a considerable part of their length, while a triangular opening allows the air to escape with some friction.
Phonetics in Ancient India by W. S. Allen. Page 35-36.

व्यंजन-संयोग

[Consonant-Cluster]

२५. संस्कृत एवं आँग्ल भाषा की तुलना में बुन्देली में व्यंजन-संयोग की प्रवृत्ति अत्यल्प है। पदादि एवं पदान्त में योगनिष्ठ होने वाले व्यंजन विरल हैं, पर पद-मध्य में इनकी संख्या कम नहीं कही जा सकती। त्रि-व्यंजनात्मक संयोग तो भाषा के लिए अपवाद स्वरूप ही कहे जायेंगे; सामान्य प्रवृत्ति तो दो व्यंजनों की संयुक्तता ही है। व्यंजन-संयोग सम्बन्धी उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं :—

त्रि-व्यंजनात्मक संयोग :

ये पद-मध्यगत संयोग दो अक्षरों में विभक्त होकर ही प्रयुक्त होते हैं। व्यंजन-क्रम इस प्रकार हैं :

(i) वर्गीय नासिक्य + स्पर्श + अन्तःस्थ
–न्द्र– (-n.dr-) पन्द्रा = पन्द्रह
–न्त्य– (-n.ty-) रुन्त्याई = बेईमानी

(ii) स्पर्श + स्पर्श (= द्वित्व) + अन्तःस्थ
–द्द्य– (-d.dy-) जिद्द्याना = जिद्द करना

(iii) संघर्षी + स्पर्श + अन्तःस्थ (य, व)
–स्क्य– (-s.ky-) मुस्क्यान = मुसकराहट
–स्क्व– (-s.kv-) मस्क्वानैं = मसकवाना

(iv) पार्श्विक + पार्श्विक + अन्तःस्थ (य, व)
–ल्ल्य– (-l.ly-) दुपल्ल्याऊ = दो पल्लों वाली
–ल्ल्व– (-l.lv-) चिल्ल्वानैं = चिल्लवाना

(v) पार्श्विक + संघर्षी + अंतःस्थ (य, व)
–ल्ह्य – (-l.hy-) उल्ह्यावनैं = उकसाना

द्वि-व्यंजनात्मक संयोग :

आदिस्थानीय : ड़, ढ़ इस संयुक्तता में भाग नहीं लेते। साथ ही, य, व को को छोड़कर शेष सभी व्यंजन पूर्वभाग में अवस्थित होकर य, व के साथ संयुक्तता ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्रथम अक्षर का ध्वनि-क्रम क्य् (व्)अ–

[क् = व्यंजन, अ = स्वर] रहता है। आक्षरिक परवर्ती स्वर भी -आ अथवा -औ ही संभव है।

ग्यास	=	एकादसी
ह्याव	=	ताकत
ब्याव	=	विवाह
ख्वार	=	चद्दर

अन्त स्थानीय : अन्त्-संयुक्तता के व्यंजन-क्रम इस प्रकार हैं :

i) द्वित्व : य, व, ड़, ह व्यंजन कभी द्वित्व रूप में प्रयुक्त नहीं होते। महाप्राण व्यंजनों की द्वित्वता में प्रथम अवयव अल्प प्राण रहता है। इस द्वित्व-प्रक्रिया के अन्त में एक क्षीण वाह्य-श्रुति सुनाई पड़ती है। [पदान्त में ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों का विरोध (contrast) नहीं है, ऐसा हम अन्यत्र कह चुके हैं, इसलिए इस अन्तिम विरोध-विमुक्त ध्वनि को श्रुति-रूप में ही स्वीकार करते हैं]

झट्ट	[jhaṭ.ṭə]	= शीघ्र
उजड्ड	[ujaḍ.ḍə]	= गँवार
सत्त	[sat.tə]	= सचाई

ii) नासिक्य + स्पर्श

चण्ट	[can ṭə]	= होशियार
बन्द	[ban.də]	= बन्द
हन्स	[han.sə]	= हंस

मध्यस्थानीय : इस स्थान के व्यंजन-संयोग संयोग की सघनता के आधार पर दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं :—

अ- जिनके उच्चारण में व्यंजन की तीनों आवश्यकताएँ—स्पर्श, ग्रहण तथा मोचन—की पूर्ति पूर्णतः नहीं हो पाती। इसमें 'द्वित्व', वर्गीय नासिक्य + स्पर्श व्यंजन तथा किसी पूर्ववर्ती व्यंजन के साथ -य,-व के संयोग आते हैं। इसकी तुलना अन्त-स्थानीय व्यंजन-संयोग के साथ की जा सकती है।

ब - जिनके उच्चारण की प्रक्रिया लगभग पूरी हो जाती है, पर कोई मध्ववर्त्ती श्रुति नहीं सुनाई देती । भाषा के रचनात्मक गठन की दृष्टि से इसके निम्न तीन वर्ग निर्धारित किए जा सकते हैं । लिपि में जो प्रचलित वर्ण-संगठन है, वस्तुतः वह इसी रचनात्मक गठन का ही अनुकरण करता जान पड़ता है ।

i) शब्द-वाह्य-संयोग (Interword Consonant Cluster) नाम अथवा कृदन्तीय शब्दावलि की अन्तिम व्यंजन ध्वनि के साथ परसर्गीय शब्दावलि के आदि-स्थानीय व्यंजन के संयोग की प्रवृत्ति को हमने उक्त संज्ञा दी है । उच्चारण-प्रयत्न तथा मोचन-प्रक्रिया की दृष्टि से यह संयोग नीचे गिनाए हुए अन्य संयोगों से भिन्न नहीं कहा जा सकता । यथा :

	–न् + त–
मन तक	मन् + तक = मन भर तक (शब्द-वाह्य-संयोग)
सुन्तन	सुन् + तन = सुनने में (अंतश्शब्द-संयोग)
	–म् + का
काम कौ	काम् + कौ = काम का (शब्द-वाह्य-संयोग)
झुम्का	झुम् + का = झुमका (अन्य संयोग)

ii) अन्तश्शब्द-संयोग (Intraword Consonant Cluster) प्रकृति एवं प्रत्यय के सन्धि-स्थल पर उत्पन्न व्यंजन-संयोग को उक्त संज्ञा दी गई है । वस्तुतः इस तथा उपर्युक्त व्यंजन-संयुक्तता में कोई मध्यवर्त्ती स्वर-श्रुति सुनाई नहीं पड़ती; साथ ही, पूर्व तथा पर-भागीय व्यंजनों के लिए प्रयुक्त उच्चारणीय अवयव अपनी मोचन (release) तथा स्पर्श (obstruction) प्रक्रिया में भी कोई अन्तर नहीं लाते । यथा :

चल्नैं	—	चलनैं	=	चलना
अत्पई	—	अदपई	=	आधा पाव
कर्बो	—	करबो	=	करना
चल्वाव	—	चलवाओ	=	चलवाओ
लत्याव	—	लतयाव	=	लात मारो

iii) अन्य (Miscellaneous) इसके अन्तर्गत देशी-विदेशी, तत्सम-तद्भव आदि उन सभी शब्दों के व्यंजन-संयोग आ जाते हैं, जो बुन्देली रचनात्मक दृष्टि से प्रकृति एवं प्रत्यय में अलग-अलग विभक्त नहीं होते। यथा :

कम्टी	=	बाँस की पतली छड़ें
उल्टौ	=	उल्टा
बस्ती	=	आबादी
सक्सा	=	एक शाक
सख्ती	=	कड़ाई
लप्टा	=	बेसन से बना एक खाद्य पदार्थ
मस्काँ	=	चुपके से
बन्का	=	छोटा बन
बर्मा	=	लोहे का हथियार
सींक्चा	=	खिड़की
बन्गा	=	लकड़ी के चीरे
चुस्ती	=	फुर्ती

[इनमें से कुछ को अन्तश्शब्द-संयोग में ले जाया जा सकता है।]

२६. व्यंजन संयुक्तता से सम्बन्धित एक प्रश्न और भी है कि महाप्राण व्यंजनों ख घ आदि को एक इकाई के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए अथवा संयुक्त-व्यंजन (यथा क् + ह) रूप में। वस्तुतः भाषा का इतिहास उन्हें मुख > मुँह (क् तत्त्व का लोप) तथा भूख > भूक (ह् तत्त्व का लोप) के उदाहरणों से दो भिन्न ध्वनि-तत्त्वों के रूप में स्वीकार करता है, पर समसामयिक भाषा का शुद्ध विश्लेषण जिन नियमों से सुस्पष्ट हो, वही रूप स्वीकार किया जाना चाहिए। हम निम्न कारणों से महाप्राण व्यंजनों को एक इकाई रूप में स्वीकार करते हैं :—

i) उच्चारण-प्रयत्न की दृष्टि से दोनों तत्त्वों का एक साथ ही उद्वमन होता है; जबकि सामान्य व्यंजन-गुच्छों में पूर्वापर सम्बन्ध स्पष्ट रहता है।

ii) महाप्राण व्यंजन ध्वनियाँ भाषा के आदि, मध्य तथा अन्त में उसी प्रकार स्वतंत्रता से व्यवहृत होती हैं, जिस प्रकार महाप्राण रहित व्यंजन ध्वनियाँ।

iii) शब्दादि में त्रि-व्यंजनात्मक गुच्छ नहीं हैं अर्थात् क् क् क् अ (cccv) का क्रम नहीं है, पर यदि इन्हें व्यंजन-गुच्छ स्वीकार करते हैं तो केवल इनके लिए ही आक्षरिक वितरण में अन्तर स्वीकार करना होगा; यथा : ख्वार (क्क्क्अ-) = चद्दर

iv) भाषा की धातुओं का अन्त संयुक्त व्यंजन में नहीं होता फिर महाप्राण ध्वनियों के लिए जो धातु के अन्त में आती हैं, यथा √चौंख- = चूसना आदि, उक्त नियम को क्यों अपवाद-गर्भित बनाया जाए।

v) लिपि परम्परा तथा भारतीय वैय्याकरण इन्हें एक इकाई रूप में ही स्वीकार करते हैं।

२७. हमने व्यंजन-समूह का वर्गीकरण करते समय न्ह, म्ह, र्ह, ल्ह, व्यंजनों का एक अलग वर्ग निर्धारित किया है (विषय-क्रम ६)। वस्तुत: इन्हें ख घ आदि की तरह एक इकाई बीकार किया जाना चाहिए अथवा न् + ह……… का योग। यह प्रश्न यहाँ विचारणीय है।

हमारी उच्चारण-पद्धति जो कि अक्षर-वितरण के आधार पर स्पष्ट होती है, निश्चित निष्कर्ष नहीं दे पाती। यथा :

i) तुम्हें— तुम्.हें = तुमको
कन्हइया—कन्.हइ.या = कृष्ण

इस प्रकार के उच्चारण का भ्रम तो अवश्य हो जाता है पर यह अक्षर-वितरण उतना स्वाभाविक नहीं; जितना कि

ii) तुम्हें — तु-म्हें = तुमको
कन्हइया—क-न्हइ-या = कृष्ण

पर इससे भी कहीं अधिक स्वाभाविक उच्चारण निम्न प्रकार का है —

iii) तुम्हैं — तुम्-म्हैं = तुमको
कन्हइया — कन्-न्हइ-या = कृष्ण

कुछ और उदाहरण दिए जा सकते हैं :

कुल्ल्हड़ — कुल्-ल्हड़ = मिट्टी का एक छोटा पात्र
चिन्ह — चिन्-न्ह = निशान
करहइया — कर्-र्हइ-या = कढ़ाई

परन्तु भाषा-विश्लेषण और लिपि के वर्ण संगठन की दृष्टि से प्रथम दो वर्गों में से एक चुनना है। प्रथम के अनुसार दो व्यंजनों के योग तथा द्वितीय के अनुसार ये एक इकाई, महाप्राण व्यंजन ठहरते हैं।

काव्य-शास्त्रीय मात्रा-गणना हमारे द्वितीय कोटि के उच्चारण का समर्थन करती जान पड़ती है और इस प्रकार हम इन्हें महाप्राण व्यंजन स्वीकार कर सकते हैं —

तुम्हइ विचारि कहहु नरनाहा
। ।। ।ऽ। ।।। ।।ऽऽ =१६
पुन्य पुञ्ज तुम्ह पवन कुमारा
ऽ। ऽ। ।। ।।। ।ऽऽ =१६

यदि इन 'म्ह' के 'म्' को पूर्व अक्षर के साथ उच्चारण करें तो उस अक्षर के लिए दीर्घ मात्रा माननी होगी और इस प्रकार चौपाई की १७ मात्राएँ हो जाएँगी जो कि सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा।

भाषा में पाए जाने वाले लघुत्तम शब्द-युग्मों (Minimal pairs) को यदि हम निम्न प्रकार व्यवस्थित करें तो ये महाप्राण व्यंजन सिद्ध हो सकते हैं —

नन्ना = नन्-ना = बड़ा भाई
नन्हौ = नन्-न्हौ = छोटा
करइया = क-रइ-या = करने वाला
करहइया = क-र्हइ-या = कढ़ाई
उन्हन = उ-न्हन = उन्हों-
उन्हन = उन्-न्हन = कपड़ों-

अक्षर-वितरण

[Syllabication]

२८. वक्ता अपने वक्तव्य-प्रवाह में कहीं थोड़ा और कहीं अधिक विराम लेता चलता है, यह मोड़ वह सामान्यतः अर्थ की दृष्टि से देता है, पर भाषा में अनिवार्यतः श्वास-प्रक्रिया पर भी आधारित विराम स्थल होते हैं। हर श्वासाघात के बाद स्वल्प विराम अनिवार्य है। इस एक श्वासाघात में भाषण की जितनी ध्वनियाँ सिमट कर इकाई बनाती हैं, उस इकाई को अक्षर (syllable) कहते हैं। ये इकाइयाँ प्रत्येक भाषा की अलग-अलग होती हैं। उनके उच्चारण में यत्किंचित परिवर्तन होने से चाहे अर्थ में अन्तर न पड़े, पर उन भाषा-भाषियों के बीच वह उच्चारण हास्यास्पद होगा। जैसे, 'दशमलव' शब्द का उच्चारण दश्-म-लव् रूप में भी कर दिया जाता है, जबकि हिन्दी का विशुद्ध उच्चारण द-शम्-लव् है। रियासत का उच्चारण दो तरह से होता है; यथा, र्‍या-सत् तथा रि-या-सत्। प्रथम उच्चारण हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए संभवतः शुद्ध कहा जायगा। इस प्रकार भाषा को सीखने के लिए भाषा-विशेष के अक्षर-वितरण को समझना अनिवार्य है। बुन्देली शब्दों की लघुतम एवं बृहत्तम अक्षर-संख्या कितनी है तथा बहु अक्षरीय शब्दों में पाए जाने वाले व्यंजन गुच्छ किस प्रकार भिन्न-भिन्न अक्षरों में वितरित हो जाते हैं, और, साथ ही, शब्द अथवा पद की सीमाओं के साथ अक्षर की सीमाएँ किस प्रकार सम्बन्धित हैं, आदि, नियमों का उल्लेख करना यहाँ अभीष्ट है :—

एकाक्षरी शब्द—[अ = स्वर, क् = व्यंजन]

i) अ: इस कोटि में इने गिने सर्वनाम रूप तथा क्रिया-पद आयेंगे। स्वर सदैव दीर्घ ही रहेगा—

आ	तैं आ	= तू आ
ऊ	ऊ आओ	= वह आया

ii) क् अ : इस कोटि की शब्दावलि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ भी स्वर दीर्घ ही मिलेगा।

खा	तैं खा	= तू खा
मैं	मैं आओ	= मैं आया

iii) अ क् : प्रचुर मात्रा में शब्दावलि विद्यमान है।

आम्, ईँट्, ऊँट, ओस आदि

iv) क् अ क् : भाषा की रीढ़ इसी ध्वनि-क्रम वाली शब्दावलि है। चल्, कर्, रुक् आदि

v) क् क् अ क् : अत्यल्प शब्द उपलब्ध हो रहे हैं। द्वितीय व्यंजन अर्धस्वर-य अथवा-व ही प्रयुक्त हुए हैं।
ख्वार = चादर
प्यार = प्रेम

vi) (क्) अ क्र् क् : सीमित शब्दावलि। (विषय क्रम २५)

द्वि-अक्षरी शब्द—

i) अ-अ	—	आओ
ii) क् अ-अ	—	खाओ
iii) अ-क् अ	—	ईंटा
iv) क् अ-क् अ	—	चलो
v) क् क् अ-क् अ	—	क्यारी
vi) क् अ-क् अ क्	—	चलल्
vii) क् अ क्-क् अ	—	चल्तो

त्रि-अक्षरी शब्द—

i) क् अ-क् अ-क् अ	— गें-ड़ु-वा	= तकिया
ii) क् अ-क् अ-क् अ क्	— स-मे-टत्	= समेटता है
iii) क् अ-क् अ क्-क् अ	— स-मेट्-तो	= (यदि) समेटता
iv) क् अ क्-क् अ क्-क् अ	— सम्-झाव्-तो	= (यदि) समझाता
v) क् अ-क् अ क्-क् अ	— बु-लाव्-नैं	= बुलाना
vi) क् अ क्-क् अ-अ क्	— लत्-या-उत्	= लात मारता है
vii) क् अ क्-क् अ-क् अ	— गुन्-ता-ड़ौ	= अनुमान
viii) क् अ क्-क् क् अ-अ क्	— खुर्-च्वा-उल्	= खुरचता है
ix) क् अ क्-क् क् अ क्-क् अ	— खुर्-च्वाव्-नैं	= खुरचवाना

चतुराक्षरी शब्द—

i) क् अ-क् अ क्-क् अ क्-क् अ	— स-मझ्-वाव्-नैं	= समझवाना
ii) अ-क् अ क्-क् अ-अ	— ऊ-धम्-या-ऊ	= ऊधमयाऊ

इस प्रकार त्रि-अक्षरी तथा चतुराक्षरी शब्द भाषा में मिल जायेंगे, पर पंचमाक्षरी शब्द संभवतः कोई न होगा। अक्षर में ध्वनि-वितरण सम्बन्धी नियम इस प्रकार हैं :—

१. स्वर-मध्य में आया हुआ व्यंजन परवर्ती स्वर के साथ उच्चरित होता है। यथा :

अकल — अ-कल् = बुद्धि
उतै — उ-तै = वहाँ

२. आदि-व्यंजन-गुच्छ परवर्ती निकटस्थ स्वर के साथ, अन्त-व्यंजन गुच्छ निकटस्थ पूर्ववर्ती स्वर के साथ तथा मध्य-व्यंजन-गुच्छ में प्रथम व्यंजन पूर्ववर्ती तथा शेष, परवर्ती स्वर के साथ सम्बद्ध होंगे। यथा :

क्यारी	—क्या-री	क् क् अ-क् अ
उजड्ड	—उ-जड्ड	अ-क् अ क् क्
कल्लू	—कल्-लू	क् अ क्-क् अ
उड़्ला	—उड़्-ला	अ क्-क् अ
कर्ह्याई	—कर्-ह्या-ई	क् अ क्-क् क् अ-अ
सम्झाव्नैं	—सम्-झाव्-नैं	क् अ क्-क् अ क्-क् अ
समझ्वाव्नैं	—स-मझ्-वाव्-नैं	क् अ-क् अ क्-क् अ क्-क् अ

३. शब्द के आदि में जिस प्रकार की ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं, वैसा ही क्रम अक्षर के आदि में भी संभव है। यथा :

i) ड़ (ढ़) से शब्दारंभ नहीं होता।
ii) क् क् में द्वितीय व्यंजन अनिवार्यतः अर्धस्वर होगा।

४. पदांश (morpheme) की सीमा से अक्षर की सीमा मेल खाए, यह आवश्यक नहीं, पर मेल खाने में कोई बाधा नहीं।

सम्झो = समझ् + ओ (पदांश-सीमा)
= सम् + झो (अक्षर-सीमा)
चल्ता = चल् + ता (पदांश-सीमा)
= चल् + ता (अक्षर-सीमा)

५. शब्द-सीमा से अक्षर की सीमा अवश्य मेल खाती है, पर यह आवश्यक नहीं है कि अक्षर की सीमा से शब्द की सीमा भी मेल खाए।

शब्द-संगम

[Word Juncture]

२९. अक्षर-सीमा को स्पष्ट करते हुए दो प्रकार के विराम-स्थलों की ओर संकेत किया गया है। एक तो, हमारी उच्चारण प्रक्रिया का स्वाभाविक अंग है, जिसे अक्षर-सीमा कहा गया है; दूसरे, अर्थ को ध्यान में रखकर भी वक्ता अपने वक्तव्य-प्रवाह में यथावश्यक विराम लेता चलता है, इसी को हम 'संगम' (juncture) की संज्ञा दे रहे हैं। यथा: हिन्दी—

किस्सा = कहानी
किस + सा = किसके समान

दोनों के उच्चारण में सामान्यतः अन्तर नहीं है, पर पढ़े-लिखे व्यक्ति 'किस-सा' अलग-अलग लिखे जाने के कारण अवश्य विराम लेते हुए उच्चारण करते पाये जायेंगे। पर, उच्चारण समान होते हुए भी अलग-अलग लिखे जाने का कारण भी दोनों का अर्थ-वैभिन्य ही है। इस प्रकार उच्चारण द्वारा सुस्पष्ट न होते हुए भी हमें इस विराम को परिकल्पित करना पड़ता है। यह सदैव अक्षर की सीमा से पूरी तौर से मेल खाता है। समूची भाषा के लिए इस संगम के दो-चार भेदों की परिकल्पना करनी पड़ सकती है। हम शब्द-स्तर पर दो संगम (juncture) अनिवार्य समझते हैं :—

i) प्रत्यय-संगम (Morphemic juncture)
ii) शब्द -संगम (Word juncture)

प्रत्यय-संगम ध्वनिग्राम-संख्या (Inventory of Phonemes) को घटाने में सहायक होता है। यथा :

/कु + डौल/ = /कुडौल/, ड एवं ड़ भाषा में परिपूरक-स्थिति में प्रयुक्त होते हैं। यहां ड स्वरमध्य में स्थित है जो कि भाषा के लिए अपवाद है (विषयक्रम-१२)। अतएव अर्थ को ध्यान में रखते हुए पूर्व-शब्द-खण्ड 'कु' को प्रत्यय-संगम द्वारा अलग करके शब्द का आरंभ 'डौल' से मान सकते हैं।

/कल्मैं/ (=कलम का बहुवचन) तथा /कल + मैं/ (=आराम में) शब्दों

में प्रथम का ल् निर्मुक्त (unreleased) तथा द्वितीय का, विमुक्त (released) है। इस प्रकार दो ल ध्वनिग्राम होंगे और यदि संगम-सीमा की परिकल्पना (postulation) कर ली जाती है तो एक ध्वनिग्राम से ही काम चलाया जा सकता हैं। यह प्रवृत्ति केवल इसी व्यंजन-ध्वनि के साथ नहीं है, अपितु अन्य स्वर तथा व्यंजन भी उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

/चुन्नैं/ (=चुन्ना को) तथा /चुन + नैं/ (=चुनना) में भी ध्वनि-निर्मुक्त तथा विमुक्ति का प्रश्न है। इसलिए यहाँ द्वितीय में भी संगम-स्थिति स्वीकार की जा सकती है।

शब्द-संगम, योगरूढ़ समस्त पदों की दो स्वतन्त्र पदों से अर्थ-भिन्नता दिखलाने के लिए प्रयुक्त होता है। यथा, हिन्दी : /करुनानाथ/ (=दीनों के मालिक अर्थात् ईश्वर) से /करुना + नाथ/ (=करुना नाम की लड़की, जो अपना उपनाम 'नाथ' अपने सम्प्रदाय के आधार पर जोड़े हुए है)। बुन्देली में भी इस प्रकार के प्रयोग मिल जायेंगे। यथा :

/रामपरसाद/	(=व्यक्ति-विशेष का नाम)
/राम + परसाद/	(=राम के प्रसाद से)
/पन्नालाल/	(=व्यक्ति-विशेष का नाम)
/पन्ना + लाल/	(=पन्ना लाल रंग का है)

पद विचार

संज्ञा

१. लिंग-वचन-कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिये बुन्देली संज्ञाएँ यत्किंचित् रूप-परिवर्तन करती हैं। उन सबकी चर्चा इस अध्याय का विषय है, परन्तु इसके पूर्व संज्ञाओं के प्रातिपदिक-रूपों (प्रति-पद में पाए जाने वाले समान-अंशों) का निर्धारण आवश्यक है। इस प्रकार संज्ञा-पद-रचना से सम्बन्धित चार बातों --- प्रातिपदिक अंश, लिंग तथा वचन-विधान और कारक-प्रक्रिया -- पर नीचे विचार किया जा रहा है।

प्रातिपदिक अंश

२. लिंग, वचन तथा कारक-विभक्ति-प्रत्ययों से संयुक्त बुन्देली संज्ञा-पदों में से प्रातिपदिक अंश निकाल लेना निर्विवाद नहीं कहा जा सकता; यथा—

पु० एक०	स्त्री० एक०	स्त्री० बहु०	पु०बहु०
मौड़्–ा	मौड़्–ी	मौड़्–ीं	मौड़्–ा
हिन्न्–ा	हिन्न्–ी	हिन्न्–ीं	हिन्न्–ा
पन्ह्–ा	पन्ह्–इया	पन्ह्–इयाँ	पन्ह्–ाँ .

उपर्युक्त तथा अन्यान्य ऐसे ही उदाहरणों के आधार पर यदि निश्चित किया जाए कि --आ पुल्लिंग,–ई (+ या) स्त्रीलिंग तथा स्वर-अनुनासिकता –ँ बहुवचन के विभक्ति-प्रत्यय हैं तो प्रातिपदिक अंश मौड़्, हिन्न्, पन्ह् ठहरते हैं, परन्तु इनको इस नये रूप में स्वीकार करने में दो बातें सामने आती हैं —

i) उपहृत-अंश भाषा में कहीं स्वतन्त्र शब्द के रूप में प्रयुक्त नहीं होते।

ii) उपहृतांश कहीं सानुनासिक, कहीं निरनुनासिक स्वर; कहीं एकाकी, कहीं द्वित्त्व व्यंजन, सारांशतः अनेक ध्वनि-रूपों में अन्त होने वाले हैं; यथा—

सु–आ		=सुआ
कुँ–आ		=कुआ
पान्–ई		=पानी
पन्ह्–आ	—पन्हा	=जूता
पत्–औ	— पतौ	=पता
पत्त्–आ	—पत्ता	=पत्ता

फलस्वरूप प्राप्त प्रातिपदिक-रूपों को पद-रचना की दृष्टि से वर्गीकृत करना असम्भव हो जायेगा। साथ ही,

iii) भाषा में श्लेषार्थी (homonymic) अंशों की प्रचुरता हो जायेगी, जैसे—

पेड़्–औ = पेड़	सार्–औ = साला	
पेड़–आ = पेड़ा	सार्	=गाय-बैलों को बाँधने का कमरा या घर
तार्–औ = ताला		
तार् = तार		

उपर्युक्त विधि के अनुसार प्रातिपदिक अंशों (Base forms) को निर्धारित करना अव्यवहारिक होगा। अतएव पुल्लिग हो अथवा स्त्रीलिंग, कर्त्ता एकवचन का संज्ञा-पद प्रातिपदिक-रूप में स्वीकार करना होगा अर्थात् उपर्युक्त उदाहरणों में बुन्देली संज्ञाओं के प्रातिपदिक-रूप होंगे—मौड़ा-मौड़ी, हिन्ना-हिन्नी, पन्हा-पन्हइया तथा पेड़-पेड़ा, तारौ–तार, सारौ-सार, आदि।

३. यहाँ एक बात का और निर्णय करते चलना अप्रासांगिक न होगा। मौड़ा, हिन्ना, पन्हा आदि में यदि –आ पुं०–प्रत्यय है तो सारौ, भतीजौ, गाड़ौ में–औं कौन-सा प्रत्यय होगा क्योंकि –इ(+ या),–आ तथा –औ, दोनों ही से स्त्री-प्रत्यय के रूप में सुसम्बद्ध है : यथा सारी, भतीजी, गाड़ी आदि। बुन्देली भाषा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह –औ संस्कृत के –क: (यथा श्यालक:>सारौ) का विकसित रूप है, जोकि लिंग-वचन एवं कर्त्ता का सम्मिलित विभक्ति-प्रत्यय है। यह प्रत्यय इस रूप में न केवल संज्ञा-पदों के संयोग में मिलता है अपितु विशेषण, सर्वनाम तथा कृदन्त-रूपों में भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। इस प्रकार भाषा-विश्लेषण तथा भाषा-इतिहास दोनों ही दृष्टियों से यह –औ प्रत्यय तीनों – लिंग-वचन तथा कारक –का सम्मिलित विभक्ति-प्रत्यय है, और–आ प्रत्यय जोकि अन्यत्र भाषा में पुं–

प्रत्यय के रूप में अतिव्यवहृत है, वहाँ भी एकमात्र पुं० प्रत्यय ही स्वीकार किया जाना चाहिये। इसके अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं—

पुं०	स्त्री०	
चुट्टा	चुट्टू	= चोरी करने वाला (वाली)
खब्बा	खब्बू	= अधिक खाने वाला (वाली)
उचक्का	उचक्कू	= शैतानी करके भागने वाला (वाली)
ललत्ता	ललत्तू	= और खाने की लालसा रखने वाला (वाली)

भाषा-इतिहास की दृष्टि से इस निष्कर्ष में कठिनाई हो सकती है पर भाषा-विश्लेषण सुविधाजनक होगा।

४. ऊपर निश्चित किया गया है कि संज्ञाओं का कर्त्ता, एकवचन वाला रूप ही प्रातिपदिक अंश है। इस प्रकार बुन्देली में प्रातिपदिकों के निम्न प्रकार सम्भव हैं—

i) व्यंजनान्त —घर, बार (= बाल) आदि पुल्लिग तथा बात, लात आदि स्त्रीलिंग शब्द इसी वर्ग के अन्तर्गत रखे जाएँगे (ध्वनिविचार ४—१.)। वस्तुतः बुन्देली की अधिकाधिक शब्दावलि इसी के अन्तर्गत सिमट जाएगी।

ii) आकारान्त—इस कोटि के अन्तर्गत –आ और –इया में अन्त होने वाले शब्द लिये जा सकते हैं, यथा : दद्दा, कक्का, मौड़ा, घूका (पुं०); चिरइया, बिलइया, घुकइया, दौरिया (स्त्री०)

iii) ईकारान्त—इस कोटि के अन्तर्गत पर्याप्त शब्दावलि आ जाती है, यथा : बाई (= माँ) लुगाई (= स्त्री), दवाई (= दवा) आदि स्त्री० तथा धोबी, हाथी पुं०। इकारान्त शब्दों का बुन्देली में सर्वथा अभाव है। जहाँ-कहीं कुछ संस्कृत शब्दावलि ह्रस्वरूप में लिखी मिल जाती है, वहाँ भी उच्चारण में दीर्घ रूप ही उपलब्ध होता है, यथा : शान्ती (शान्ति), कान्ती (कान्ति), हरी (हरि), पती (पति), मती (मति) और कभी-कभी जात (जाति), पाँत (पाँति)।

iv) ऊकारान्त—बिन्नू (=बहिन), गऊ (=गाय), नाऊ (=नाई) दाऊ आदि प्रचुर शब्द मिल जाएँगे। ह्रस्वान्त शब्दों के सम्बन्ध में यहाँ भी दुहराया जा सकता है कि संस्कृत-ग्रहीत उकारान्त शब्द दीर्घ-रूप में ही उच्चरित होते हैं। यथा: साधू, प्रभू, (पिरभू) आदि, साथ ही, कभी-कभी साव (=साहु), असाध (=असाधु)।

v) एकारान्त—इने गिने शब्द ही मिल सकेंगे, यथा : दुबे, चौबे आदि।

vi) ऐकारान्त—इस कोटि में भी शब्दों की कमी है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं : कै (=उल्टी), जै (=जय), तै (=तय)

vii) ओकारान्त–अत्यल्प शब्द उपलब्ध हैं। भओ (=जन्म), यथा : बा भओ करन गई = वह जन्म देने गई। चोओ (=धुली दाल का छिलका), खाबो, पीबो आदि क्रियामूलक संज्ञाएँ, मोओ, तोओ आदि कतिपय सर्वनाम तथा को परसर्ग भी इसी के अन्तर्गत आएँगे।

viii) ओ/औकारान्त--इस विभाजन के लिए परिशिष्ट में दिया हुआ भाषा-मानचित्र भी दृष्टव्य है।

तारो ~ तारौ (=ताला), गोड़ो ~ गोड़ौ (=पैर),
दोरो ~ दोरौ (=द्वार), चौंपौ (=चौपाया),
माथौ (=मस्तक)

४-१. यहाँ यह निर्देश अनावश्यक न होगा कि कुछ शब्द एक ही क्षेत्र में द्विविध प्रातिपदिक (Base) रखते हैं, वस्तुतः इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण परिनिष्ठित हिन्दी का व्यापक प्रभाव है। जैसे :

घामौ ~ घाम (=धूप)
पतौ ~ पता
पेड़ौ ~ पेड़
मौड़ौ ~ मौड़ा
बनियौ ~ बनिया
बैला ~ बैलवा

लिंग-विधान

५. पद-रचना की दृष्टि से बुन्देली-संज्ञाओं को, चाहे वे जड़ का बोध कराने वाली हों, चाहे चेतन का, दो वर्गों में विभाजित करके देखा गया है—पुल्लिग एवं स्त्रीलिंग। नपुंसक लिंग के अभाव में जड़ वस्तुओं को उपर्युक्त दो में से किसी एक वर्ग के अन्तर्गत रखकर पद-रचना होती है अतएव भाषा की लिंग-प्रक्रिया प्राकृतिक लिंग पर आधारित नहीं कही जा सकती, वह व्याकरणिक ही अधिक है। वस्तुतः वचन एवं कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले विभक्ति-प्रत्ययों की दो कोटियाँ हैं। एक कोटि, एक प्रकार के शब्दों में जुड़ती है जिसे पुल्लिग संज्ञा कह देते हैं और दूसरी, दूसरे प्रकार के शब्दों में, जिसे स्त्रीलिंग संज्ञाएँ कहा जा सकता है। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ऐतिहासिक विकास के कारण इन विभक्ति-प्रत्ययों को संज्ञा-पदों से सर्वत्र निकाल पाना सम्भव नहीं है। कर्त्ता, एकवचन के रूपों को ही प्रातिपदिक अंश स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए इन बदली हुई स्थितियों में हम शब्दों के रचना-तत्त्वों के अनुसार (morphologically) लिंग के सम्बन्ध में सुनिश्चित व्याकरणिक नियम नहीं दे सकते। लिंग-निर्णय के लिये तो अधिकांश स्थानों पर शब्दों के प्रयोग (syntactically) पर ही ध्यान देना पड़ता है। अतएव यहाँ बुन्देली संज्ञाओं के लिंग-विधान से सम्बन्धित दोनों विधाओं—शब्द-रूप एवं शब्द-प्रयोग—का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

शब्द-रूप

i) ओ/औ में अन्त होने वाली सम्भवतः सभी संज्ञाएं पुल्लिग ठहरती हैं :—

छैंरो	= छाया (हिन्दी प्रतिरूप)
पहरौ ~ पारौ	= चौकीदारी
घामौ ~ घाम	= धूप
धोकौ	= धोखा

ii) ईकारान्त संज्ञाएँ अधिकांशतः स्त्री० होती हैं। धोबी, कोरी जोशी आदि पेशेवर जातियों की द्योतक शब्दावलि अपवाद ठहरती है।

दवाई = दवा
उघन्नी = ताली
लुगाई = स्त्री
करह्याई = कमर
राही = आराम (फारसी राहत)

iii)–आ (–वा) कारान्त संज्ञाएँ अधिकांशतः पुल्लिग ही हैं और -इया-कारान्त स्त्रीलिंग :

पुं० घुड़वा = घोड़ा
बैला ~ बैलवा = बैल
चिरवा = नर-चिड़िया
बिलरा = नर-बिल्ली
करह्या = कमर
कुँआ = कुआ
पुआ = मीठी-पूड़ी

स्त्री० घुड़िया, गइया, चिरइया, बिलइया,
कुइया (= छोटा कुआ) टुइयाँ (= मैना) आदि।

iv)–ऊकारान्त संज्ञाएँ स्त्री० तथा पुल्लिग दोनों ही कोटियों में समान रूप से मिलेंगी, यथा :

स्त्री० बिन्नू = बहिन
चक्कू = चाकू
बिच्छू = बिच्छू
खब्बू = अधिक खाने वाली

पुं० नाऊ = नाई
डाँकू = डाकू
दाऊ = बड़ा भाई
सावजू = साहु + जू

नियमों की संख्या जितनी ही आगे बढ़ाई जाएगी उतने ही अपवाद सामने आएँगे। तथ्य तो यह है कि बुन्देली-संज्ञाओं का लिंग-निर्णय शब्द-प्रयोग से ही सम्भव है। अतएव नीचे उसी को स्पष्ट किया जा रहा है।

शब्द-प्रयोग

अन्यान्य प्रकार के विशेषण-रूप—कृदन्तीय, सार्वनामीय, परसर्गीय—अपने विभक्ति-प्रत्ययों द्वारा अनिर्णीत शब्दों में लिंग का निश्चय कराते हैं। कुछ ऐसे स्थल इस प्रकार हैं :—

दो समानार्थी शब्द—ठौर, जघा (=जगह)

बौ ठौर अच्छो है। (पु०) बा जघा अच्छी है। (स्त्री०)	= वह स्थान अच्छा है।

दो समान वाहन—बस, मोटर

बस आ पौंची। (स्त्री०) मोटर आ पौंचो। (पु०)	= मोटर आ पहुँचा।

सम-ध्वन्यान्त शब्द—(देशी तथा विदेशी)

कलफ (= माँड़ी), अलफ (= विपत्ति)
कमींच कौ कलफ (पु०) = कमीज की माँड़ी
ऊ की अलफ (स्त्री०) = उसकी विपत्ति
हाँत (= हाथ), पाँत (= पंक्ति)
ऊ कौ हाँत (पु०) = उसका हाथ
ऊ की पाँत (स्त्री०) = उसकी पंक्ति

श्लेषार्थी शब्द —बार

कित्ती बार = कितनी दफा
मूँड के बार = सिर के बाल
सोर हो रओ = शोर हो रहा है।
सोर उठ गई = सूतिका दिवस पूरा हो गया।

लगभग समान-वस्तु द्योतक शब्दावली—

चाँउर अच्छे हैं = चावल अच्छे हैं
दार अच्छी है = दाल अच्छी है

परन्तु

अच्छौ दार-भात = अच्छे बने हुए दाल-चावल
अच्छी खिचरी = अच्छा बना हुआ दाल और चावल का मिश्रित खाद्य

नर-मादा-समूह द्योतक शब्दावली —

नार निकल गई = पशुओं का झुण्ड
लेँड़ की लेँड़ ठाँड़ी = पंक्ति की पंक्ति खड़ी है
भीर जुरी / हजम्मौ जुरो } = भीड़ इकट्ठी है।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि लिंग-निर्णय के लिये शब्द-रूप पर नहीं, अपितु शब्द-प्रयोग पर विश्वास किया जाना चाहिये। ऐसे भी प्रयोग प्रायः सुनने में आते हैं जहाँ संज्ञा का भिन्न स्त्रीलिंग शब्द-रूप होते हुए भी पु० शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है और उत्पन्न होने वाले भ्रमनिवारण के लिये पूर्वापर भाग में कहीं स्त्रीलिंग विशेषण रखकर काम चला लिया जाता है। यथा—

अहीर, चमार, बसोर आदि पु० शब्दों के स्त्री० रूप क्रमशः अहीरिन, बसोरिन, चमारिन लोक-प्रसिद्ध हैं परन्तु,

दई की खाई अहीरैं (= दही खाई हुई अर्थात् पुष्ट अहीरिनैं)
बा बसोर झारन गई = वह बसोरिन झाड़ने गई
बा चमार पीसन आई = वह चमारिन पीसने आई

वचन-विधान

६. बुन्देली संज्ञाएँ वचन-विधान की दृष्टि से दो रूप रखती हैं। एक रूप, वस्तु के एकत्व का बोधक होता है और दूसरा, एक से अधिकत्व का। इन्हीं को क्रम से संज्ञा का एकवचन और बहुवचन रूप कहा जाता है। वस्तुतः जैसा ऊपर कहा जा चुका है, संज्ञा-पदों में पाये जाने वाले वचन के विभक्ति-प्रत्ययों को कारक-सम्बन्धों के द्योतक विभक्ति-प्रत्ययों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसलिए इन विभक्ति-प्रत्ययों को सामूहिक रूप से पद-रचना के प्रकारों (Declentional Types) के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वचन-प्रक्रिया की इस संश्लिष्ट (synthetic)

विधा के अतिरिक्त एक विश्लिष्ट (analytical) विधा भी है[१]। अर्थात् इन संज्ञाओं में यत्र-तत्र कहीं अनिवार्य और कहीं वैकल्पिक रूप से स्वतंत्र शब्दों के योग से अनेकत्व का बोध करा दिया जाता है। यह बहुवचन-द्योतक शब्दावलि इस प्रकार है—लोग, -और-, -हर-, -सब जन-। ये शब्द सर्वनाम-रूपों में विशेष रूप से तथा संज्ञा शब्दों में यदा-कदा लगते हैं,

यथा—— तुम लोग ~ औरै अइयो = माँ आदि आएँगीं।
बाई हरैं औहैं = तुम लोग आना

कारक-विधान

७. 'ए बेसिक ग्रामर ऑव मॉडर्न हिन्दी' (A Basic Grammar of Modern Hindi) के रचयिता ने कारक की जो परिभाषा दी है वह आधुनिक आर्य-भाषाओं के लिये अधिक समीचीन कही जा सकती है। कारक, संज्ञा (अथवा सर्वनाम) का वह रूप है जो कि वाक्य के किसी अन्य शब्द से अपना सम्बन्ध प्रकट करे। वस्तुत: इन संज्ञा-रूपों के द्वारा जो सम्बन्ध स्पष्ट किये जाते हैं, वे तो अनेक हैं और अनेक प्रकार के हैं। जैसे, कर्त्ता-कृतित्व का, साधन--साध्य का, सम्बन्ध-सम्बन्धी का, अधिकार-अधिकारी का, आधार-आधेय का, आदि, परन्तु हिन्दी तथा उसकी क्षेत्रीय बोलियों में किसी भी संज्ञा के किसी एक वचन में दो या तीन से अधिक रूप देखने में नहीं आते। इसलिये बुन्देली में दो या अधिक से अधिक तीन कारक ही कहे जा सकते हैं।

मूल रूप—संज्ञा का यह वह रूप है जिसे हमने ऊपर प्रातिपदिक रूप में स्वीकार किया हैं, यथावत् रह कर ही यह कुछ कारक सम्बन्धों को (जैसे कर्त्ता, कर्म) स्पष्ट करने में पूर्ण समर्थ है, इसलिए इसे मूल रूप या मूल कारक कहा जा सकता है। उदाहरणत:

पेड़ौ गिर परो = पेड़ गिर पड़ा (कर्त्ता)
पेड़ौ गिरा देव = पेड़ गिरा दो (कर्म)

---

१. Synthetic (संश्लिष्ट) को Morphological (पदात्मक) और Analytical (विश्लिष्ट) को Syntectical (वाक्यात्मक) न कह सकेंगे। क्योंकि ये तत्त्व अभिधार्थी (शब्द) नहीं रह गए हैं और न अभी व्याकरणार्थी (प्रत्यय) बन पाए हैं।

पानी बेहत = पानी बहता है (कर्त्ता)
पानी ल्याव = पानी लाओ (कर्म)

भाषा-इतिहास के विद्यार्थी को यह न भूल जाना चाहिये कि ये मूल रूप बुन्देली प्रातिपदिक निर्णय की दृष्टि से हैं, वस्तुतः इन मूल रूपों में संस्कृत-युग के विभक्ति-प्रत्ययों के अवशेष सजीव हैं और उन्हीं की शक्ति पर ये रूप अपने कर्त्ता और कर्म के सम्बन्धों को स्पष्ट कर रहे हैं।

विकारी रूप—संज्ञाओं के ये वे रूप हैं जो मूल रूप अथवा प्रातिपदिक रूपों की तुलना में कुछ परिवर्तित जान पड़ते हैं। परिवर्तन की इसी प्रवृत्ति को लक्षित करके इनको 'विकारी' रूप की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः इन रूपों में भी संस्कृत के कतिपय अन्य विभक्ति-प्रत्ययों के अवशेष उपस्थित हैं जिनके प्रभाव से ये रूप मूल रूपों से भिन्न हो गये हैं। दूसरे, अब उन विभक्ति-प्रत्ययों में कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने की शक्ति न रह गई थी। फलस्वरूप इन रूपों ने कुछ परसर्गीय शब्दों—नैं, खौं, सैं आदि के योग से विभिन्न कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने की प्रवृत्ति अपनाई है, यथा :

मौड़्-आ नैं मारो तो (-आ + नैं) = लड़के ने मारा था
गोड़्-ए खौं सैंक डारौ (-ए + खौं) = पैर को सेंक डालो
बातन सैं का होतो (-न + सैं) = बातों से क्या होता

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् अब हम यह कहने की स्थिति में हैं कि संज्ञा के मूल रूपों को, संश्लिष्ट और विकारी रूपों को, विश्लिष्ट कारक कहा जाए। संश्लिष्ट, जिसमें कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले तत्व जुड़े हुए हैं और विश्लिष्ट, जिनमें ये तत्त्व परसर्गीय रूप में अलग से जोड़ने पड़ते हैं।

सम्बोधन रूप—मानवी कोटि की संज्ञाओं के एक तीसरे रूप देखने में आते हैं।

लड़कौ इतै अइयो = लड़को ! इधर आओ।

यह दूसरी बात है कि लाक्षणिक रूप में निम्न प्रकार के प्रयोग भी सुनाई पड़ जाएँ :—

ए घुड़औ ! कितै हुंदरत फिरत = ए घोड़ो ! कहाँ कूदते-फिरते हो (लड़कों को सम्बोधित करते हुए)

साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि एकवचन के रूप विकारी रूपों से भिन्न नहीं हैं, बहुवचन में अवश्य सर्वत्र -औ जुड़ा मिलेगा।

	एक०	बहु०
पुल्लिग	मौड़ा	मौड़ौ
स्त्रीलिंग	मौड़ी	मौड़ियौ

७-१. भाषा में संज्ञाओं के एक प्रकार के रूप और उपलब्ध हो रहे हैं जो कि प्रातिपदिक रूपों की तुलना में अवश्य ही 'विकारी' कहलायेंगे परन्तु कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए वे संश्लिष्ट-योजना अपनाए हुए हैं, यथा :

कर्म तथा संप्रदान

एक०	गोड़ै सेंक डारौ	= पैर सेंक लो
	पेड़ै सींच आव	= पेड़ को सींच आओ
	मौड़ै सुवा देव	= लड़के को सुला दो
	(मोहैं) कामैं जानैं	= मुझे काम पर (= के लिए) जाना है।
	(मोहैं) रामैं भजनैं	= मुझे राम का भजन करना है

अपादान

बहु०	भूखन मरो	= भूख से मर गया

कर्म तथा अधिकरण

एक०	ऊ घरै है	= वह घर में है
	गामैं गओ	= गांव (को) गया
	रातै आओ	= रात में (को) आया
	मेलै जइयो	= मेले में (को) जाना
बहु०	हमैं कालकन जानैं	= हमको कालका देवी के मन्दिर में जाना है।
	बद्रीनाथन चलौ	= तीर्थ बद्रीनाथ चलो
	मरघटन गओ	= मरघट ले जाया गया
	रातन जगो	= रातों जागता रहा

उदाहरणों की उपलब्धि तो किसी भी सीमा तक हो सकती है परन्तु इनमें कर्म-कारकीय सम्बन्ध ही विशेष रूप से सजीव हैं। अन्य सम्बन्ध

ऐतिहासिक अपवाद ही कहे जाएँगे । स्पष्टतः ये रूप विकारी हैं । साथ ही, इसमें भी संदेह नहीं कि ये संश्लिष्ट कारक ही हैं । वस्तुतः ये रूप मध्य-स्थिति में हैं । भाषा की गति से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि विश्लिष्ट कारक प्रयोगों की बाढ़ इन रूपों को शीघ्र ही समाप्त कर देगी । एकवचन रूपों के वैकल्पिक प्रयोग अनायास मिल जाते हैं, यथा—

गोड़ैं सेंक डारौ	~	गोड़े खाँ सेंक डारौ
पेड़ैं सींच आव	~	पेड़े खाँ सींच आव
मौड़ैं सुबा देव	~	मौड़ा खाँ सुबा देव
कामैं जानैं	~	काम के नानैं जानैं
घरैं चोर घुसो	~	घर मैं चोर घुसो

पद-रचना के प्रकार

(Declentional Types)

८. लिंग विधान की दृष्टि से बुन्देली-संज्ञाओं को दो वर्गों में विभाजित करके देखा गया था—पुल्लिग एवं स्त्रीलिंग । इन दोनों के पद-रचनात्मक विभक्ति-प्रत्यय भी अलग-अलग हैं, अतएव पद-रचना के भी दो प्रकार अति स्पष्ट हो जाते हैं—

प्रथम — इसके अन्तर्गत सभी पुल्लिग संज्ञाएं आ जाती हैं । इसके भी दो उपविभाग किये जा सकते हैं । एक विभाग का प्रतिनिधित्व करने वाला संज्ञा शब्द है—पेड़ौ तथा दूसरे का,--घर ।

द्वितीय—इसके अन्तर्गत सभी स्त्रीलिंग-बोधिनी संज्ञाएं आ जाती हैं । इन संज्ञाओं को भी रचनात्मक प्रत्ययों की भिन्नता के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है । एक भाग का प्रतिनिधित्व करेगी—बात और दूसरी का,--मौड़ी । इस प्रकार कुल चार वर्ग हुए ।

८-१. वर्गीकृत संज्ञाओं के प्रतिनिधि इस प्रकार हैं :

पेड़ौ / पेड़ो वर्ग

	एक०	बहु०
मूल रूप (संश्लिष्ट)	पेड़ौ	पेड़े
वि० रूप (विश्लिष्ट)	पेड़े	पेड़ेन

इस वर्ग के अन्तर्गत वे सभी संज्ञाएं आ जाती हैं जो कि सानुनासिक या निरनुनासिक –ओ अथवा–औ (–व) में अन्त होने वाली हैं; यथा :

i) गोड़ौ (=पैर), तारौ (=ताला), दोरौ (=दरवाजा), गरौ (=गला), माथौ (=मस्तक), चौपौं (=चौपाया), कौंड़ौं (=चौपाल का अग्नि-स्थान), चारौ (=चारा) गाड़ौ (=बड़ी गाड़ी), आदि। अपवाद, मौं (=मुंह) घर-वर्ग की तरह

ii) सिरोपाव (सिर + पाग), चलाव, बधाव आदि। अपवाद, व्याव (= विवाह) घर वर्ग की तरह

टिप्पणी—विकारी बहु० प्रत्यय -एन के साथ -अन भी यदा-कदा मिल जायगा। इसका कारण -अन प्रत्यय का बाहुल्य हो सकता है पर जहाँ श्लेषार्थी शब्द हैं वहाँ सतर्कता स्वाभाविक है। यथा :

तारन (तार का बहु०)
तारेन (तारौ का बहु०)
पेड़न (पेड़ा का बहु०)
पेड़ेन (पेड़ौ का बहु०)

८-२. **घर वर्ग**

	एक०	बहु०
मूल रूप (संश्लिष्ट)	घर	घर
वि० रूप (विश्लिष्ट)	घर	घरन

इस वर्ग के अन्तर्गत शेष सभी पुल्लिग संज्ञाएं आ जाती हैं। अपवाद रूप में कुछ संज्ञाएं हैं जिनको 'दद्दा वर्ग' में रखकर स्पष्ट किया गया है—

i) साँप, बार (=बाल), दाँत, हाँत (=हाथ),

ii) -आ (-या, -वा) में अन्त होने वाले, उन्हाँ (=कपड़ा), लत्ता (=फटा कपड़ा), कुत्ता, पुआ (=मीठी पूड़ी) सुआ (=तोता), जबा (जौ), घुड़वा, कुदवा (=कोदौं), गेंड़ुवा (=तकिया) धुबिया, कुरिया, मलिया आदि।

iii) -ई, -ऊ में अन्त होने वाली—धोबी, कोरी, माली, नाऊ, डाँकू, साधू, बारू (=बालू)

iv) -ए में अंत होने वाली संज्ञाएं—चौबे, दुबे,

८-३. निम्न व्यंजनान्त वर्ग के अन्तर्गत अधिकांश स्त्रीलिंग संज्ञाएं आ जाती हैं।

बात वर्ग

	एक०	बहु०
मूल रूप (संश्लिष्ट)	बात	बातैं
वि० रूप (विश्लिष्ट)	बात	बातन

i) सामान्य—ज़ामुन, बइयर (=औरत) रात, चीज, लात, दार (=दाल) आदि।

ii) स्त्री-प्रत्यय -इन में अन्त होने वाली—मालिन, कोरिन, चमारिन, गड़रिन, जोशिन आदि।

८-४ शेष सभी स्त्रीलिंग संज्ञाओं की पद-रचना निम्न प्रकार होगी।

मौड़ी (=लड़की) वर्ग

	एक०	बहु०
मूल रूप (संश्लिष्ट)	मौड़ी	मौड़ीँ
वि० रूप (विश्लिष्ट)	मौड़ी	मौड़िन ~ मौड़ियन

साथ ही,

i) -ईकारान्त—दवाई (=दवा), लुगाई (=स्त्री), ककई (=कंघी), बिही (=अमरूद की तरह का फल), कुरती (=स्त्रियों की एक पोशाक), खलीती (=जेब) म्यारी (=छप्पर में लगने वाली आधार लकड़ी)

ii) -इयाकारान्त—गइया, घुकइया (=छोटी टोकरी), बिलइया (=बिल्ली), चिरइया (=चिड़िया), बुकरिया (=बकरी), छिरिया (=छेरी), उँगरिया (=अँगुली), आदि।

iii) -ऊकारान्त—बिच्छू, चक्कू (=चाकू),

iv) -आकारान्त—फुआ

टिप्पणी — -ऊकारान्त एवं -आकारान्त शब्दों का मूल रूप बहु० का विभक्ति-प्रत्यय (ँ) पूर्वापर शब्दों द्वारा बहुवचनत्व प्रकट होने पर विलुप्त रहता है।

८-५. दद्दा वर्ग—पद-रचना का स्वतंत्र प्रकार तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी परिजन शब्दावलि, पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग, दोनों के मध्य की रूप-रचना रखती है अतः भिन्न वर्ग निर्धारित किया गया है। यथा :

दद्दा (=पिताजी, बड़े भाई)

	एक०	बहु०
मूल रूप (संश्लिष्ट)	दद्दा	दद्दा हरैं
वि० रूप (विश्लिष्ट)	दद्दा	दद्दा हरन ~ हन

सारौ (=साला)

मूल रूप (संश्लिष्ट)	सारौ	सारे हरैं (अभद्रता द्योतक)
वि० रूप (विश्लिष्ट)	सारे	सारे हरन ~ हन

बिन्नू (=बहिन)

मूल रूप (संश्लिष्ट)	बिन्नू	बिन्नू हरैं
वि० रूप (विश्लिष्ट)	बिन्नू	बिन्नू हरन ~ हन

इस वर्ग की विशेषतायें इस प्रकार हैं—

i) यह वर्ग बहुवचनत्व का नहीं अपितु सम्बन्धी-वर्ग का ज्ञान कराता है। यथा : दद्दा हरैं आए ते=पिताजी, चाचा जी, बड़े भाई आदि आए थे।

ii) बहु० में हर- का योग संज्ञा-परसर्गीय शब्दावली की भाँति होता है और यह सदैव विकारी एकवचन रूप में ही जुड़ता है।

iii) लालाजू (=साला, बहिनोई, देवर, दामाद, आदि), बऊ (=दादी तथा बहू), नन्ना, नानी, मताई =माताजी), बाई (=माताजी), कक्का, मम्मा, दाऊ आदि।

iv) दिमान जू, दरोगा जू, राजा साब, रानी सायबा, लाला जू (=पटवारी), पंडिज्जू, आदि।

v) माते जू (सम्मानित लोधी), दुबे जू, चौबे जू।

vi) धोबी, माली, सुनार, चमार, बसोर, आदि शब्द कक्का दद्दा, नन्ना आदि शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। क्योंकि धोबियन, मालियन, चमारन आदि रूपों में हेयार्थ का का बोध होने लगता है।

९. ऐसी भी शब्दावलि भाषा में कम नहीं है, जो कि पद-रचना में अपूर्ण है, अर्थात् या तो शब्द केवल एकवचन में अथवा बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं। व्यक्तिवाचक एवं भाववाचक संज्ञाएं, सूर्य-चन्द्र ऐसी अनन्य शक्तियाँ तथा धात्वर्थक वस्तुयें सामान्यतः एकवचन में ही प्रयुक्त होती हैं। देवस्थान एवं मरघट तथा बीमारियों एवं मिठाइयों के नाम प्रायः बहुवचन रूप ही रखते हैं। पर यह कहना कठिन है कि इनका इसके विपरीत प्रयोग हो ही नहीं सकता।

एक० : i) लटोरैं बुलाव् (=लटोरा को बुलाओ) परन्तु लटोरन खाँ बुलाव, न होगा क्योंकि सामान्यतः एकत्र व्यक्तियों में कई का नाम लटोरा न होगा। फिर भी, 'लटोरा हरन खाँ बुलाव' प्रयोग हो सकता है। यहाँ अर्थ होगा—लटोरा तथा उसके साथियों को।

ii) भराव (=भराई), चढ़ाव (=चढ़ाई), बतकाव (=बातचीत) आदि भाववाचक संज्ञाएं एक० रूप रखेंगी पर जब चढ़ाव (=चढ़ाया) बधाव (=बधाया) जातिवाचक संज्ञाएं हो जायेंगी तब बहुवचन प्रयोग रखने लगेंगीं। इसी प्रकार -ओकारान्त जैसे खाबो, पीबो, चलबो आदि क्रिया-भाव-सूचक संज्ञायें भी एकवचन रूप रखती हैं और ये पेड़ौ / पेड़ो वर्ग के अन्तर्गत आयेंगी।

iii) सूरज, सूरज मैं, सोनौ, सोने मैं आदि प्रयोग ही सामान्य हैं; पर,

परलै काल के बारऊ सूरजन मैं
=प्रलय काल के बारहों सूर्यों में

तथा,

सबरिन के सोनन में तामों मिलो।
=सबके सोनों में ताम्बा मिला हुआ है।

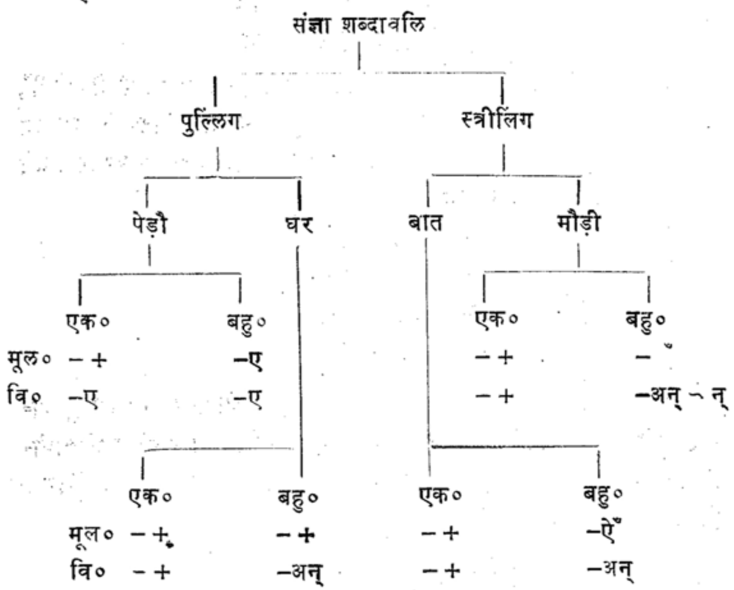
आदि प्रयोग व्याकरण-च्युत नहीं कहे जा सकते।

iv) -ओकारान्त विशेषण (सामान्य, सार्वनामिक तथा कृदन्तीय) पेड़ौ-वर्ग के अन्तर्गत एक० में रूप-रचना करते हैं।

बहु० : i) 'बद्रीनाथै चलौ' प्रयोग उतना स्वाभाविक नहीं, जितना कि 'बद्रीनाथन चलौ' = बद्रीनाथ (तीर्थस्थान) चलो।
मा‌टी मरघटन लै चलौ = लाश मरघट ले चलो

ii) माता निकरीं (= चेचक निकली हैं), मातन पूजनैं (= चेचक शान्त करने वाली देवी को पूजना है।) आदि प्रयोग अति सामान्य हैं।

१०. संज्ञा पदों से सम्बन्धित ऊपर किये गये विश्लेषण को तथा उनके रचनात्मक विभक्ति-प्रत्ययों को एक साथ ही इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :



टिप्पणियाँ i) सम्बोधन के विभक्ति-प्रत्ययों की योजना सीमित है। अतएव यहाँ स्थान नहीं दिया गया है।

ii) दद्दा-वर्ग सभी का एक सम्मिलित रूप है अतएव अलग से स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं समझी गई है।

iii) -न में अन्त होने वाले बहु० विकारी रूप खौं-क्षेत्र के कुछ अंशों में -ओं में अन्त होते हैं। (देखिए, भाषा मानचित्र)

iv) -इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का मूल रूप बहु० केवल अनुस्वार के योग से सम्पन्न होता है जब कि गुना-क्षेत्र में उसका बहुवचनान्त प्रत्यय -ऐँ है, अर्थात् रूप-रचना में शब्द, बात-वर्ग के अनुगामी हैं, जैसे बुकरिऐँ, गइऐँ उँगरिऐँ।

११. विषय-क्रम १० में गिनाए गए विभक्ति-प्रत्ययों की प्रयोग-सीमाएँ (morphological conditioning) स्पष्ट हैं, यहाँ प्रातिपदिक रूपों में पाए जाने वाले ध्वनि-परिवर्तनों को निम्न प्रकार नियमित किया जा सकता है।

i) -ए तथा -एन प्रत्ययों के जुड़ने पर प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है, यथा :

पेड़ौ—पेड़् + -ए अथवा-एन

ii) अन्यत्र, अनुनासिक स्वर को छोड़कर यथा : मौड़ी—मौड़ीँ, अन्य विभक्ति-प्रत्ययों के जुड़ने पर प्रातिपदिक के अन्तिम दीर्घ स्वर —आ, -ई, -ऊ क्रमशः ह्रस्व रूप धारण कर लेते हैं; यथा :

गइया —— गइयन
लत्ता —— लत्तन
मौड़ी —— मौड़िन
चक्कू —— चक्कुन

पर यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भाषा का एक स्त्री-प्रत्यय -न भी ह्रस्वीकरण की यही प्रवृत्ति रखता है, यथा : धोबी—धोबिन। इसलिए श्लेषार्थी-स्थिति से छुटकारा पाने के लिए -ई तथा -ऊ क्रमशः -इय् तथा -उव् में परिणित हो जाते हैं; यथा :

धोबी — धोबियन
माली —- मालियन

पर आगे चलकर सादृश्य की इस प्रवृत्ति ने मौड़ियन, चक्कुवन, दबाइयन, लुगाइयन, बहियन, बिन्नुवन आदि रूपों को भी चला दिया है और अब कहा जा सकता है कि यह सन्धि-नियम स्वाभाविकता पा चुका है।

iii) स्त्री-प्रत्यय -न में अन्त होने वाले शब्दों का -इ- स्वर किसी भी विभक्ति-प्रत्यय के जुड़ने पर विलुप्त हो जाता है। यथा :

मालिन + ऐं = माल्नैं
धोबिन + ऐं = धोब्नैं
मालिन + अन = मालनन
धोबिन + अन = धोबनन

पर, स्त्री-प्रत्यय -इन में अन्त होने वाले शब्दों का -इ- तथा विभक्ति-प्रत्यय का -अ- स्थान-परिवर्तन (meta thesis) की प्रवृत्ति रखते हैं। यथा :

चमारिन + अन = चमारनिन
बसोरिन + अन = बसोरनिन

कारक प्रत्यय

१२. कारक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए नैं, कैं, सैं आदि जिन शब्दांशों का प्रयोग किया जाता है, उनके लिए परसर्ग अथवा अनुसर्ग शब्द का प्रयोग मिलता है, जो कि पोस्ट पोजीशन (post position) का शाब्दिक अनुवाद कहा जा सकता है। यह पोस्ट पोजीशन (पर स्थिति, यथा--घर से) भी प्रीपोजीशन (पूर्व स्थिति, यथा--from the house) के आधार पर गढ़ा गया है। वस्तुतः हिन्दी-व्याकरण-ग्रन्थों में पाया जाने वाला शब्द—उपसर्ग, वाच्यार्थों में नवीनता लाने वाली एक अर्थ-प्रक्रिया है, यथा—संहरति, विहरति, प्रहरति आदि, जब कि परसर्ग अथवा अनुसर्ग केवल व्याकरणिक मूल्य ही रखते हैं, इसलिए 'सर्ग' के आधार पर गढ़े हुए ये शब्द अनुपयुक्त' जँच रहे हैं। अतएव हमने इन शब्दांशों को कारक-प्रत्यय के रूप में ही स्वीकार किया है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि सुन्दरता, लड़कपन आदि शब्दों में - ता एवं - पन की जो संयोगी प्रवृत्ति परिलक्षित हो रही है, वह इन प्रत्ययों में नहीं है। ये तो अपने तथा प्रकृति के बीच में कई शब्द जोड़ लेते हैं।

१३. इन प्रत्ययों की ऐतिहासिकता पर विचार करने से पता चलता है कि प्राकृतयुगीन ध्वनि-परिवर्तनों के फलस्वरूप पदों में एकरूपता (Homonymic position) उत्पन्न हुई, जिसने अर्थ में अस्पष्टता ला दी, (यथा—रामाः > रामा, रामान् > रामा, रामात् > रामा)। इस स्थिति को दूर करते हुए प्राकृत युग में स्वतन्त्र पदों की संयोजना से कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट किया जाने लगा यथा— दारिआए केरिआए। उन्हीं स्वतन्त्र शब्दों के

अवशेष-चिह्न ये कारक-प्रत्यय हैं, जो अपनी ध्वनि-सम्पत्ति में क्षीण हो गये हैं और मूलार्थों को खो चुके हैं। फलतः इनको विकास देने वाले मूल प्राकृतयुगीन पदों को पहिचानना अति कठिन हो गया है। और यह तब तक संभव नहीं जब तक प्रभूत मात्रा में मध्यकालीन साहित्य-सम्पदा उपलब्ध न हो; साथ ही, वर्तमान क्षेत्रीय रूपों की सम्यक् गवेषणा न हो।

१३-१. इतिहास की इस कठिनाई को निम्न उदाहरणों से इस प्रकार समझाया जा सकता है—

पाँच रुपइयन लै का करहौ = पाँच रुपयों से क्या करोगे ?
बौ छत भे निकर गओ = वह छत से निकल गया।

उक्त उदाहरणों में लै और भे जब तक 'लेकर' और 'होकर' के अर्थ का आभास देते चलते हैं, तब तक इनका सम्बन्ध क्रमशः सं० धातु लग् तथा भू से जोड़ना सरल है, पर जब ये केवल 'से' के अर्थ की अभिव्जंना ही करा सकेंगे तब उक्त धातुओं से अर्थ-परम्परा का निर्वाह जोड़ सकना सर्वथा संभव न हो सकेगा। 'भू' धातु का सम्यक् प्रयोग भाषा में शेष नहीं रह गया है।

१४. जैसा कि ऊपर कहा गया है कि प्राकृत युग में पदों की एकरूपता बढ़ गई थी; वस्तुतः संस्कृतकालीन किसी एकवचन के आठ पद क्रमशः क्षीण होते-होते आधुनिक युग में दो या कहीं-कहीं तीन ही रह गए हैं, अतएव वे व्यापक सम्बन्ध जो कि आठ पदों से अभिव्यक्त होते थे, दो या तीन पदों से कैसे प्रकट होते ? परिणामतः उन दो या तीन पदों ने एक दूसरी विधा अपनाई और स्वतन्त्र शब्दों से कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। सं० में आठ पद थे अतएव आठ कारक कहलाए, बुंदेली में तीन पद हैं; अतएव हम तीन कारक कह सकते हैं (विषयक्रम—७) यथा—मूल, विकारी तथा सम्बोधन।

१५. प्रत्ययों के आधार पर कारक-सबंधों को स्पष्ट करने की यह विधा बहुत ही सजीव है, अतएव इन की संख्या निर्धारित करना भी कठिन ही है। फिर भी जिन शब्दों या शब्दांशों ने अपने वाच्यार्थों को समाप्त कर केवल व्याकरणिक अर्थों तक ही सीमित कर लिया है, उनको ही 'प्रत्ययों' के अन्तर्गत परिगणित किया गया है और उन्हीं की चर्चा करना यहाँ अभीष्ट समझा गया है।

नैं	—कर्त्ता कारक
खों ~ खाँ ~ कौं	—कर्म कारक
सैं	—करण-कारक और अपादान
क—	—सम्बन्ध तथा कुछ अन्य
पै, मैं, लौ	—अधिकरण तथा कुछ अन्य

नैं—

भाषा में इसका प्रयोग सकर्मक क्रिया तक हीं सीमित है। साथ ही, क्रिया के उस कर्त्ता के साथ, जब कि वह भूतकालिक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग में आती है।

मौड़ा खात है = लड़का खा रहा है
मौड़ा खैहै = लड़का खाएगा
मौड़ा नैं खाओ = लड़के ने खाया

[मौड़ा नैं रोटी खाई, मौड़ा नैं आम खाओ, मौड़ा नैं आम खाए, आदि वाक्यों की ऐतिहासिकता से पता चलता है कि इस समय जो 'कर्म' क्रिया को प्रभावित कर रहे हैं, अपने पूर्व जन्म में 'कर्त्ता' थे (बालकेन रोटिका खादिता.... आदि) और इस समय जो 'कर्त्ता' बना बैठा है, वह पूर्वजन्म का 'करण' है, इसलिए इसे ही इस जन्म में कर्तृत्व शक्ति के लिए 'नैं' की आवश्यकता पड़ी। इसी को ध्यान में रख कर इस प्रत्यय को कर्तृसूचक (Agentive) प्रत्यय कहा गया है। संभवतः विकास की इसी प्रक्रिया को ध्यान में रखकर पं० किशोरीदास बाजपेयी ने नैं का सम्बन्ध सं० तृतीया -एन विभक्ति से जोड़ने का प्रयत्न किया है।]

सर जार्ज अब्राहैम ग्रियर्सन ने अपने 'भाषासर्वे' में इस 'नैं' के बुंदेली प्रयोग की चर्चा करते हुए कहा है कि इसका प्रयोग अकर्मक क्रिया तथा वर्तमान-कालिक प्रत्यय के साथ भी होता है। यथा—

बा नैं बैठो = वह बैठा
बा नैं चाउत तो = वह चाहता था

पर मुझे इस प्रकार के प्रयोग सुनने को नहीं मिले।[1] संभव है, परिनिष्ठित हिन्दी के प्रवाह ने ऐसे प्रयोगों को बहा दिया हो।

---

१. जिल्द ९, भाग १, पृष्ठ ९४

खौं ~ कौं ~ खाँ—

कर्म-कारकीय इस प्रत्यय की महत्ता इसलिए भी है कि इसके आधार पर विभक्त बुंदेली के क्षेत्रीय रूपों का अध्ययन किया गया है। (परिशिष्ट, भाषा मानचित्र)

खों—अँगारी की साल हम पण्डित जू खों बुलाएँगे।
कौं—पर की साल हम सब जनैं पं० जू कौं बुलैहैं।
खाँ—अँगारूँ की साल हम औरै पं० जू खाँ बुलैहैं(बुलैबी)

सैं—

सैं (कौं क्षेत्र में सौं) माध्यम (अर्थात् करण कारक), अलगाव (अर्थात् अपादान कारक), तुलना सूचक स्थितियों आदि में प्रयुक्त होता है। यथा—

हँसिया सैं काट डारौ	=	हँसिया से काट डालो
पेड़े सैं गिर परो	=	पेड़ से गिर पड़ा
ऊ हम सब सैं लौरौ आय	=	वह हम सब से छोटा है

क—

ऐतिहासिक दृष्टि से इसके विभिन्न रूप चाहे भिन्न मूल स्रोतों से विकसित हुए हों, पर रचना तथा भाषा में प्रयोग की दृष्टि से इनको दो भागों में विभक्त करके अध्ययन किया जा सकता है —

विशेषणवत्—कौ, की, के—जिसकी रूप रचना पुं० में पेड़ौ तथा स्त्री० में मौड़ी की तरह होगी। यथा—

पुं०	राम कौ पेड़ौ	=	राम का पेड़
	राम के पेड़े	=	राम के पेड़
	राम के पेड़े मैं	=	राम के पेड़ में
स्त्री०	राम की उधन्नी	=	राम की ताली
	राम की उधन्नीं	=	राम की तालियाँ
	राम की उधन्नी मैं	=	राम की ताली में

इसका प्रयोग 'अधिकार, स्रोत, कारण, आदि सम्बन्धों के स्पष्टीकरण के लिए किया जाता है। विकारी एक वचन के रूप में यह कुछ अन्य परसर्गीय

शब्दों के पूर्व भाग में लगकर अन्यान्य कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। उसके अधिकाधिक प्रयोग 'अव्यय' के अन्तर्गत स्पष्ट किए गए हैं। यहाँ सम्प्रदान का प्रयोग दृष्टव्य है।

राम के लानैं = राम के लिए

अव्ययवत्– कैं – यथा, नैं, सैं, मैं आदि, इसका प्रयोग संतान आदि के उत्पत्ति-सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए होता है। यथा—

राम कैं तीन मौड़ीं हैं = राम के तीन लड़कियाँ हैं।
राम कैं एक मोड़ी है = राम के एक लड़की है।
राम कैं मौड़ा भओ = राम के लड़का हुआ
राम कैं मौड़ी भई = राम के लड़की हुई

मैं, पै, लौ—

मैं—यह सामान्यतः स्थान (अन्दर या बाहर) तथा समयावधि सूचक है। यथा—

ऊ घर मैं है = वह घर में है।
जा किताब दो दिनाँ मैं बँची = यह पुस्तक दो दिन में बाँची जा सकी।

पै—यह सामान्यतः स्थान-सूचक (ऊपर या नीचे) है। कहीं-कहीं कर्मवाचीय वाक्य में माध्यम (करण-कारक) के रूप में भी प्रयुक्त होता है। यथा–

खटोली पै गेंड़वा धरो = चारपाई पर तकिया रखी है
मो पै जौ काम न हुइऐ = मुझ से यह काम न होगा

लौ—अपने-अपने क्षेत्रीय-रूपों लौं, लौक, लुक आदि के साथ स्थान तथा समय की अन्तिम सीमा के सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। यथा—

मोय घर लौ जानैं = मुझे घर तक जाना है
कै दिनन लौक काम करहौ = कितने दिन तक काम करोगे

विशेषण

१. विशेषण शब्दों को अर्थ की दृष्टि से गुण, परिमाण, संकेत, निश्चय, अनिश्चय, संख्या आदि भेद-प्रभेदों में विभक्त करके देखा जा सकता है। पर, लिंग-वचन-कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले विभक्ति-प्रत्ययों की संयोजना में ये संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों से भिन्न नहीं कहे जा सकते। इसीलिए इन सब—संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण-शब्दों को 'नाम' के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। वस्तुतः संयोजना की इस दृष्टि से विशेषण तो संज्ञाओं के और भी निकट हैं, स्यात् इसीलिए इनको गुणवाचक संज्ञाएँ भी कह दिया गया है। समसामयिक रूप-रचना की दृष्टि से हम विशेषण पदों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

i) रूपान्तरित (Inflected)
ii) अ-रूपान्तरित (Uninflected)

भाषा-प्रवाह ने संस्कृत-युग के रूपान्तरित विशेषणों में से कुछ को अरूपान्तरित करके छोड़ दिया है और अब वे बुन्देली में अव्ययवत् प्रयुक्त हो रहे हैं; पर वाक्य में शब्दों की स्थानापन्नता (Substitution) तथा शब्द-क्रम (Word-order), साथ ही, शब्दों के अर्थ का गौरव उन्हें विशेषण-वर्ग के अन्तर्गत पहुंचा देता है।

२-१. रूपान्तरित वर्ग के अन्तर्गत -ओ तथा -औ में अन्त होने वाले शब्द आते हैं; (इनके सहयोगी -ई में अन्त होने वाले स्त्रीलिंग शब्द हैं) यथा :

हरीरौ (=हरा), पीरौ (=पीला), लीलौ (=नीला) कारौ (=काला), साजौ (=अच्छा), बुरओ (=बुरा), नौनों (=अच्छा), नौखौ (=अनोखा) करौ (=कड़ा), कौंरौ (=मुलायम), लम्मौ (=लम्बा) चौंरौ (=चौड़ा), नओ (=नया), नुनखरौ (=अधिक नमक वाला), गरओ (=भारी), हरओ (=हल्का), गदरो (=अधपका), बड़ौ (=बड़ा), छोटौ (=छोटा), लौरौ (=लहुरा), सूदौ (=सीधा), टेड़ौ (=टेढ़ा) लंटौ (=बुरा), मुक्तौ (=अधिक), न्यारौ (=अलग), डेड़ौ (=बाँया) ड्यौड़ौ (=डेढ़ गुना), पराओ (=दूसरे का), बिरानौ (=दूसरे का), बारौ (=कम उम्र का) भूंको (=भूखा), रूखौ (=रूखा), तातौ (=गरम) आदि।

उपर्युक्त शब्दों की रूप-रचना पुं० में पेड़ौ/पेड़ो (संज्ञा, विषय-क्रम८-१.) तथा स्त्री० में मौड़ी (संज्ञा,विषय-क्रम८-४.) की तरह होगी। साथ ही, सन्धि-नियम भी वे ही होंगे जिनकी चर्चा संज्ञा (विषय-क्रम ११) में की जा चुकी है।

	पुल्लिग	हरीरौ (=हरा)
		हरओ (=हल्का)
मूल०	एक०	हरीरौ / हरओ बाँस
	बहु०	हरीरे / हरऐं बाँस
विकारी०	एक०	हरीरे / हरए बाँस मैं
		हरीरे / हरए बाँसन मैं
	स्त्रीलिंग	हरीरी (=हरी)
		हरई (=हल्की)
मूल०	एक०	हरीरी / हरई नकरिया (=लकड़ी)
	बहु०	हरीरीं / हरईं नकरियाँ (=लकड़ियाँ)
विकारी०	एक०	हरीरी / हरई नकरिया मैं
	बहु०	हरीरी / हरई नकरियन मैं

बहु० प्रत्यय केवल मूलकारक का ही मिलता है। वहाँ भी, यदा-कदा स्त्रीवर्गीय प्रत्यय का लोप हो जाया करता है। वस्तुत: पूर्वापर में प्रयुक्त शब्दों से बहुवचनत्व प्रकट हो जाता है परिणामत: इन पदों से उक्त विभक्त्यात्मकता का लोप हो गया है।

२.२. शेष सभी विशेषण अरूपान्तरित हैं अर्थात् व्यंजनान्त तथा -आ, -ई (केवल वे जो अपना पुं०-वर्गीय रूप -ओ/-औ में नहीं रखते), -ऊ में अन्त होने वाले विशेषण संज्ञा का अनुकरण करने के लिए लिंग-वचन-कारक-सम्बन्धी कोई विभक्ति-प्रत्यय नहीं अपनाते। कारण, परवर्त्ती संज्ञा पदों में वे सभी विभक्ति-प्रत्यय जुड़े मिल जाते हैं। यथा :

		पुं० करिया (=काला)
मूल०	एक०	करिया उन्हा (=काला कपड़ा)
	बहु०	करिया उन्हाँ (=काले कपड़े)
विकारी०	एक०	करिया उन्हा सैं (=काले कपड़े से)
	बहु०	करिया उन्हन सै (=काले कपड़ों से)

स्त्री० करिया (=काली)

मूल० एक० करिया सुपेती (=काली रजाई)

बहु० करिया सुपेतीँ (=काली रजाइयाँ)

विकारी० एक० करिया सुपेती सैं (=काली रजाई से)

बहु० करिया सुपेतिन सैं (=काली रजाइयों से)

और भी,

पुं० तथा स्त्री० बिलात (=अधिक, कई)

बिलात चाँउर (=चावल) ~ दार (=दाल) ~ लुगवा (=आदमी) ~ लुगाईं (=स्त्रियाँ)

बिलात चाँउरन मैं ~ दारन मैं ~ लुगवन मैं ~ लुगाइयन मैं आदि ।

इस वर्ग के अन्तर्गत परिगणित शब्दावलि निम्न प्रकार है :

जादाँ (=अधिक, कई), तनक (=कम), बढ़ियल (=बढ़िया), मुलाम (=मुलायम), लरम (=नरम), भौत (=अधिक, कई), दूनर (=दुहरा), चउवर (=चौहरा), चुट्टा (=चोरी करने वाला), चुट्टू (चोरी करने वाली), अठाई (=शरारती), कुल्ल (=बहुत), लाल, तिहाई (=⅓ भाग), नठिया (=शैतान, एक गाली), खपसूरत (=खूबसूरत),

३-१. पद-रचना की दृष्टि से नवीनता न रखते हुए भी संख्यावाचक शब्दावलि अपनी प्रयोग-बहुलता के कारण उल्लेखनीय तथ्य उपस्थित करती है। उनका परम्परागत विभाजन निम्न प्रकार है—

गुणनात्मक

i) एक, दो, तीन, चार, पाँच, छै, सात, आठ, नौं, दस, गेरा, बारा, तेरा, चउदा, पन्द्रा, सोरा, सत्रा, अठारा, उनैस, बीस ।

ii) बीस के आगे सामान्यतः लोग, विशेषकर बूढ़ी स्त्रियाँ, 'बिसी' के आधार पर गणना करती हैं, जैसे :

चार बिसी = अस्सी

चार कम दो बिसी = छत्तिस

iii) ठोस वस्तुओं की गणना में 'गंडा' शब्द का प्रयोग होता है—

बीस गंडा = सौ

पाँच गंडा = पचीस

iv) अनाज तौलने में चौरी (=लगभग एक सेर), पैली (=लगभग ९ सेर) तथा मना (=लगभग एक मन) शब्दों का प्रयोग चलता है यथा—

इकैस पैली, चार चौरी आदि

v) लेन-देन में प्रचलिन सिक्कों के नाम निम्न प्रकार हैं—
पइसा, अधन्ना (=दो पइसा), इकन्नी, दोन्नी, चौन्नी, अठन्नी, रुपइया। बालूसाईं पइसा और गजासाई रुपइया ग्वालियरी बादसाहत के सिक्के थे, जो अब प्रचार में नहीं हैं।

क्रमात्मक

i) पूर्ण-क्रम-द्योतक शब्दावलि—

पैलौ ~ पहलौ, दूसरौ, तीसरौ, चौथौ, इसके पश्चात् का क्रम -मौं (=-वाँ) प्रत्यय का योग धारण करता है, यथा : पाँचमौं, छटमौं, सातमौं, आठमौं, नमौं, दसमौं आदि। ये सभी शब्द -औकारान्त विशेषण की तरह रूपान्तरित होते हैं।

ii) खण्ड-क्रम के लिए प्रचलित शब्द—
आधौ (=आधा), तिहाई (=$\frac{१}{३}$), चौथयाई (=$\frac{१}{४}$), पौनौं (=$\frac{३}{४}$), सबाओ (=१$\frac{१}{४}$), ड्यौढ़ौ (=१$\frac{१}{२}$), ढाई ~ अढ़ाई (=२$\frac{१}{२}$), इसके पश्चात् साढ़े तीन, साढ़े चार आदि।

iii) तिथि-गणना की शब्दावलि—
परमा (=प्रथमा, परवा भी चलता है, पर केवल त्यौहार-वाली परमा के लिए), दूज (=द्वितीया), तीज (=तृतीया), चौथ (=चतुर्थी), तत्पश्चात् -ऐं प्रत्यय की योजना होती है, यथा :

पाँचैं, छटैं, सातैं, आठैं, नमैं, दसैं, ग्यास (इकादसी भी चलता है, पर केवल त्यौहार के लिए), द्वादसी, तेरस, चउदस, पूनौं (शुक्ल पक्ष) अमाउस (कृष्ण पक्ष)

गुणनात्मक

i) स्पष्टीकरण के लिए दो का आधार लिया जा सकता है—

दो एकम	=दो
दो दूनी	=चार

दो	तिया ∽ तिरका ∽ तिरके	= छै
दो	चौका ∽ चौके ∽ चौकौ ∽ चौक	= आठ
दो	पंचे ∽ पँचे ∽ पनाँ	= दस
दो	छक्का ∽ छक्के ∽ छके ∽ छौक	= बारा
दो	सत्ते ∽ सतें	= चउदा
दो	अट्ठे ∽ अठे	= सोरा
दो	नमे ∽ नमाँ	= अठारा
दो	धाम	= बीस

साथ ही,

दो	पउए	=	अद्धा
दो	अद्धे	=	एक
दो	पौने	=	डेड़
दो	सवाम	=	अढ़ाई
दो	डेड़े	=	तीन
दो	अढ़ाम	=	पाँच
दो	हूँटे	=	सात
दो	ढौँचे	=	नौ
दो	पौँचे	=	गेरा

ii) गुणनात्मक शब्द ताश के खेल में पत्तों के नामों के रूप में सामान्य संज्ञा बन गए हैं—इक्का, दुक्की, तिक्की, चौका, पंजा, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहा ∽ नहला, दहा ∽ दहला ।

iii) गुणनात्मकता-द्योतक कुछ प्रत्यय भी बहुलता से प्रयुक्त हो रहे हैं—-गन-, -हर-, -अँर ; यथा :

दुगनौ, तिगनौ, चौगनौ, पँचगनौ
इकारौ, दुहरौ, तिहरौ, चौहरो
दूनर, तीनर, चउअर

४. सर्वनाम की तरह संख्याचक भी भाषा की आधार भूत (Basic) शब्दावलि के अन्तर्गत परिगणित हैं । वस्तुतः इन शब्दों की सुदीर्घ परम्परा ने इन्हें ध्वनि-सम्पत्ति से क्षीण बना दिया है । परिणामतः विभिन्न-युगीन नए प्रत्ययों की योजना से इन के प्रातिपदिकों में कई ध्वनि-रूपान्तर उपलब्ध होते हैं । दूसरे, संस्कृत की लिंग-वचन तथा कारक से सम्बन्धित पदावलि अनेकरूपता

लिए हुए थी, उनमें से कतिपय ही विकसित होकर बुन्देली में आ सके हैं, अतएव भिन्न स्रोतों के कारण ही बुन्देली प्रातिपदिकों की संख्या बढ़ गई है। कालान्तर में सादृश्य ने भी अपना प्रभाव दिखलाया होगा। इन सब कारणों से हम उक्त पदों के लिए ध्वन्यात्मक (phonological) सम्बन्धों की अपेक्षा शब्दात्मक (mophological) सम्बन्ध ही अधिक प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं; फिर भी--

आ, ई, ऊ, क्रमशः ह्रस्व अ, इ, उ, में परिणत हो जाते हैं तथा ए, ओ क्रमशः इ तथा उ में बदलते हैं। ऐ एवं औ का परिवर्तन अ में ही होता है। ये ह्रस्व रूप प्रत्यय-संयुक्त अथवा सामासिक पदों में पद के प्रथम अवयय बनकर प्रयुक्त होते हैं। यथा :

ए->इ-	इकतिस	= एक + तीस
	इकैस	= एक + ईस (=बीस)
	इक्काईँ	= अकेला
	इकन्नी	= एक + आना
	इक्का	= एक विन्दु वाला ताश का पत्ता
	इकारौ	= इकहरौ
ओ->उ-	दुक्की	= दो विन्दुवाला ताश का पत्ता
	दुसरतौ	= तीसरी बार वर का वधू-गृह पहुंचना
	दुगनौ	= दो + गुना
	दुकेलौ	= अकेलौ के सादृश्य पर
आ->अ-	पँचपन	= पाँच + पचास
	सत्रा	= सात + रह (<दश)
	अठारा	= आठ + रह (<दश)

समसामयिक भाषा-विश्लेषण की दृष्टि से इनके प्रकृति एवं प्रत्यय स्पष्ट नहीं कहे जा सकते अतएव अधिक उदाहरण देना उपयुक्त नहीं जँचता।

४-१. संख्यावाचाक विशेषणों के कुछ अन्य ध्वनि-रूपान्तर अर्थ को ध्यान में रखते हुए नीचे व्यवस्थित किए गए हैं :

एक	[अक-]	पूर्व-प्रत्यय के रूप में केवल 'अकेलौ' शब्द में।
दो	[दू-]	दूज, दूजा, दूनौ
	[दु-]	दुक्की, दुगनौ

तीन	[ती-]	तीज, तीजा, तीनर, तीसरौ
	[ति-]	तिहाई, तिहरौ, तिगनौ, तिक्की
	[तिर्-]	तिरका, तिरासी, तिरेपन
	[ते-]	तेरा, तेइस
	[तैं-]	तैंतिस
चार	[चौ]	चौपार (=चौपाल), चौथ, चौगनौं, चौका, चौहत्तर, चौखट, चौखूंटौ
	[चौँ]	चौँतिस, चौंसट
	[चव् ~ चउ-]	चउअर, चवालिस, चउदा,
	[चौर्-]	चौरासी, चौरानबे
पाँच	[पँच्-]	पँचगनौ, पँचपन
	[पंच्-]	पंचाइत, पंचा (=पाँच हाथ की दो धोतियाँ), पंचानवे
	[पंज्-]	पंजा (=ताश का पत्ता]
	[पच्-]	पचपन, पचीस, पचासी
	[पँय्-]	पैंतीस, पैंसट पैंतालिस
	[पन्द्र-]	पन्द्रा
छै	[छय-]	छयालिस, छयासी,
	[छअ-]	छत्तिस, छक्का, छटें, छप्पन
	[छा-]	छानबे
सात	[सर्-]	= सरसट
	[सैं-]	= सैंतिस, सैंतालिस
आठ	[अठ]	= अठारा, अठासी
	[अर्]	= अरसट, अरतिस
नौं	[न-]	= नमैं
	[नव्-]	= नवासी
दस	[दह्-]	= दहाम ~ धाम, दहाई ~ धाई
	[दा-]	= चउदा
	[रा-]	= सोरा, सत्रा

सर्वनाम

१. सर्वनाम जैसा कि शब्द-विशेष से स्पष्ट हो रहा है, यह एक प्रकार की नाम (=संज्ञा) शब्दावलि है । पुनरुक्ति की नीरसता से बचने के लिए ही इसका विधान जान पड़ता है। अर्थ ही नहीं, अपितु सर्वनामों की रचनात्मक गठन भी नाम-शब्दों से बहुत भिन्न नहीं कही जा सकती । लिंग-वचन एवं कारक से सम्बन्धित यदि एक प्रकार के विभक्ति-प्रत्यय संज्ञाओं में लग रहे हैं, तो दूसरे प्रकार के, सर्वनामों में । विभक्ति-प्रत्ययों की इन दो कोटियों के आधार पर 'नाम' के दो वर्ग भी अनिवार्य कहे जायेंगे— अर्थात् संज्ञा तथा सर्वनाम । पाणिनीय व्याकरणिक परम्परा में वह नाम-शब्दावलि जो कि 'सर्व' से प्रारम्भ होती है, 'सर्वनाम' कहलाई; पर हिन्दी-व्याकरण की दृष्टि से यह पारिभाषिक शब्द दूर जाकर भी बहुलता से प्रयुक्त हो रहा है ।

२. प्रकृति में विभक्ति-प्रत्ययों की संयोजना की दृष्टि से नाम एवं सर्वनामों की कथित एकरूपता के बीच अनेकरूपता के भी दर्शन किए जा सकते हैं । सर्वनाम पदों के प्रातिपदिक (प्रकृति) रूपों का निर्धारण कठिन है; संज्ञाओं में जैसे पेड़ौ, बात, घर आदि का आधार बनाकर उनके विभक्ति-प्रत्ययों का उल्लेख किया जा सकता है; वैसा सर्वनाम रूपों के साथ कर सकना संभव नहीं है । यदि एकवचन एवं बहुवचन दोनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रातिपदिक निर्धारित करें, तो भी विश्लेषण में किसी प्रकार की सुविधा नहीं जान पड़ रही है । प्रकृति के साथ-साथ विभक्ति-प्रत्ययों की जटिलता भी स्पष्ट है । यथा :

i) मैं (एक०) प्रकृति म-

परन्तु

हम (बहु०) प्रकृति ह-

ii) मैं, (एक०) प्रकृति म-
मोहैं (एक०) प्रकृति मो-

प्रातिपदिक तथा विभक्ति-प्रत्ययों की इस अनेकरूपता से यह स्पष्ट होता है कि बुन्देली सर्वनामों के ये सभी रूप विभिन्न प्रकृतियों से आ-आकर सम्बद्ध हो गए हैं ।

३. विभक्ति-प्रत्ययों की समानता को देखते हुए हम बुन्देली सर्वनामों के निम्न तीन वर्ग निर्धारित कर सकते हैं —

मैं-तैं—अर्थ की दृष्टि से इन्हें पुरुषवाचक सर्वनाम—उत्तम पुरुष एवं मध्यम पुरुष—कहा जाता है।

यौ-वौ-जो-सो-को—जिन्हें क्रमशः निकटवर्त्ती, दूरवर्त्ती संकेत-वाचक, सम्बन्ध, सह-सम्बन्ध तथा प्रश्नवाचक सर्वनामों की संज्ञाएँ दी गई हैं।

शेष—स्फुट सर्वनाम शब्दावलि।

४. पुरुषवाचक सर्वनाम (उत्तम-मध्यमपुरुष)

	एक०	बहु०
मूल०	मैं, तैं	हम, तुम
वि० (सामान्य)	मो, तो	हम, तुम
(सम्प्रदान)	मोय, तोय	हमैं, तुमैं
(सम्बन्ध)	मो(र-)-, तो(र-)-	हमा (र-)-, तुमा (र-)-

टिप्प० i) एकवचन के स्थान पर बहुवचन रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मध्यम पुरुष इस प्रकार के प्रयोग में उत्तमपुरुष से आगे बढ़ गया है। तब फिर यह स्वाभाविक है कि बहुवचन के रूप विश्लिष्टात्मकता ग्रहण कर लें। इस प्रकार बुन्देली में बहुवचन द्योतक कुछ शब्दावलि बढ़ती जा रही है। यथा :

–लोग, –सब्र जन–, हर–, और– आदि। इनके प्रयुक्त होने पर विभक्ति-प्रत्यय प्रकृति में न जुड़कर इन्हीं शब्दों में जुड़ते हैं —

–लोग —इसमें विभक्ति-प्रत्यय 'घर' के लगेंगे।

–सब जन —की रूप-रचना पुंल्लिग में 'दद्दा' की तरह (–सब जनैं-सब जनन) तथा स्त्रीलिंग में 'मौड़ी' की तरह (–सब जनीं, –सब जनिन) होगी।

–हर–, –और– की रूप-रचना मूल रूप में (पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनों में) स्त्रीलिंग 'बात' की तरह तथा

विकारी रूप में पुल्लिंग—हरन तथा स्त्रीलिंग में —हरिन होगी। यथा —

बे लोग (हरैं, औरैं) आउतीं हैं।
बे सब जनैं आउत हैं।

ii) कारक-चिह्न विकारी 'सामान्य' में ही जुड़ेंगे; केवल नैं मूल रूप एकवचन—मैं, तैं के साथ जुड़ता है पर खों-क्षेत्र में यह भी अपवाद नहीं मिल रहा है अर्थात् 'मो नैं' रूप भी मिलते हैं।

iii) कौं एवं खों क्षेत्र में तैं के स्थान पर तू का प्रयोग विरल नहीं कहा जा सकता।

iv) खाँ-क्षेत्र में विकारी सामान्य रूप एकवचन मोह्–,तोह्- मिलता है (इस पर आवश्यक विचार इसी अध्याय के अन्तिम पृष्ठों में किया गया है)

v) सम्बन्ध कारकीय रूप, -र- प्रत्यय-युक्त हैं जिनमें विभक्ति-प्रत्यय पुल्लिंग 'पेड़ौ', स्त्रीलिंग 'मौड़ी' के लगते हैं और —रैं एकरस रहता है। साथ ही इस -र- के पूर्व मूलरूप (प्रकृति) में —आ— विकरण भी जुड़ा मिल रहा है। इस -र- के सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि यह वर्तमान बोलचाल की भाषा से (केवल कौं-क्षेत्र को छोड़कर) विलुप्त होता जा रहा है। वस्तुतः स्वर-मध्यवर्त्ती -र- के लोप की प्रवृत्ति भाषा में सुस्पष्ट है, उसी के परिणामस्वरूप 'र' के लोप से केवल विभक्ति-प्रत्यय ही शेष रह गये हैं। लोक-गीतों में प्राचीनता के दर्शन किए जा सकते हैं; यथा :

हमारो > हमाओ
मोरो > मोओ

एक बात और, खाँ-क्षेत्र में बलात्मक निपातों के साथ,

मोर्हई > मेरा ही
तोर्हऊ > तेरा भी में महाप्राण की रागात्मकता ने 'र' को सुरक्षित कर रखा है।

vi) सभी विकारी बहुवचन रूप खों-क्षेत्र में 'तुम' के स्थान पर 'तुम्ह' मिलेंगे। शब्दान्त में यह महाप्राण तत्त्व विलुप्त रहता है, अन्यत्र सुस्पष्ट है; यथा—

तुम्हें, तुम्हाओ, तुम्हईं (=तुम ही), तुम्हऊँ (=तुम भी) नियमतः 'हम्ह' रूप बनता है पर समीपवर्त्ती अक्षरों में 'महाप्राण' व्यंजनों का प्रयोग सम्भव नहीं, अतएव सर्वत्र 'हम' रूप ही मिलता है।

५. इस वर्ग के अन्तर्गत परिगणित संकेतवाचक, सम्बन्ध एवं सह-सम्बन्ध वाचक तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम रूपों के विभक्ति-प्रत्ययों में एकरूपता पाई जाती है। जो अन्तर है, वह नगण्य है। इस तथ्य का निदर्शन निम्न चार्ट में क्रमशः व्यवस्थित बुन्देली, ब्रजी, हिन्दी, अवधी द्वारा किया गया है।

मूल०	एक०	यौ	वौ	जौन	सो,तौन	को
		जौ (जु)	बौ (बु)	जौन	सो,तौन	को
		येह	वोह	जो	+	कौन
		ए (ई)	ओ (ऊ)	जो	सो	को
	बहु०	ये	वै	जौन	तौन	को
		ये	वै	जौन	तौन	को
		ये	वे	जो	+	कौन
		ये	वै	जे	से,ते	के
वि०	एक०	ई	ऊ	जी	ती	की
		या	बा	जा	ता	का
		इस	उस	जिस	+	किस
		एह	ओह	जेह	केह	तेह
	बहु०	इन	उन	जिन	तिन	किन
		इनि	उनि	जिनि	तिनि	किनि
		इन	उन	जिन	+	किन
		इन्ह	उन्ह	जिन्ह	तिन्ह	किन्ह

६. संकेतवाचक (निकट एवं दूरवर्त्ती)

एक०	मूल०	पुल्लिंग	जौ,	बौ
		स्त्रीलिंग	जा,	बा

	वि०	(सामान्य)	ई,	ऊ	
		(सम्प्रदान)	इये,	उये	
बहु०	मूल०		जे,	बे	
	वि०	(सामान्य)	इन,	उन	
		(सम्प्रदान)	इनैं,	उनैं	

६·१. क्षेत्रीय रूपान्तर :

कौं-क्षेत्र

एक०	मूल०		कोई अन्तर नहीं।		
	वि०	(सामान्य)	जा(य),	बा(य)	
		(सम्प्रदान)	जाय,	बाय	
बहु०	मूल०		कोई अन्तर नहीं		
	वि०	(सामान्य)	इन,	बिन	
		(सम्प्रदान)	इनैं,	बिनैं	

खौं-क्षेत्र

एक०	मूल०	पुल्लिग	यो,	वौ	
		स्त्रीलिंग	या,	वा	
	वि०	(सामान्य)	ए-,	ओ-	(सर्वनाम-रूप)
			ई,	ऊ	(विशेषण-रूप)
		(सम्प्रदान)	एहै,	ओहै	
बहु०	मूल०		ये,	वे (वैं)	
	वि०	(सामान्य)	इन,	उन	
		(सम्प्रदान)	इन्हैं,	उन्हैं	

६-२. i) मूल० एक० रूपों में पुल्लिग-स्त्रीलिंग के भिन्न रूप उल्लेखनीय हैं।

ii) खौं-क्षेत्र में संकेतवाचक सर्वनाम एवं संकेतवाचक विशेषण अर्थात् विशेष्य-रहित एवं विशेष्य-सहित, ये रूप अलग-अलग हैं, यथा :

	ई आदमी खौं	=	इस आदमी को
परन्तु	ए खौं	=	इसको
	ऊ लुगाई सैं	=	उस स्त्री से
पर	ओसैं	=	उस से

iii) खौं-क्षेत्र में विकारी बहु० रूप 'इन्हन', 'उन्हन' (साथ ही, जिन्हन, तिन्हन, किन्हन) भी मिल जाते हैं। निश्चय ही 'इन्ह', 'उन्ह' को

एकवचनीय रूप समझकर उन्हें संज्ञा के विकारी विभक्ति-प्रत्यय -अन से युक्त कर दिया गया है ।

७. सम्बन्ध वाचक एवं सह-सम्बन्ध वाचक :

एक०	मूल०		जौन,	तौन	[जो, सो]
	वि०	(सामान्य)	जी,	ती	[जौन, तौन]
	"	(सम्प्रदान)	जिये,	तिये	
बहु०	मूल०		जौन-जौन,	तौन-तौन	
	वि०	(सामान्य)	जिन,	तिन	
		(सम्प्रदान)	जिनैं,	तिनैं	

i) क्षेत्रीय रूपान्तरों में विभक्ति-प्रत्ययों की भिन्नता संकेतवाची सर्वनाम-रूपों की ही भाँति है ।

ii) सह-सम्बन्धवाची रूप केवल लोक गीतों एवं व्यवसायी कथा-वाचकों में ही मिल सकेंगे । उनका स्थान दूरवर्त्ती संकेतवाची सर्वनाम-रूप ले रहे हैं; यथा :

जौन निकर सकत होय बौ आँगूं आवै (वर्तमान रूप)
किस्सा सो झूंटी बात सो मीठी (परम्परागत वाक्य)
जो निकर सकत होय सो आँगे आवै[1]

८. प्रश्नवाचक

एक०	मूल०		को	[कौन]	व्यक्तिवाची
			का	[कौन]	वस्तुवाची
	वि०	(सामान्य)	की	[कौन]	
		(सम्प्रदान)	किये	[कौनैं]	
बहु०	मूल०		को-को	[कौन-कौन]	व्यक्तिवाची
			का-का	[कौन-कौन]	वस्तुवाची
	वि०		काए, कौन		

८-१. i) क्षेत्रीय रूपान्तर पूर्ववत् हैं ।

ii) 'काए' के बाद 'नैं' कारक-चिह्न का प्रयोग संभव नहीं ।

iii) 'कौन' की भाषा-व्यापकता दृष्टव्य है; यथा :

१. शिवसहाँय चतुर्वेदी—हमारी लोक कथाएँ- पृष्ठ ३२

तोरी मती कोन्नें हरी धनसिंह = हे धनसिंह ! तेरी बुद्धि किसने नष्ट कर दी।

मोय कौन की करकैं जात = मुझे किस की (स्त्री) बनाकर जा रहे हो।

iv) -ऊ प्रत्यय के जुड़ने पर उपर्युक्त सर्वनाम-रूप अनिश्चयात्मकता का अर्थ रखते हैं :—

काऊ = किसी (व्यक्ति अथवा वस्तु)
कोऊ = ,, (,, ,,)
कौनउँ (कौन्हउँ) = ,, (,, ,,)
कैऊ = कई (,, ,,)
क-छू (कुछू) = कुछ भी (वस्तु)

९. शेष—i) 'अपन' सर्वनाम रूप 'अपुन' तथा क्षेत्रीय 'अपनाँ' (खाँ-क्षेत्र) रूपान्तर के साथ विशेषतः मध्यम पुरुष के लिए, पर साथ ही, उत्तमपुरुष का अर्थी बनकर प्रयुक्त हो रहा है। ऐसा भी जान पड़ता है कि यह कभी अन्य पुरुष के के लिए भी प्रयुक्त होता था, पर यह अर्थ अब स्पष्ट नहीं। इसके रूप बहुवचन में ही मिलेंगे। यथा :

अपन काँ गए ते = आप कहाँ गए थे ?
अपन सैं तौ कछू नइँ बनत = आपसे कुछ नहीं बनता, अथवा मुझसे कुछ नहीं बनता।

ii) 'अपुन-तपुन'--ये शब्द वक्ता एवं श्रोता दोनों को अपने में समेट लेते हैं।

अपुन-तपुन तला की पार पै घूमबू = हम-तुम तालाब के किनारे घूमेंगे।

iii) आपइँ-आप, अपनइँ-आप आदि सामासिक पद 'स्वयं एव' का अर्थ रख रहे हैं।

iv) निश्चय ही यह विशेषण-रूप 'अपनौ' (आप + न + अन्यान्य पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग वर्गीय विभक्ति-प्रत्ययों सहित) से ऐतिहासिक सम्बन्ध रख रहा है। इसी कोटि का एक सर्वनाम तथा विशेषण शब्द 'फलानौ' भी है जो हिन्दी में 'अमुक', 'फलाँ' का अर्थी है।

१०. सूक्ष्म अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए उपर्युक्त सर्वनामों की द्विरुक्ति अथवा दो-दो सर्वनामों के योग की प्रवृत्ति बढ़ रही है—

जो कोउ (जुकोउ)	=जो कोई (=कोई भी)
जौन कौनउ	= ,, (= ,,)
कौनउँ न कौनउँ	= कोई न कोई
कोउ–कोउ	= कोई कोई
का–का	= क्या क्या

कारक प्रत्यय

११. सर्वनाम के कारक-चिह्न वे ही हैं जो कि संज्ञाओं के लिए प्रयुक्त हो रहे है, फिर भी खाँ-क्षेत्र में इनके ध्वन्यात्मक रूपों में जो अन्तर आ जाता है उसका स्पष्टीकरण यहाँ अभीष्ट है। इन कारक-चिह्नों के दो रूप उक्त क्षेत्र में मिल रहे हैं —

कर्त्ता	नैं ~ न्हैं
कर्म	खाँ
करण-अपादान	सैं
सम्प्रदान	के ~ खे + लानैं
सम्बन्ध	को ~ खो, के ~ खे, की ~ खी, कैं ~ खैं
अधिकरण	मैं ~ म्हैं
	पै ~ फै

वैकल्पिक रूपों में जो महाप्राण युक्त रूप हैं, उनका योग कतिपय अपवादों को छोड़कर सर्वनामों के एकवचन रूपों के साथ ही संभव है, अन्यत्र जैसे संज्ञा एकवचन व बहुवचन (क्रियार्थक संज्ञाओं सहित), विशेषण एकवचन व बहुवचन (कृदन्त रूपों सहित), अव्यय तथा सर्वनाम बहुवचन रूपों के साथ महाप्राण-रहित रूप प्रयुक्त हो रहे हैं। वस्तुतः ये रूप पूरक-स्थिति में प्रयुक्त होते हैं अर्थात् morphologically conditioned हैं; यथा—

नैं ~ न्हैं (कर्त्ता०):—ए-, ओ-, जे-, के -न्हैं मारो।

पर मौड़ा, बड़े, तुम, आप नैं मारो।

अपवाद मैंनैं मारो; तैंनैं मारो।

कौ ~ खौ............(सम्बन्ध०)

ए-, ओ-, जे-, के- खौ मौड़ा............

लिए हुए थी, उनमें से कतिपय ही विकसित होकर बुन्देली में आ सके हैं, अतएव भिन्न स्रोतों के कारण ही बुन्देली प्रातिपदिकों की संख्या बढ़ गई है। कालान्तर में सादृश्य ने भी अपना प्रभाव दिखलाया होगा। इन सब कारणों से हम उक्त पदों के लिए ध्वन्यात्मक (phonological) सम्बन्धों की अपेक्षा शब्दात्मक (mophological) सम्बन्ध ही अधिक प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं; फिर भी--

आ, ई, ऊ, क्रमशः ह्रस्व अ, इ, उ, में परिणत हो जाते हैं तथा ए, ओ क्रमशः इ तथा उ में बदलते हैं। ऐ एवं औ का परिवर्तन अ में ही होता है। ये ह्रस्व रूप प्रत्यय-संयुक्त अथवा सामासिक पदों में पद के प्रथम अवयय बनकर प्रयुक्त होते हैं। यथा :

ए->इ-	इकतिस	=	एक + तीस
	इकैस	=	एक + ईस (=बीस)
	इक्काईँ	=	अकेला
	इकन्नी	=	एक + आना
	इक्का	=	एक विन्दु वाला ताश का पत्ता
	इकारौ	=	इकहरौ
ओ->उ-	दुक्की	=	दो विन्दुवाला ताश का पत्ता
	दुसरतौ	=	तीसरी बार वर का वधू-गृह पहुंचना
	दुगनौ	=	दो + गुना
	दुकेलौ	=	अकेलौ के सादृश्य पर
आ->अ-	पँचपन	=	पाँच + पचास
	सत्रा	=	सात + रह (<दश)
	अठारा	=	आठ + रह (<दश)

समसामयिक भाषा-विश्लेषण की दृष्टि से इनके प्रकृति एवं प्रत्यय स्पष्ट नहीं कहे जा सकते अतएव अधिक उदाहरण देना उपयुक्त नहीं जँचता।

४-१. संख्यावाचाक विशेषणों के कुछ अन्य ध्वनि-रूपान्तर अर्थ को ध्यान में रखते हुए नीचे व्यवस्थित किए गए हैं :

एक	[अक-]	पूर्व-प्रत्यय के रूप में केवल 'अकेलौ' शब्द में।
दो	[दू-]	दूज, दूजा, दूनौ
	[दु-]	दुक्की, दुगनौ

तीन	[ती-]	तीज, तीजा, तीनर, तीसरौ
	[ति-]	तिहाई, तिहरौ, तिगनौ, तिक्की
	[तिर्-]	तिरका, तिरासी, तिरेपन
	[ते-]	तेरा, तेइस
	[तैं-]	तैंतिस
चार	[चौ]	चौपार (=चौपाल), चौथ, चौगनौं, चौका, चौहत्तर, चौखट, चौखूंटौ
	[चौँ]	चौँतिस, चौंसट
	[चव् ~ चउ-]	चउअर, चवालिस, चउदा,
	[चौर्-]	चौरासी, चौरानबे
पाँच	[पँच्-]	पँचगनौ, पँचपन
	[पंच्-]	पंचाइत, पंचा (=पाँच हाथ की दो धोतियाँ), पंचानवे
	[पंज्-]	पंजा (=ताश का पत्ता]
	[पच्-]	पचपन, पचीस, पचासी
	[पँय्-]	पैंतीस, पैंसट पैंतालिस
	[पन्द्र-]	पन्द्रा
छै	[छय-]	छयालिस, छयासी,
	[छअ-]	छत्तिस, छक्का, छटें, छप्पन
	[छा-]	छानबे
सात	[सर्-]	= सरसट
	[सैं-]	= सैंतिस, सैंतालिस
आठ	[अठ]	= अठारा, अठासी
	[अर्]	= अरसट, अरतिस
नौं	[न-]	= नमैं
	[नव्-]	= नवासी
दस	[दह्-]	= दहाम ~ धाम, दहाई ~ धाई
	[दा-]	= चउदा
	[रा-]	= सोरा, सत्रा

सर्वनाम

१. सर्वनाम जैसा कि शब्द-विशेष से स्पष्ट हो रहा है, यह एक प्रकार की नाम (=संज्ञा) शब्दावलि है । पुनरुक्ति की नीरसता से बचने के लिए ही इसका विधान जान पड़ता है। अर्थ ही नहीं, अपितु सर्वनामों की रचनात्मक गठन भी नाम-शब्दों से बहुत भिन्न नहीं कही जा सकती । लिंग-वचन एवं कारक से सम्बन्धित यदि एक प्रकार के विभक्ति-प्रत्यय संज्ञाओं में लग रहे हैं, तो दूसरे प्रकार के, सर्वनामों में । विभक्ति-प्रत्ययों की इन दो कोटियों के आधार पर 'नाम' के दो वर्ग भी अनिवार्य कहे जायेंगे— अर्थात् संज्ञा तथा सर्वनाम । पाणिनीय व्याकरणिक परम्परा में वह नाम-शब्दावलि जो कि 'सर्व' से प्रारम्भ होती है, 'सर्वनाम' कहलाई; पर हिन्दी-व्याकरण की दृष्टि से यह पारिभाषिक शब्द दूर जाकर भी बहुलता से प्रयुक्त हो रहा है ।

२. प्रकृति में विभक्ति-प्रत्ययों की संयोजना की दृष्टि से नाम एवं सर्वनामों की कथित एकरूपता के बीच अनेकरूपता के भी दर्शन किए जा सकते हैं । सर्वनाम पदों के प्रातिपदिक (प्रकृति) रूपों का निर्धारण कठिन है; संज्ञाओं में जैसे पेड़ौ, बात, घर आदि का आधार बनाकर उनके विभक्ति-प्रत्ययों का उल्लेख किया जा सकता है; वैसा सर्वनाम रूपों के साथ कर सकना संभव नहीं है । यदि एकवचन एवं बहुवचन दोनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रातिपदिक निर्धारित करें, तो भी विश्लेषण में किसी प्रकार की सुविधा नहीं जान पड़ रही है । प्रकृति के साथ-साथ विभक्ति-प्रत्ययों की जटिलता भी स्पष्ट है । यथा :

i) मैं (एक०) प्रकृति म-

परन्तु

हम (बहु०) प्रकृति ह-

ii) मैं, (एक०) प्रकृति म-
मोहैं (एक०) प्रकृति मो-

प्रातिपदिक तथा विभक्ति-प्रत्ययों की इस अनेकरूपता से यह स्पष्ट होता है कि बुन्देली सर्वनामों के ये सभी रूप विभिन्न प्रकृतियों से आ-आकर सम्बद्ध हो गए हैं ।

३. विभक्ति-प्रत्ययों की समानता को देखते हुए हम बुन्देली सर्वनामों के निम्न तीन वर्ग निर्धारित कर सकते हैं —

मैं-तैं—अर्थ की दृष्टि से इन्हें पुरुषवाचक सर्वनाम—उत्तम पुरुष एवं मध्यम पुरुष—कहा जाता है।

यौ-वौ-जो-सो-को—जिन्हें क्रमशः निकटवर्त्ती, दूरवर्त्ती संकेत-वाचक, सम्बन्ध, सह-सम्बन्ध तथा प्रश्नवाचक सर्वनामों की संज्ञाएँ दी गई हैं।

शेष—स्फुट सर्वनाम शब्दावलि।

४. पुरुषवाचक सर्वनाम (उत्तम-मध्यमपुरुष)

	एक०	बहु०
मूल०	मैं, तैं	हम, तुम
वि० (सामान्य)	मो, तो	हम, तुम
(सम्प्रदान)	मोय, तोय	हमैं, तुमैं
(सम्बन्ध)	मो(र-)-, तो(र-)-	हमा (र-)-, तुमा (र-)-

टिप्प० i) एकवचन के स्थान पर बहुवचन रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मध्यम पुरुष इस प्रकार के प्रयोग में उत्तमपुरुष से आगे बढ़ गया है। तब फिर यह स्वाभाविक है कि बहुवचन के रूप विश्लिष्टात्मकता ग्रहण कर लें। इस प्रकार बुन्देली में बहुवचन द्योतक कुछ शब्दावलि बढ़ती जा रही है। यथा :

–लोग, –सब जन–, हर–, और– आदि। इनके प्रयुक्त होने पर विभक्ति-प्रत्यय प्रकृति में न जुड़कर इन्हीं शब्दों में जुड़ते हैं —

–लोग —इसमें विभक्ति-प्रत्यय 'घर' के लगेंगे।

–सब जन —की रूप-रचना पुंल्लिग में 'दद्दा' की तरह (–सब जनैं-सब जनन) तथा स्त्रीलिंग में 'मौड़ी' की तरह (–सब जनीं, –सब जनिन) होगी।

–हर–, –और– की रूप-रचना मूल रूप में (पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनों में) स्त्रीलिंग 'बात' की तरह तथा

विकारी रूप में पुल्लिग–हरन तथा स्त्रीलिंग में –हरिन होगी। यथा —

बे लोग (हरैं, औरें) आउतीं हैं।
बे सब जनैं आउत् हैं।

ii) कारक-चिह्न विकारी 'सामान्य' में ही जुड़ेंगे; केवल नैं मूल रूप एकवचन– मैं, तैं के साथ जुड़ता है पर खों-क्षेत्र में यह भी अपवाद नहीं मिल रहा है अर्थात् 'मो नैं' रूप भी मिलते हैं।

iii) कौं एवं खों क्षेत्र में तैं के स्थान पर तू का प्रयोग विरल नहीं कहा जा सकता।

iv) खाँ-क्षेत्र में विकारी सामान्य रूप एकवचन मोह्–, तोह्- मिलता है (इस पर आवश्यक विचार इसी अध्याय के अन्तिम पृष्ठों में किया गया है)

v) सम्बन्ध कारकीय रूप, -र- प्रत्यय-युक्त हैं जिनमें विभक्ति-प्रत्यय पुल्लिग 'पेड़ौ', स्त्रीलिंग 'मौड़ी' के लगते हैं और –रैं एकरस रहता है। साथ ही इस -र- के पूर्व मूलरूप (प्रकृति) में –आ– विकरण भी जुड़ा मिल रहा है। इस -र- के सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि यह वर्तमान बोलचाल की भाषा से (केवल कौं-क्षेत्र को छोड़कर) विलुप्त होता जा रहा है। वस्तुतः स्वर-मध्यवर्त्ती -र- के लोप की प्रवृत्ति भाषा में सुस्पष्ट है, उसी के परिणामस्वरूप 'र' के लोप से केवल विभक्ति-प्रत्यय ही शेष रह गये हैं। लोक-गीतों में प्राचीनता के दर्शन किए जा सकते हैं; यथा :

हमारो > हमाओ
मोरो > मोओ

एक बात और, खाँ-क्षेत्र में बलात्मक निपातों के साथ,

मोर्हई > मेरा ही
तोर्हऊ > तेरा भी में महाप्राण की रागात्मकता ने 'र' को सुरक्षित कर रखा है।

vi) सभी विकारी बहुवचन रूप खों-क्षेत्र में 'तुम' के स्थान पर 'तुम्ह' मिलेंगे । शब्दान्त में यह महाप्राण तत्त्व विलुप्त रहता है, अन्यत्र सुस्पष्ट है; यथा—

तुम्हें, तुम्हाओ, तुम्हईं (=तुम ही), तुम्हऊँ (=तुम भी) नियमतः 'हम्ह' रूप बनता है पर समीपवर्त्ती अक्षरों में 'महाप्राण' व्यंजनों का प्रयोग सम्भव नहीं, अतएव सर्वत्र 'हम' रूप ही मिलता हैं।

५. इस वर्ग के अन्तर्गत परिगणित संकेतवाचक, सम्बन्ध एवं सह-सम्बन्ध वाचक तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम रूपों के विभक्ति-प्रत्ययों में एकरूपता पाई जाती है । जो अन्तर है, वह नगण्य है । इस तथ्य का निदर्शन निम्न चार्ट में क्रमशः व्यवस्थित बुन्देली, ब्रजी, हिन्दी, अवधी द्वारा किया गया है ।

मूल०	एक०	यौ	वौ	जौन	सो,तौन	को
		जौ (जु)	बौ (बु)	जौन	सो,तौन	को
		येह	वोह	जो	+	कौन
		ए (ई)	ओ (ऊ)	जो	सो	को
	बहु०	ये	वै	जौन	तौन	को
		ये	वै	जौन	तौन	को
		ये	वे	जो	+	कौन
		ये	वै	जे	से,ते	के
वि०	एक०	ई	ऊ	जी	ती	की
		या	बा	जा	ता	का
		इस	उस	जिस	+	किस
		एह	ओह	जेह	केह	तेह
	बहु०	इन	उन	जिन	तिन	किन
		इनि	उनि	जिनि	तिनि	किनि
		इन	उन	जिन	+	किन
		इन्ह	उन्ह	जिन्ह	तिन्ह	किन्ह

६. संकेतवाचक (निकट एवं दूरवर्त्ती)

एक०	मूल०	पुल्लिग	जौ,	बौ
		स्त्रीलिंग	जा,	बा

	वि०	(सामान्य)	ई,	ऊ
		(सम्प्रदान)	इये,	उये
बहु०	मूल०		जे,	बे
	वि०	(सामान्य)	इन,	उन
		(सम्प्रदान)	इनैं,	उनैं

६·१. क्षेत्रीय रूपान्तर :

कौं-क्षेत्र

एक०	मूल०		कोई अन्तर नहीं।	
	वि०	(सामान्य)	जा(य),	बा(य)
		(सम्प्रदान)	जाय,	बाय
बहु०	मूल०		कोई अन्तर नहीं	
	वि०	(सामान्य)	इन,	बिन
		(सम्प्रदान)	इनैं,	बिनैं

खौं-क्षेत्र

एक०	मूल०	पुल्लिग	यौ,	वौ	
		स्त्रीलिंग	या,	वा	
	वि०	(सामान्य)	ए-,	ओ-	(सर्वनाम-रूप)
			ई,	ऊ	(विशेषण-रूप)
		(सम्प्रदान)	एहै,	ओहै	
बहु०	मूल०		ये,	वे (वैं)	
	वि०	(सामान्य)	इन,	उन	
		(सम्प्रदान)	इन्हैं,	उन्हैं	

६·२. i) मूल० एक० रूपों में पुल्लिग-स्त्रीलिंग के भिन्न रूप उल्लेखनीय हैं।

ii) खौं-क्षेत्र में संकेतवाचक सर्वनाम एवं संकेतवाचक विशेषण अर्थात् विशेष्य-रहित एवं विशेष्य-सहित, ये रूप अलग-अलग हैं, यथा :

	ई आदमी खौं	= इस आदमी को
परन्तु	ए खौं	= इसको
	ऊ लुगाई सैं	= उस स्त्री से
पर	ओसैं	= उस से

iii) खौं-क्षेत्र में विकारी बहु० रूप 'इन्हन', 'उन्हन' (साथ ही, जिन्हन, तिन्हन, किन्हन) भी मिल जाते हैं। निश्चय ही 'इन्ह', 'उन्ह' को

एकवचनीय रूप समझकर उन्हें संज्ञा के विकारी विभक्ति-प्रत्यय -अन से युक्त कर दिया गया है ।

७. सम्बन्ध वाचक एवं सह-सम्बन्ध वाचक :

एक०	मूल०		जौन,	तौन	[जो, सो]
	वि०	(सामान्य)	जी,	ती	[जौन, तौन]
	"	(सम्प्रदान)	जिये,	तिये	
बहु०	मूल०		जौन-जौन,	तौन-तौन	
	वि०	(सामान्य)	जिन,	तिन	
		(सम्प्रदान)	जिनैं,	तिनैं	

i) क्षेत्रीय रूपान्तरों में विभक्ति-प्रत्ययों की भिन्नता संकेतवाची सर्वनाम-रूपों की ही भाँति है ।

ii) सह-सम्बन्धवाची रूप केवल लोक गीतों एवं व्यवसायी कथा-वाचकों में ही मिल सकेंगे । उनका स्थान दूरवर्त्ती संकेतवाची सर्वनाम-रूप ले रहे हैं; यथा :

जौन निकर सकत होय बौ आँगूँ आवै (वर्तमान रूप)
किस्सा सो झूंटी बात सो मीठी (परम्परागत वाक्य)
जो निकर सकत होय सो आँगे आवै[1]

८. प्रश्नवाचक

एक०	मूल०		को	[कौन]	व्यक्तिवाची
			का	[कौन]	वस्तुवाची
	वि०	(सामान्य)	की	[कौन]	
		(सम्प्रदान)	किये	[कौनैं]	
बहु०	मूल०		को-को	[कौन-कौन]	व्यक्तिवाची
			का-का	[कौन-कौन]	वस्तुवाची
	वि०		काए, कौन		

८-१. i) क्षेत्रीय रूपान्तर पूर्ववत् हैं ।

ii) 'काए' के बाद 'नै" कारक-चिह्न का प्रयोग संभव नहीं ।

iii) 'कौन' की भाषा-व्यापकता दृष्टव्य है; यथा :

१. शिवसहाँय चतुर्वेदी—हमारी लोक कथाएँ- पृष्ठ ३२

तोरी मती कोन्नें हरी धनसिंह = हे धनसिंह ! तेरी बुद्धि किसने नष्ट कर दी।

मोय कौन की करकैं जात = मुझे किस की (स्त्री) बनाकर जा रहे हो।

iv) -ऊ प्रत्यय के जुड़ने पर उपर्युक्त सर्वनाम-रूप अनिश्चयात्मकता का अर्थ रखते हैं :—

काऊ = किसी (व्यक्ति अथवा वस्तु)
कोऊ = „ („ „)
कौनउँ (कौन्हउँ) = „ („ „)
कैऊ = कई („ „)
क-छू (कुछू) = कुछ भी (वस्तु)

९. शेष—i) 'अपन' सर्वनाम रूप 'अपुन' तथा क्षेत्रीय 'अपनाँ' (खाँ-क्षेत्र) रूपान्तर के साथ विशेषतः मध्यम पुरुष के लिए, पर साथ ही, उत्तमपुरुष का अर्थी बनकर प्रयुक्त हो रहा है। ऐसा भी जान पड़ता है कि यह कभी अन्य पुरुष के के लिए भी प्रयुक्त होता था, पर यह अर्थ अब स्पष्ट नहीं। इसके रूप बहुवचन में ही मिलेंगे। यथा :

अपन काँ गए ते = आप कहाँ गए थे ?
अपन सैं तौ कछू नइँ बनत = आपसे कुछ नहीं बनता, अथवा मुझसे कुछ नहीं बनता।

ii) 'अपुन-तपुन'--ये शब्द वक्ता एवं श्रोता दोनों को अपने में समेट लेते हैं।

अपुन-तपुन तला की पार पै घूमबू = हम-तुम तालाब के किनारे घूमेंगे।

iii) आपइँ-आप, अपनइँ-आप आदि सामासिक पद 'स्वयं एव' का अर्थ रख रहे हैं।

iv) निश्चय ही यह विशेषण-रूप 'अपनौ' (आ + न + अन्यान्य पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग वर्गीय विभक्ति-प्रत्ययों सहित) से ऐतिहासिक सम्बन्ध रख रहा है। इसी कोटि का एक सर्वनाम तथा विशेषण शब्द 'फलानौ' भी है जो हिन्दी में 'अमुक', 'फलाँ' का अर्थी है।

१०. सूक्ष्म अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए उपर्युक्त सर्वनामों की द्विरुक्ति अथवा दो-दो सर्वनामों के योग की प्रवृत्ति बढ़ रही है--

जो कोउ (जुकोउ)	= जो कोई (= कोई भी)
जौन कौनउ	= ,, (= ,,)
कौनउँ न कौनउँ	= कोई न कोई
कोउ-कोउ	= कोई कोई
का-का	= क्या क्या

कारक प्रत्यय

११. सर्वनाम के कारक-चिह्न वे ही हैं जो कि संज्ञाओं के लिए प्रयुक्त हो रहे है, फिर भी खाँ-क्षेत्र में इनके ध्वन्यात्मक रूपों में जो अन्तर आ जाता है उसका स्पष्टीकरण यहाँ अभीष्ट है। इन कारक-चिह्नों के दो रूप उक्त क्षेत्र में मिल रहे हैं —

कर्त्ता	नैं ~ न्हैं
कर्म	खाँ
करण-अपादान	सैं
सम्प्रदान	के ~ खे + लानैं
सम्बन्ध	कौ ~ खौ, के ~ खे, की ~ खी, कैं ~ खैं
अधिकरण	मैं ~ म्हैं
	पै ~ फै

वैकल्पिक रूपों में जो महाप्राण युक्त रूप हैं, उनका योग कतिपय अपवादों को छोड़कर सर्वनामों के एकवचन रूपों के साथ ही संभव है, अन्यत्र जैसे संज्ञा एकवचन व बहुवचन (क्रियार्थक संज्ञाओं सहित), विशेषण एकवचन व बहुवचन (कृदन्त रूपों सहित), अव्यय तथा सर्वनाम बहुवचन रूपों के साथ महाप्राण-रहित रूप प्रयुक्त हो रहे हैं। वस्तुतः ये रूप पूरक-स्थिति में प्रयुक्त होते हैं अर्थात् morphologically conditioned हैं; यथा—

नैं ~ न्हैं (कर्त्ता०):—ए-, ओ-, जे-, के न्हैं मारो।

पर मौड़ा, बड़े, तुम, आप नैं मारो।

अपवाद मैंनैं मारो; तैंनैं मारो।

कौ ~ खौ............(सम्बन्ध०)

ए-, ओ-, जे-, के- खौ मौड़ा..........

पर मौड़ा, बड़े, राम, आप कौ मौड़ा………

अपवाद मो-, तो- रूप जिनके अपने सम्बंधकारकीय चिह्न हैं।

पै ~ फै……… (करण तथा अधिकरण)

मो-, तो-, ए-, ओ-, जे-, के- फै………

पर मौड़ा, बड़े, तुम, आप पै………

मैं ~ म्हैं…… (अधिकरण) पै ~ फै की ही तरह।

[न्हौ, फै आदि रूप महाप्राण युक्त ही यत्र-यत्र लिखे हुए मिल जायेंगे, पर भिन्न लिपि-चिह्न न होने के कारण लोगों के मस्तिष्क में नैं, मैं रूप ही बसे हैं, अतएव यहां वैकल्पिक रूप —न्हैं, म्हैं लिखे हुए न मिलेंगे]

११-१. कारक-चिह्नों के वैकल्पिक प्रयोगों में पाये जाने वाले महाप्राण तत्त्व के ऐतिहासिक विकास पर विचार करने के पूर्व इन एकवचन सर्वनाम-रूपों के वैकल्पिक प्रयोगों पर भी ध्यान दे लिया जाए। ए-, ओ-, जे-, के- सर्वनाम रूपों का प्रयोग भाषा में केवल कारक-चिह्नों से जुड़कर ही होता है, अन्यत्र अर्थात् इनके बीच में किसी संज्ञा, विशेषण अथवा संश्लिष्ट-प्रत्यय के आने पर इनका ध्वन्यात्मक रूप ई, ऊ, जी, की, मिलता है; यथा :—

i) इ, ऊ, जी, की आदमी कौ

ii) इदनाँ, उदनाँ, जिदनाँ, किदनाँ तथा इतै, उतै, कितै, आदि।

अपवाद रूप में एक प्रकार के प्रयोग और हैं जिनमें ए-, ओ- आदि रूप उपलब्ध हो रहे हैं; यथा—

एई कौ = इसी को

एऊ कौ = इसका भी

इसी प्रकार ओई, ओऊ, जेई, जेऊ कौ………

इन अन्तिम उदाहरणों से स्पष्ट है कि ये कारक-चिह्न जब ए-, ओ-, जे-, के- के साथ जुड़कर आते हैं, तभी महाप्राणत्व का योग हो जाता है, अन्यत्र नहीं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उक्त रूप संभवत: *एह्, *ओह्, *जेह्, *केह्, तथा साथ ही *मोह्, *तोह् हैं जो कि कारक-चिह्नों

से संश्लिष्ट होने पर अपनी महाप्राणता कारक-चिह्नों को सौंप देते हैं। यथा —

एह् + कौ > एखौ
ओह् + कौ > ओखौ
मोह् + पै > मोफै

ऐसा जान पड़ता है कि ये रूप अपभ्रंश-स्तर के हैं। इनमें प्रयुक्त ए, ओ ध्वनियाँ ह्रस्व ही जान पड़ती हैं। एह + कौ (।+।+ऽ) = एखौ (ऽऽ) अर्थात् विकास में मात्राओं में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

१२. उपर्युक्त सर्वनाम-रूपों को आधार बनाकर कुछ विशेषण तथा अव्यय शब्दों की भी रचना हुई है (देखिए, पृष्ठ १०३)। रचनात्मक प्रत्यय प्रधानतः -त्-, -त्-, -स्- हैं। साथ ही, कुछ संज्ञा शब्द भी (दिनाँ = दिन, तरह > तराँ ~ तनाँ) प्रत्यय-रूप धारण करते जा रहे हैं। संलग्न चार्ट में इन सभी को व्यवस्थित किया गया है। कुछ उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं :

i) -औ/ओ में अन्त होने वाले विशेषण हरीरौ / हरओ की तरह रूप-रचना रखते हैं। (विषय क्रम, विशेषण, २)
ii) सह-सम्बन्ध वाचक सर्वनाम पर आधारित रूपों का प्रयोग विरल है।

उदाहरण :

इत्तौ = इतना
ऐसौ = ऐसा
ऐसैं = इस तरह
ई तराँ = इस तरह
इदनाँ = इस दिन
अबै = अभी
ह्याँ = यहाँ
हिनाँ = यहाँ
इनै = इस ओर, यहाँ
जै = जितने
कै = कितने

		विशेषण			अव्यय				
सर्वनाम	प्रकृति	परिमाण	गुण	संख्या	रीति	काल I	काल II	स्थान	रीति-स्थान
निकट० येह	इ- ¬ अ- ¬ अय्-	इ-त्त्-औ	अय्-स्-औ	+	अय्-स्-ऐँ	इ-दनाँ	अ-ब्-ऐ	ह्-याँ (इ-हाँ) ह्-इ-नाँ (इ-ह्-नाँ)	इ-त्-ऐ
दूर० वोह	उ- ¬ व्-	उ-त्त्-औ	वय्-स्-औ	+	वय्-स्-ऐँ	उ-दनाँ	+	ह्-वाँ (उ-हाँ) ह्-उ-नाँ (उ-ह्-नाँ)	उ-त्-ऐ
सम्बन्ध जौन	ज- ¬ जि- ¬ जय्	जि-त्त्-औ	जय्-स्-औ	ज्-अय्	जय्-स्-ऐँ	जि-दनाँ	ज् ब्-ऐ	ज-हाँ	जि-त्-ऐ जि-त्-आँय
सह० तौन	त- ¬ ति- ¬ तय्-	ति-त्त्-औ	तय्-स्-औ	त्-अय्	तय्-स्-ऐँ	ति-दनाँ	त्-ब्-ऐ	त-हाँ	ति-त्-ऐ ति-त्-आँय
प्रश्न० कौन	क- ¬ कि- ¬ कय्	कि-त्त्-औ	कय्-स्-औ	क्-अय्	कय्-स्-ऐँ	कि-दनाँ	क्-ब्-ऐ	क-हाँ	कि-त्-ऐ कि-त्-आँय

क्रिया

१. साधारणतः हिन्दी तथा हिन्दी-प्रदेश की अन्याय क्षेत्रीय बोलियों के क्रिया-पदों में काल, वाच्य, अर्थ, पुरुष, वचन तथा लिंग-द्योतक रचनात्मक प्रवृत्तियों का विधान रहता है। आवश्यक नहीं, कि प्रत्येक क्रिया-पद उक्त सभी विशेषताओं से युक्त हो, पर अनिवार्यतः कई एक प्रवृत्तियाँ किसी एक पद में परिलक्षित हो जाती हैं।

२. रूप-रचना की दृष्टि से बुन्देली क्रियाएँ दो वर्गों में बिभाजित करके देखी जा सकती हैं—

i) साधारण (Ordinary)
ii) यौगिक (Derivative)

और उक्त दृष्टि से बुन्देली का कोई एक क्रिया-पद अनिवार्यतः निम्नलिखित किसी एक वर्ग में रखा जा सकता है—

i) धातु (विभक्ति-प्रत्यय, शून्य)
ii) धातु + वचन-पुरुष-द्योतक विभक्ति-प्रत्यय
iii) धातु + लिंग-वचन-द्योतक कृदन्तीय प्रत्यय
iv) धातु + कृदन्तीय प्रत्यय + सहायक क्रिया

बुन्देली के इन रचनात्मक तत्वों के सम्बन्ध में अलग-अलग विस्तार से विचार किया जा सकता है।

धातु

३. बुन्देली धातुएँ दो वर्गों में विभक्त हैं—

i) स्वरान्त
ii) व्यञ्जनान्त

स्वरान्त : ये पुनः दो वर्गों में विभक्त हैं—मूल एवं यौगिक। साथ ही, सभी दीर्घ स्वरों में अन्त होने वाली हैं।

मूल : लगभग सभी दीर्घ स्वरों—अनुनासिक तथा निरनुनासिक —में अन्त होने वाली, यथा—

√जा, √पी, √छू, √ले, √पै (=रोटी बनाना), √खो, √सीँ (=सीना), √टें (=तेज करना), √भाँ (=मथना)

यौगिक : प्रेरणा प्रत्यय -आ अथवा -वा तथा नाम-धातु-प्रत्यय -या से योग-निष्ठ होने वालीं, यथा—

√खबा- (=खिला), √खबवा- (=खिलवा),
√करा-, √करवा-,
√हथया- (=हस्तगत करना), हाथ से
√गरया- (=गाली देना), गारी से

व्यंजनान्त : ये भी पुन: दो रूपों में विभक्त हैं—मूल एवं ह्रस्वीकृत (weak grade)

मूल : इन धातुओं का मूल स्वर ह्रस्व एवं दीर्घ, दोनों ही प्रकार का हो सकता है। यथा :

√काट, √ढील (=छोड़ना), √पेर (=कुचलना), √भौंक (=घुसेड़ना), √पूर (=भरना), √बोर (=डुबोना), √कर, √चल, √सर (=सड़ना), √गिर आदि,

ह्रस्वीकृत (weak grade roots)—इन धातुओं का धातु-स्वर सदैव ह्रस्व ही मिलता है। इनको यह संज्ञा इसलिये दी गई है कि ये धातुएँ अपना एक अनिवार्य प्रतिरूप जो कि दीर्घ धातु-स्वर वाला है, मूल धातुओं (स्वरांत अथवा व्यंजनान्त में रखती हैं। इस तथ्य के आधार पर यदि हम कहना चाहें तो उन प्रतिरूप मूल धातुओं को दीर्घ धातुएँ (strong grade roots) भी कह सकते हैं।

३-१. ह्रस्वीकृत धातुएँ (weak-grade roots), जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, दो वर्गों में विभक्त हो रही हैं;

i) व्यंजनान्त मूल धातुओं के ह्रस्व रूप, यथा :

√बाँध > बँध = बाँधना—बँधना
√पीस > पिस = पीसना—पिसना
√पूर > पुर = भरना—भर जाना
√पोँछ > पुँछ = साफ करना—साफ हो जाना

ii) स्वरान्त मूल धातुओं के ह्रस्व रूप, यथा:

√गा > √गब = गाना
√खा > √खब = खाना
√पी > √पिब = पीना
√छू > √छुब = छूना
√खो > √खुब = खोना
√सीँ > √सिम = सीना
√भँ > √भम = मथना
√टेँ > √टिम = घिसना
√दोह > √दुभ = दुहना
√गोह > √गुभ = गूँथना
√कह > √कभ = कहना
√नह > √नभ = कंधे पर जुआ रखना
√पै > √पब = रोटी बनाना

टिप्प० i) अनुस्वारान्त धातुओं का अनुस्वार ब् के साथ मिलकर म् में परिवर्तित हो जाता है।

ii) -ह में अन्त होने वाली धातुएँ रूप-रचना में स्वरान्त की प्रवृत्ति रखती हैं। इस प्रकार ब् और अन्तिम ह् मिलकर भ् ध्वनि में परिणत हो जाते हैं।

३-२. दीर्घ एवं ह्रस्व अपश्रुति धातुओं (strong and weak grade roots) के धातु स्वरों के बीच संधि-नियमों (morphophonemic rules) की स्थापना इस प्रकार की जा सकती है :

आ > अ
ई, ए > इ
ऊ, ओ > उ
ऐ > इ
औ > उ

३-३. साहित्यिक हिन्दी में इन ह्रस्वीकृत धातुओं से बने क्रिया-रूपों का प्रायः अभाव है। इनके कर्मवाचीय अर्थ की अभिव्यञ्जना का अर्थ हिन्दी में संयुक्त क्रिया-रूपों ने ले लिया है। बुन्देली में इन धातु-रूपों का प्रयोग बहुलता से होता है, यथा :

खब् + बा = खब्बा = खाने वाले
खब् + बू = खब्बू = खाने वाली
खब् + अइया = खबइया = खाने वाला
खब् + आई = खबाई = खिलाई (पिलाई)
खब् + आउत = खबाउत = खिलाता

इस में सन्देह नहीं कि यह -ब्, धातु का एक अंश ही है, परन्तु इसके दीर्घ प्रतिरूपों को देखकर सहसा इस ध्वनि-सन्धि की ओर ध्यान नहीं जा पाता। यदि काट- से कट- है, बाँध से बँध है तो खा- से ख- और जा- से ज- ही होना चाहिए, न कि खब- और जब-। पर यदि हम बुन्देली के अन्य क्रिया-पदों को सामने रखें तो इस सन्धि-नियम की गुत्थी बहुत कुछ सुलझ जाती है। उदाहरणतः, आउत, गाउत का -उ- तथा आव्नैं, गाव्नैं का -व्- निश्चय ही इस -ब्- से सम्बन्धित हैं। साथ ही सूर एवं तुलसी के आवत, गावत, आवै, गावै, पावै आदि तथा बाँदा की बोली के आबत, गाबत आदि क्रिया-पदों के -व्- एवं -ब्- अंश भी उक्त निष्कर्ष की पुष्टि कर रहे हैं। इस प्रकार हम दीर्घ धातुओं को खा-, जा-, आ-, गा-, रूप में न मानकर * खाब्, *जाब्,* आब्,*गाब् रूप में मान सकते हैं, जिनका ह्रस्व रूप नियमतः खब्-, जब्-, अब्- तथा गब्- हो सकता है, परन्तु इस -ब् का -उ- [यथा आउत, गाउत] अथवा -व्- [यथा आव्नैं, गाव्नैं] में परिवर्तन ध्वनि-विज्ञान के सिद्धान्तों के निकट नहीं हैं। अतएव हम -ब्- के स्थान पर धात्वंश में -व्- को स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार धातुएँ होंगी—√खाव, √जाव, √गाव आदि, जो कि एक ओर -उ- अथवा -व्- में तथा दूसरी ओर -ब्- में परिवर्तन ले सकती हैं। इस निष्कर्ष को लेकर हमें अपने पूर्व-कृत वर्गीकरण (विषय क्रम ३.) में आवश्यक संशोधन करना होगा और बुन्देली की सभी मूल अथवा यौगिक धातुओं को व्यञ्जनान्त ही कहना होगा अर्थात् सभी स्वरान्त धातुएं -व्कारान्त हो जायेंगी। इस प्रकार दो लाभ होंगे—

प्रधानतः ३--३ में गिनाए गए अधिकाधिक संज्ञा अथवा क्रिया-पदों में पाए जाने वाले परस्पर सन्धि-नियम स्पष्ट होते हैं। दूसरे, क्रिया-रूपों की ऐतिहासिकता की साक्षी मिल जाएगी, क्योंकि इस प्रत्ययांश व् का विकास निस्सन्देह धातु तथा विकरण के मध्य विकसित श्रुति रूपों में ही हुआ है। यथा :

सं० खादति > प्रा० खाअइ > ब्रजी खावै

विश्लेषण के अन्य दो मार्ग हो सकते हैं :—

i) इन्हें प्रत्ययांश माना जाए, यथा आ + उत

ii) इन्हें विकरण माना जाए, यथा आ + उ + त

पर अन्य क्षेत्रीय रूपों को तथा भाषा के आन्तरिक गठन को ध्यान में रखते हुए ये अधिक व्यावहारिक नहीं कहे जा सकते।

४. अपने रचनात्मक वैभव से पूर्ण कुछ सहायक क्रियाएँ ऐसी भी हैं जिनका कार्य, कर्त्ता अथवा कर्म का भार सँभालने वाली प्रमुख क्रिया को सहयोग प्रदान करना ही है। कार्य-प्रणाली के आधार पर इनको तीन भागों में विभक्त करके देखा जा सकता है।

i) विभिन्न 'अर्थों' एवं 'कालों' की सूक्ष्माभिव्यक्ति में सहयोग देने वाली क्रियाएँ। ये संख्या में दो हैं:—$\sqrt{}$हे- $\sqrt{}$हो-, पर हैं, ये अपने सभी लिंग, वचन, पुरुष के विभक्ति-प्रत्ययों के साथ। इनका प्रयोग कभी-कभी प्रमुख क्रिया के रूप में भी हो जाया करता है। दोनों प्रयोग दृष्टव्य हैं—

बौ पढ़ो है = वह विद्वान है (प्रमुख क्रिया)

ऊ नै पढ़ो है = उसने पढ़ा है (सहायक क्रिया)

ii) कर्मवाचीय अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी $\sqrt{}$जा-, $\sqrt{}$हो- इन दो क्रियाओं का सहयोग भाषा को मिला है। ये अपने तिङन्तीय एवं कृदन्तीय प्रत्ययों के साथ प्रयोग में आती हैं।

iii) अभिधार्थों में नवीनता लाने के लिए आधुनिक आर्य-भाषाओं की क्रियाओं ने अपनी कुछ सहगामिनी क्रियाओं से सहायता ली है। ये सहायक क्रियाएँ स्वतंत्र अर्थ भी रखती हैं और कभी-कभी प्रमुख क्रियाओं से मिलकर उसमें नई अभिव्यक्ति का समावेश करती हैं। इस प्रकार मुख्य एवं सहायक क्रियाओं से युक्त क्रियाओं को 'संयुक्त- क्रियाएँ' कहा जा सकता है।

हम सहयोगी क्रियाओं के प्रथम वर्ग को ही सहायक क्रियाएँ कहेंगे, क्योंकि इन्होंने अपना अलग से अस्तित्व प्रायः समाप्त कर किया है। दूसरा वर्ग मध्यवर्ती है तथा तीसरे वर्ग को 'संयुक्त- क्रियाओं' के अन्तर्गत लिया गया है।

सहायक क्रियाएँ

५. 'हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास' (डाँ० उदयनारायण तिवारी) के पृष्ठ संख्या २५९ में वर्तमान काल की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त बुन्देली सहायक क्रियाओं के रूपों को इस प्रकार संग्रहीत किया गया है—

	एक वचन		बहु वचन	
उत्तम पु०	i) हौं	ii) आँव	i) हैं	ii) आँय
मध्यम पु०	है	आय	हौ	आव
अन्य पु०	है	आय	हैं	आँय

वस्तुतः बुन्देली भाषा की पद-वितरण पद्धति पर विशेष ध्यान न जाने के कारण ही यह भ्रमपूर्ण निष्कर्ष निकला है। इन दोनों कोटियों के रूपों की प्रयोग-सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की जा सकती हैं:—

प्रथम कोटि के रूप विशेषतः अपूर्ण-क्रिया-रूप में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे वाक्यों में पूरक शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। यथा :

मैं ठाकुर आँव = मैं ठाकुर हूं।
वें बनियाँ आँय = वे वैश्य हैं।

इन वाक्यों में निषेधात्मक रूप से निश्चयात्मकता का भाव निहित है, अर्थात्, हमें कोई दूसरी जाति न समझ लीजिए। इन स्थानों पर द्वितीय कोटि के रूपों का प्रयोग साधारणतः नहीं होता।

द्वितीय कोटि के रूपान्तर विशेषतः संयुक्त कालों की रचना करते समय सहायक-क्रिया-रूप में प्रयुक्त हैं। यथा :

मैं जात हौं = मैं जाता हूं
वें खात हैं = बे खाते हैं
ऊ आउत है = वह आता है

इस प्रकार के वाक्यों में प्रथम कोटि के रूपान्तरों का प्रयोग अत्यन्त विरल है। प्रयुक्त होने पर क्रियार्थ में निश्चयात्मकता बढ़ जाती है।

रूपों की एक तीसरी कोटि भी कही जा सकती है जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम कोटि के रूपान्तरों के अत्यधिक निकट है। प्रश्नोत्तर वाली साधारण शैली में इनका प्रयोग बहुधा होता रहता है। यथा—

तैं को आहे ? मैं आँहौं रामेसुर।
तुम को आहौ ? हम आँहें फलाने।

स्वर मध्यवर्ती -ह्- का लोप बुन्देली का सामान्य लक्षण है। फलस्वरूप इन रूपों से प्रथम कोटि के रूपान्तरों का विकास बहुत ही स्पष्ट है। और भी, जब कोई अहीर अकड़ कर मंद गति से कहता है कि मोखाँ नइँ जानत, का समझ लओ तैंनें, मैं भैसाँएँ कौ दउवा आय हौं।' तब सभी प्रकार के रूपों का समन्वय हो जाता है और विकास का यह क्रम निर्धारित किया जा सकता है—

आय + हौं > आँहौं > आँव, उत्तम पु० एक०
आय + है > आहै > आय, अन्य पु० एक०
आय + हैं > आँहैं > आँय, अन्य पु० बहु०

यहाँ बैसवाड़ी-क्षेत्र में प्रचलित इस प्रकार के दोहरे वर्ग-रूपों की चर्चा कर देना अनावश्यक न होगा।

		एक०	बहु०
i)	उत्तम पु०	आहिउँ	आहिन
	मध्यम पु०	आही	आहिउ
	अन्य पु०	आही, आय	आहीं
ii)	उत्तम पु०	हउँ	हन
	मध्यम पु०	हइ	हउ
	अन्य पु०	हइ	हइँ

इन रूपों की प्रयोग सीमाएँ भी सम्भवतः वे ही हैं जो बुन्देली के लिए निर्धारित की जा चुकी हैं। फलस्वरूप द्वितीय कोटि के रूपों में 'आय' के पूर्व योग से प्रथम कोटि के रूपों के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। 'है' अर्थ से होड़ लेने वाला यह 'आय' यदि संस्कृत 'अस्ति' से सम्बन्ध जोड़ लेता है तो उसकी व्युत्पत्ति की खोजबीन की ओर प्रायः ध्यान नहीं जाता। वस्तुतः हुआ ऐसा ही है।

सं० अस्तिं > प्रा० अत्थि > पुरानी हिन्दी आथि[1] > आहि[2] > आय।

इस प्रकार 'आय' का सम्बन्ध अस्ति से जोड़ना ध्वनि-नियम से परे नहीं, फिर भी यह आपत्ति की जा सकती है कि इस 'है' अर्थक 'आय' में जिसका प्रयोग समाज में बहुलता से होता रहा होगा, दूसरे 'है' अर्थक रूपान्तर के योग की क्या आवश्यकता थी? इसके विपरीत यह अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है कि निषेधात्मकता, निश्चयात्मकता तथा संकेतात्मकता का बोधक यह 'आय' कोई सार्वनामिक रूप है जिसमें 'है' अर्थक सहायक-क्रिया-रूपों

१. जायसी ने अपने पद्मावत में इसका 'है' अर्थ में तीन बार प्रयोग किया है।
२. व्रज और बैसवाड़ी साहित्य में बहुलता से प्रयुक्त।

का योग हो गया हैं। अवधी क्रियाओं के पुरुष- वचन-भेदों को स्पष्ट करने वाले विभक्ति प्रत्यय, डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार, इन्हीं सहायक क्रिया-रूपों के अवशेष-चिह्न हैं[1]। यथा :

देखे + हउँ > देखेउँ
देखे + हन > देखेन > देखिन
आय + हउँ > आहिउँ
आँय + हन > आहेन > आहिन

ठीक उसी प्रकार अन्य क्रिया-रूपों के साथ तो नहीं पर 'आय' के साथ अवश्य 'है' रूपान्तरों के योग की यह प्रवृत्ति बुन्देली में परिलक्षित हो रही है।

बुन्देली की 'लुधाँती' (खाँ-क्षेत्रीय बोली) में इस 'आय' का विशुद्ध अर्थ तथा विभिन्न प्रसंगों में इसके अर्थ पर भी विचार कर लेना चाहिए।

संकेतार्थक —'को आय' निश्चय ही यह वाक्य-खण्ड क्रिया-रहित संस्कृत-कोऽयं का विकसित रूप है।

दिशा निर्देशक—कतिपय सर्वनाम रूपों के साथ 'आय' का योग हुआ है। यथा :

काँ जात दादी ? भाई, कहाँ जा रहे हो ?
क्याँय जात दादी ? = भाई, कहाँ जा रहे हो ?

परन्तु अर्थ में 'किस ओर' का संकेत है। संभवतः नाँय, माँय, इताँय, उताँय रूप भी ऐसे ही हों।

संकेतार्थक + निश्चयार्थक—

ऊ आंय गओ तो हारै = वह ही खेत को गया था।
ऊ हारै आय गओ तो = वह खेत को ही गया था।
ऊ हारै गओ आय तो = वह खेत गया ही था।

यह 'आय' पूर्ववर्ती निकटस्थ शब्द पर जोर डाल रहा हैं; उक्त वाक्यों के क्रमशः विशुद्ध अर्थ होंगे—

वह ही खेत पर गया था, दूसरा कोई नहीं।
वह खेत पर ही गया था, अन्यत्र कहीं नहीं।
वह खेत पर केवल चला गया था, कोई विशेष प्रयोजन न था।

यदि हम यहाँ 'आय' को 'है' अर्थी मानैं, तो फिर भूतकालिक सहायक क्रिया 'तो' अनावश्यक ठहरती है।

---

१. **Evolution of Avadhi, page 253.**

'आय' के ठीक इसी प्रकार के प्रयोग सतना समीपवर्ती बघेली में भी देखे जा सकते हैं। यथा :

सिगटिनिया फेर कहिस कि तुम जानत्याहै इन मूड़न केर मोल कि वैसे 'आय' हँसत्याहै। सिगटहवा कहिस कि सुन, हम जानित तो जरूर हयन पै बताउब ना। जो बताय दिहेन और कोउ सुन लिहिस तौ सब तार-ब्यौंत बिगर जई। सिगटिनिया कहिस कि तुम कुछु आय नहीं जनत्या, वैसै झूरै 'आय' डींग मरत्याहै।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि यह 'आय' संकेत गर्भित निश्ययार्थ बोधक है। निश्चयवाचक सर्वनाम रूपों की विवेचना करते हुए डा० तेस्सी-तोरी ने अपनी 'पुरानी राजस्थानी' में लिखाहै—'ये सर्वनाम रूप 'ए', और 'आ'—दो प्रकृति के समूहों में विभक्त हैं। इनके अर्थ में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों से ही निश्चय का बोध होता है, अन्तर केवल इतना ही है कि 'आ' से निश्चय की अधिक मात्रा प्रकट होती है।'[2] निश्चय ही प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी तथा आधुनिक गुजराती 'आ' से ही इस 'आय' की निकटता है; फलस्वरूप संस्कृत 'अयं' या 'अदस्' से इसका ऐतिहासिक सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में संस्कृत के उक्त दोनों के रूपान्तरों का सम्मिश्रण मिलता है।[3] अपभ्रंश साहित्य में 'यह' अर्थक 'ए, एहु, एहिं' आदि रूपों के साथ-साथ 'आअ, आअहो, आअइ' आदि रूपों का बहुलता से प्रयोग मिलता है। बुन्देली और बैसवाड़ी के निश्चयार्थ बोधक 'आय' इसी अपभ्रंश रूप 'आअ' का विकसित रूप होना चाहिए और बुन्देली का,

आय + हौं > आँहौं > आँव
आय + है > आहै > आय
आय + हौ > आहौ > आव

यह विकास क्रम होना चाहिए।

६. अब सहायक क्रिया के हैं, हौं,...आदि रूपों के प्रकृति एवं प्रत्यांशों पर भी विचार करना समीचीन होगा। तुलना के लिए हम यहाँ √चल् धातु के रूपों को प्रस्तुत कर सकते हैं। यथा :

---

१. हमारी लोक कथाएँ, सम्पादक—शिवसहाय चतुर्वेदी, पृष्ठ ७८
२. पुरानी राजस्थानी, अनु० नामवर सिंह, पृष्ठ १०९
३. पिशेल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण (अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी) पृष्ठ ६३५ तथा
Historical Grammar of Apabhransha by Tagare page 244.

एक०	बहु०	एक०	बहु०
चलौं	चलैं	हौं	हैं
चलै	चलौ	है	हौ
चलै	चलैं	है	हैं

स्पष्ट है कि –ओं, –ऐं, –औ आदि प्रत्ययांशों का योग दोनों में ही हुआ है। परिणामतः उक्त रूपों में पाई जाने वाली धातु-प्रकृति √ह् ठहरती है।

यहाँ एक बात और भी विचारणीय है कि जिस प्रकार √चल् धातु से कुछ और रूप भी प्रकट होते हैं; यथा— चलतो, चलत आदि -त- प्रत्यान्त रूप तथा चलो, चली आदि शून्य-प्रत्ययान्त रूप, उसी प्रकार उक्त प्रत्ययों सहित √ह् धातु का प्रयोग भाषा में कहाँ और किस प्रकार हो रहा है ? बुन्देली में अभी-अभी तक हतो, हते, हती रूप प्रचुरता से प्रयुक्त हो रहे थे, लोक-गीतों में उक्त रूपों की भरमार है। परन्तु आज की बुन्देली में प्रकृति 'ह' का लोप हो गया है और केवल प्रत्ययांश ही प्रकृति बनकर यथा जात्तो, जात्ती, गए ते आदि रूपों में शेष रह गया है। स्वर-मध्य में प्रयुक्त होने के कारण उनकी यह दशा हुई है। ध्वनि-सन्धि का यह परिणाम अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। रहे, दूसरे प्रकार के रूप, जो कि 'ह' धातु में शून्य प्रत्यय लगकर बनने चाहिए थे अर्थात् हो, ही, हे आदि। ये बुन्देली क्षेत्र में प्रयुक्त हुए नहीं जान पड़ते। वस्तुतः ये रूप शेखावाटी एवं ब्रज क्षेत्र में बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं। इन रूपों के लोप के मूल में अर्थ परिवर्तन-सम्बन्धी कारण निहित हैं जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है।

पुरानी हिन्दी (ब्रज और अवधी साहित्य) में वर्तमान काल के निश्चयार्थक चलौं, चलै आदि रूप आधुनिक हिन्दी (अथवा बुन्देली) में सम्भावनार्थक हो गएँ हैं। बहुत सम्भव है कि वर्तमानकालिक -त- प्रत्यय का इसमें कुछ हाथ हो, जो कि इस समय दो अर्थों के लिए प्रयुक्त हो रहा है—वर्तमान कालिक निश्चयार्थ तथा भूत सम्भावनार्थ। प्रथम अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए बुन्देली आदि सभी बोलियाँ ह्-धातु के मूल निश्चयार्थक प्रत्ययांशों (सं०—ति > प्रा० -इ > हि०, विकरण—अ + इ = ए अथवा ऐ) को लेकर खड़ी हैं और द्वितीय अर्थ, यदि, अगर आदि सम्भावनार्थक पदों के साथ भूतकालिक अर्थ देता है, यथा—अगर वौ आतो...। इस भूतकालिक अर्थ की अभिव्यंजनात्मक प्रवृत्ति को लेकर हतो, हते आदि रूप भूतकालिक बने जो कि अब तो, ते आदि रूप में शेष रह गए हैं। इनके उसी अर्थ में प्रवेश

पा जाने के कारण, स्वाभाविक है कि भूतकालिक प्रत्ययांश युक्त हो, हे, ही आदि रूप भाषा में न आ सके। इसके विपरीत शेखावाटी में जहाँ पुराने वर्तमान काल के आवै, चलै···आदि रूप है, हो के साथ अब भी वर्तमान कालिक निश्चयार्थ बने हुए हैं. वहाँ हो, हा, ही आदि भूतकालिक रूप ही स्थान पा सके हैं। पर वैसी स्थिति में वहाँ हतो, हते आदि रूपों के प्रयोग के लिए स्थान न रहा।

इस प्रकार ह् धातु से बने हुए सहायक क्रिया के रूप हैं, हौं, हो आदि कर्त्ता के पुरुष-वचन के अनुसार तथा हतो, हते, हती आदि कर्त्ता के लिंग-वचन के अनुसार प्रभावित होते हुए प्रयुक्त होते हैं।

६.१ दूसरी सहायक क्रिया 'हो' है। यह अपने सभी विभक्ति-प्रत्ययों के साथ प्रयुक्त होकर भाषा के विभिन्न अर्थों (moods) को स्पष्ट करती है। वर्तमानकालिक पुराने निश्चयार्थक रूप जो कि अब सम्भावनार्थक हो गए हैं और जिनकी चर्चा 'है' के संबन्ध में ऊपर की जा चुकी है, अपने दो रूप-भेदों के साथ भाषा में व्यवहृत हैं। एक तो व्यंजनान्त धातुओं के साथ, यथा—'ह्' धातु और दूसरे स्वरान्त धातुओं के साथ यथा—'हो' धातु।

ह्—	–औं	–ऐं
	–ऐ	–औ
	–ऐ	–ऐं
हो—	–वँ	–यँ
	–य्	–व्
	–य्	–यँ

पुरुष-वचन-विभेद रखते हुए ये रूप वर्तमान, भूत तथा भविष्यत्कालिक रूपों के साथ मिलकर 'सम्भावना' के अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। यथा:

अगर बौ आउत होय = अगर वह आता हो (होवे)
अगर बौ आओ होय = अगर वह आया हो (होवे)
अगर उऐ आउनैं होय = अगर उसे आना हो (होवे)

लिंग-वचन-विभेद रखने वाले दूसरे प्रकार के रूप –त- प्रत्ययान्त हैं। यथा—होतो (पु० एक०) होते (पु० बहु०), होती (स्त्री० एक०) होतीं (स्त्री० बहु०)। ये रूप भी हतो की तरह भूतकाल में प्रयुक्त होकर विधि (Conditional) अर्थ की अभिव्यंजना कराते हैं; यथा—

बौ आउत होतो तौ……यदि वह आता होता तो…
बौ आओ होतो तौ……यदि वह आया होता तो…
उऐ आउनैं होतो तौ……यदि उसे आना होता तो…

भाषा के सामान्य गठन के अनुसार लिंग-वचन-विभेद रखने वाले तीसरे प्रकार के रूप –०–शून्य प्रत्ययान्त होने चाहिए, यथा— *होओ (=हुआ), *होई (=हुई), *होए (=हुए), *होईं (=हुईं)। खड़ी बोली हिन्दी में ये रूप अर्थ–सम्बन्धी (modal) अन्तर स्पष्ट करने वाली सहायक क्रिया के रूप में विकसित न हो सके और आज वे कृदन्तीय विशेषण बनकर प्रयोग में आ रहे हैं, यथा—आता हुआ…, आते हुए… आदि। बुन्देली में इनके स्थान पर भयो, भए, भई रूप विकसित हुए हैं, यथा—चलतमान भए, खेली भई गेंद। मूलतः दोनों एक हैं। संस्कृत की भू (भव-) धातु से भूतकालीन भयो आदि रूप और ध्वनि-परिवर्तन से होता, होय आदि रूप बने हैं।

उक्त सहायक क्रिया के चौथे प्रकार के रूप भविष्यत् कालीन संभावनार्थी हैं। ये पुरुष-वचन-विभेद रखते हुए क्षेत्रीय अन्तर भी रखते हैं। यथा—

	खाँ-क्षत्र	कों-क्षेत्र	खों-क्षेत्र
एक०	होहौं	हुइयों	हुवों
	होहै	हुइऐ	हुवे
	होहै	हुइऐ	हुवे
बहु०	होहैं	हुइऐं	हुवें
	होहौ	हुइऔ	हुवौ
	होहैं	हुइऐं	हुवें

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्याकरणिक मूल्यों (काल तथा अर्थ सम्बन्धी) को धारण करने वाली सहायक क्रियाएँ बुन्देली में दो हैं—ह् तथा हो। दोनों ही पुरुष-वचन-विभेद रखने वाले तिङन्तीय तथा लिंग-वचन-विभेद रखने वाले वर्तमान कालिक कृदन्तीय प्रयोग रखती हैं। 'हो' के भविष्यत् कालिक तिङन्तीय रूप भी उपलब्ध होते हैं।

७. सहायक क्रिया-रूपों का अध्ययन करते हुए हमने उनकी उस प्रकृति (धातु) पर विचार किया जब वह अभिधार्थ (Lexical meaning) को छोड़कर प्रधानतः व्याकरणिक अर्थ (Grammatical meaning) की अभिव्यक्ति करती हैं। साथ में उनके प्रत्ययांशों पर भी आवश्यकतानुसार दृष्टि डालनी पड़ी। अब यहाँ हम उन काल एवं अर्थ द्योतक प्रत्ययांशों की

चर्चा करेंगे जो कि उपर छूट गए हैं या आवश्यकतानुसार उन पर सम्यक् प्रकाश नहीं डाला जा सका है। रूप तथा काल-रचना की दृष्टि से हम बुन्देली क्रिया-पदों को निम्न तीन भागों में विभक्त करके देख सकते हैं —

तिङन्तीय रूप अथवा काल—धातु + पुरुष-वचन-विभेद प्रत्यय
कृदन्तीय रूप अथवा काल - धातु + लिंग-वचन-विभेद प्रत्यय
संयुक्त रूप अथवा काल—धातु + लिंग-वचन-विभेद प्रत्यय + सहायक क्रिया-पद

तिङन्तीय काल

८. **वर्तमान संभावनार्थ**—

इन प्रत्ययांशों की चर्चा सहायक क्रिया ह्- तथा हो- दोनों के सन्दर्भ में ऊपर की जा चुकी है (विषय क्रम ६-१)। व्यंजनान्त धातुओं के साथ ये स्वरान्त रूप में तथा स्वरान्त धातुओं के साथ सम्बन्धित अर्ध स्वरान्त (–औ > –व्, –ऐ > –य्) रूप में परिवर्तित मिलते हैं।

८-१. **आज्ञार्थक**—आज्ञा का प्रश्न मध्यम पुरुष के साथ ही संभव है, इसलिए इसके रूप केवल वचन-भेद ही रखते हैं। प्राप्त सभी प्रत्ययांशों के उदाहरण चार वर्गों में संग्रथित कर सकते हैं—

i)	तू	जा—एक०
	तुम	जाव—बहु०
ii)	तू	जइए—एक०
	तुम	जइयो—बहु०
iii)	तू	जैत—एक०
	तुम	जैव—बहु०
iv)	अपुन	जैबी—बहु०

प्रथम वर्ग के उदाहरण तात्कालिक आज्ञा का अर्थ देते हैं, अतएव इनको **वर्तमान** आज्ञार्थक कह सकते हैं। प्रत्ययांश इस प्रकार हैं—

एक०	बहु०
+	–औ (–व्)

अर्थात् एक वचन में धातु रूप ही प्रयुक्त होता है और बहुवचन में व्यंजनान्त धातुएँ -औ तथा स्वरान्त धातुएँ -व प्रत्यय स्वीकार करती हैं।

द्वितीय वर्गीय प्रयोग बढ़ कर प्रथम वर्ग का स्थान लेते जा रहे हैं।

इनमें आज्ञा का स्थान प्रेमपूर्ण आग्रह ले लेता है। प्रत्ययांश इस प्रकार हैं—

एक०	बहु०
–इए	–इओ

i) दीर्घ स्वरान्त धातुएँ अपने धातु-स्वर को ह्रस्व कर लेती हैं।

ii) मध्यम पुरुष एकवचन सर्वनाम तू (तैं) के प्रयोगों की क्षीणता ने एकवचन के रूपों में भी कमी ला दी है। यथा—

करकैं नेह टोर जिन दइओ, दिन-दिन और बढ़इओ।
जैसें मिलै दूद में पानी, ऊसइँ मनै मिलइयो।।
हमरो और तुमारो जौ जिव, एकइँ जानैं रइओ।
कात ईसुरी बाँय गए की, खबर बिसर जिन जइओ।।[1]

तृतीय वर्गीय प्रयोग विशुद्ध आज्ञार्थक ही हैं, पर वे आगे आने वाले समय में किए जाने वाले कार्य की आज्ञा की सूचना देते हैं, अतएव इन्हें भविष्यत् आज्ञार्थ कहना चाहिए। प्रत्ययांश इस प्रकार हैं—

एक०	बहु०
–इत	–इव

i) इन प्रत्ययांशों का प्रयोग खाँ-क्षेत्रीय है; अन्यत्र द्वितीय वर्गीय प्रयोग ही मिलेंगे।

ii) इन प्रयोगों की तुलना में द्वितीय वर्गीय प्रयोग अधिक विनम्रता द्योतक हैं।

iii) सन्धि-नियम इस प्रकार हैं :—
दीर्घ स्वरान्त धातुओं के –आ एवं –ए स्वर, प्रत्यय के -इ स्वर से मिलकर –ऐ में परिवर्तित मिलते हैं और –ई तथा –ऊ धातु-स्वर क्रमशः –इ और –उ हो जाते हैं, यथा—

जा–	तैं	जैत, तुम जैव
ले–	तैं	लैत, तुम लैव
छू–	तैं	छुइत, तुम छुइव
पी–	तैं	पिइत, तुम पिइव

---

१. गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', ईसुरी प्रकाश, पृष्ठ ५८

चतुर्थ वर्गीय प्रयोग आग्रह के सूचक ही हैं, आज्ञा का भाव नहीं के बराबर है। इसमें कृदन्तीय प्रत्यय की योजना है, इसलिए इसकी चर्चा आगे की गई है।

८-२. **भविष्यत् निश्चयार्थ :—**

भविष्यत् रूपांशों की भौगोलिक सीमाएँ प्रदर्शित करने वाला भाषा-मानचित्र अन्त में दिया गया है। यहाँ उनके भाषा में प्रयुक्त होने वाली सीमाओं की चर्चा की गई है।

खाँ—क्षेत्र

एक०	उत्तम पु०	-इहौं ~ -ह्यौं ~ --हौं
	मध्यम पु०	--इहै ~ --ह्यै ~ --है
	अन्य पु०	--इहै ~ ह्यै ~ --है
बहु०	उत्तम पु०	--इहैं ~ --ह्यैं ~ --हैं
	मध्यम पु०	--इहौ ~ -ह्यौ ~ --हौ
	अन्य पु०	--इहै ~ --ह्य ~ --है

i) सभी व्यंजनान्त धातुएँ द्वितीय वर्गीय रूपांश प्रयोग में लाती हैं, यथा चलह्यों, चलह्यै···। वस्तुत: प्रथम वर्गीय प्रत्यय की -इ-, स्थान-परिवर्तन करके -य्- रूप में परिवर्तित होकर आती है।

ii) प्रथम एवं तृतीय वर्गीय रूपांश वाली धातुएँ एक दूसरे की पूरक (morphologically conditioned) हैं। --आ एवं --ए में अन्त होने वाली कतिपय स्वरान्त धातुएँ प्रत्ययांश के --इ स्वर से मिलकर --ऐ में परिवर्तित हो जाती है। यथा—

मैं जैहौं (=जाऊँगा), मैं खैहौं (=खाऊँगा), मैं लैहौं (=लूँगा), मैं दैहौं (=दूँगा)। ऐहौं (=आऊँगा) और पैहौं (=पाऊँगा) भी आहौं और पाहौं के साथ-साथ कभी सुनने को मिल जाते हैं। अन्यथा शेष धातुएँ तृतीय वर्गीय रूपांश ही रख रही हैं।

कौं--क्षेत्र

व्यंजनान्त तथा स्वरान्त, दोनों ही वर्ग की धातुएँ उपरि परिगणित प्रथम वर्गीय प्रत्यय ग्रहण करती हैं। दीर्घ स्वरान्त धातुएँ अवश्य प्रत्यय जुड़ने पर ह्रस्वान्त हो जाती हैं।

				खोँ--क्षेत्र	
एक०	उत्तम पु०	i --अहौं	ii -हौं	i --औं	ii (--वँ)
	मध्यम पु०	--अहै	--है	--ऐ	(--य्)
	अन्य पु०	--अहै	--है	--ऐ	(--य्)
बहु०	उत्तम पु०	--अहैं	--हैं	--ऐं	(--यँ)
	मध्यम पु०	--अहौ	--हौ	--औ	(--व्)
	अन्य पु०	--अहैं	--हैं	--ऐं	(--यँ)

i) व्यंजनान्त धातुओं में प्रथम वर्गीय तथा स्वरान्त में द्वितीय रूपांशों का योग होता है।

कृदन्तीय काल

९. क्रिया-रचना में काल की अभिव्यक्ति कराने वाले तीन प्रत्यय हैं जो कि कर्त्ता अथवा कर्म से सम्बन्ध रखते हुए लिंग-वचन-विभेद रखते हैं, इन्हीं क्रिया-पदों को कृदन्तीय काल कहा गया है। वस्तुत: ऐतिहासिक दृष्टि से ये रूप क्रिया से बने हुए विशेषण थे जो कि समय की अभिव्यक्ति कराने के कारण क्रिया-पद-रचना के अंग बन गए। सामान्य विशेषण-प्रयोगों से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार हैं :—

उद्देश्यात्मक—चलत बैला खों अरई न गुच्चौ = चलते हुए बैल को अरई मत लगाओ।

विधेयात्मक—बे जात दिखानीं = वे जाती हुई दिखलाई दीं।
बे पढ़े लिखे हैं = वे पढ़े लिखे हैं।
बौ पढ़ो लिखो है = वह पढ़ा लिखा है।

पर, जब 'सोउत बैलवा' (= सोता हुआ बैल), 'बैलवा सोउत है' —इस गठन में आ जाता है, तब उसी को हम वर्तमान कालिक क्रियापद की संज्ञा दे देते हैं।

९-१. —त— सामान्यत: यह प्रत्यय वर्तमानकाल की अभिव्यक्ति कराता है। लिंग-वचन-विभेदक प्रत्ययों की उपस्थिति और अर्ध-उपस्थिति के आधार पर हम इनको निम्न भागों में विभक्त करके देख सकते हैं।

i) पु० एक० —तो   पु० बहु० —ते
स्त्री० एक० —ती   स्त्री० बहु० —तीँ

इस रूप में ये प्रत्यय अपेक्षाव्यंजक (Conditional phrases) यदि......तो के साथ प्रयुक्त होते हैं और भूतकालिक अर्थ की ओर झुकते हैं।

अगर हम हीँसा-बाँट कर लेते तौ=यदि हम हिस्सा कर लेते तो....

बे गारीँ सुनाउतीं पै तुम लौगन नें=वे (औरतें) गाना सुनातीं पर तुम लोगों ने....

तैं अब लौं लौट आउतौ, अकेलैं जातों भर=तू अब तक लौट आता पर जाता तो।

ii) पु० एक० –तु   पु० बहु०—त
स्त्री० एक० –ति   स्त्री० बहु०—तिँ

ये प्रत्यय-रूप प्राचीन हिन्दी साहित्य में प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं, पर बुन्देली शब्दों की प्रवृत्ति ह्रस्व स्वरान्त नहीं है, अतएव सभी रूपों के अन्त में केवल –त ही रह गया। स्त्री० बहु० के रूप अवश्य यदा-कदा –तीँ रूप में सुन पड़ते हैं जिनकी –इ की सुरक्षा अतिरिक्त बल देकर की गई है। (देखिए, संज्ञा विषय-क्रम ४)।

मुलक की मौँड़ीँ आउतीँ ~ आउत=बहुत-सी लड़कियाँ आतीँ।

वे लुगाईँ आउत-जात रहतीँ ~ रहत =वे स्त्रियाँ आती-जाती रहती हैं। परन्तु प्राचीनता की सुरक्षा करने वाले लोक सहित्य में—

ऐसी घनी आउतीँ-जातीँ गैल मिलै न चीरें।[1]

अँखियाँ जब काऊ सें लगतीं, सब सब रातन जगतीं।
झपतीं नईं झींम न आवै, कां उसनीदें भगतीं॥
बिन देखे सें दरद दिमानी, पके खता सी दगतीं।
ऐसौ हाल होत है 'ईसुर' पलकन पलतर दबतीं॥[2]

६-१. इन प्रत्ययों के साथ धातु-रूपों में कुछ परिवर्तन भी आवश्यक है, जिन्हें हम निम्न प्रकार व्यवस्थित कर सकते हैं।

i) सभी व्यंजनान्त धातुएँ –अ– स्वर विकरण रूप से स्वीकार करती हैं, यथा—

चाल् + अ + त = चालत (सामान्य)
खब् + अ + त = खबत ह्रस्वीकृत)

---

१. **गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', ईसुरी प्रकाश, पृष्ठ ४४**
२. **वही, पृष्ठ २२**

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि –ई तथा –ऊ में अन्त होने वाली स्वरान्त धातुएँ क्रमशः –इय्– तथा –उव्– में परिवर्तित हो जाती हैं और फिर स्वभावतः –अ– विकरण स्वीकार करती हैं। यथा—

पी– पियत

छू– छुवत

ii) स्वरान्त धातुएँ—मूल एवं यौगिक—(खा, जा आदि कतिपय अपवादों को छोड़कर) जिन्हें विषय-क्रम ३-५ में –व् में अन्त होने वाला सिद्ध किया जा चुका है, अपना –व, –उ में परिवर्तित कर लेती हैं। यथा—

रोव् + त = रोउत

खबाव् + त = खबाउत

iii) –ह् में अन्त होने वाली व्यंजनान्त धातुओं का धातु-स्वर अधिकांशतः –आ, –ओ अथवा –अ है। अन्तिम वर्ग की धातुएँ –अ विकरण तथा शेष, स्वरान्त धातुओं की तरह रूप-रचना रखती हैं, यथा—

कह् + अ + त = कहत (कअत, कात)

नह् + अ + त = नहत

दोह् + उ + त = दोहुत (दोउत)

चाह् + उ + त = चाहुत (चाउत)

iv) गुना-क्षेत्र में धातुएँ किसी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार नहीं करतीं, यथा—

कर्त = करता

पीत = पीता

करात = कराता

९-२. इस प्रत्यय से बने क्रिया-पदों की आवृत्ति से कार्य की अपूर्णता का भी बोध होता है। ये रूप कर्त्ता के विधेयात्मक विशेषण बनकर आते हैं।

मैं खात-खात थक गओ = मैं खाते-खाते थक गया

ऊ रोउत-रोउत आओ = वह रोते-रोते आया

९-३. वस्तुतः ये कृत प्रत्यय क्रियार्थी संज्ञा-रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। इनसे बने रूप पु० में घर तथा स्त्री० में बात की तरह रूप-रचना रखते हैं, अर्थात्

वि० एक० –त बहु० –तन

ऊ मोए खात मैं आ गओ = वह मेरे खाने (खाते समय) में आ गया

ऊ मोए खातन मैं आ गओ = वह मेरे खाने (खाते समय) में आ गया

बहुवचनान्त प्रयोगों का बाहुल्य है।[1]

९-४. प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य[2], बुन्देली-लोक-साहित्य[3] तथा खों-क्षेत्र के उत्तरी भाग में इस –त प्रत्यय से युक्त एक तीसरे प्रकार के रूप भी उपलब्ध हो रहे हैं। ये वर्तमानकालिक अभिव्यक्ति के ही द्योतक हैं, यथा—

जा बात सुनियत = यह बात सुनते हैं (सुनी गई है)
जौ काम करियत = यह काम करते हैं (किया जाता है)
अभइँ खइयत = (हम) अभी खाते हैं।
कइयाँ चढ़ जइयत = (हम) गोदी में चढ़ जाते हैं।

इन प्रयोगों में हमें 'भावे प्रयोग' की गन्ध मिलती है। यहाँ सुनने, करने, खाने और जाने की क्रियाओं पर बल दिया गया है, कर्त्ता की सत्ता गौण है। कर्त्ता यहाँ केवल 'हम' ही उपलब्ध होता है। ब्रज साहित्य में अवश्य कर्त्ता के पुरुष की अनेकरूपता है, यथा—

रहिमन करुए मुखन को चहियत यही सजाय—

---

१. लरकन संग हँसत खेलत मैं, ढील आइयत गइयाँ।
ज्वानी मैं बाहर कौं कढ़तन, सब घर होत लरइँयाँ॥ ईसुरी प्रकाश, पृष्ठ ४२.
चलतन परत पैजना छनके, पाँउन गौरी धन के।
सुनतन रोम रोम उठ आउत, धीरज रहत न तन के॥ ईसुरी प्रकाश, पृष्ठ ४४
पतरे सोंने कैसे डोरा, रजउ तुमारे पोरा।
बड़ी मुलाम पकरतन, धरतन, लग न जाय मरोरा॥ ईसुरी प्रकाश, पृष्ठ ३४

२. मदन गुपाल मधुपुरी हू तजि, सुनियत अनत सिधारे।
पं० किशोरीदास बाजपेयी, ब्रजभाषा व्याकरण, पृष्ठ १९६

३. सब सैं भली बैस लरकइयाँ, दैयं न रओ गुसइंयाँ।
हँस लिपटाय सबई सैं बोलत, चढ़ जइअत ते कइंयाँ॥
लरकन संग हंसत खेलत मैं, ढील आइयत गइंयां।
ईसुरीप्रकाश, पृष्ठ ४२

यहाँ 'यही सजाय' कर्त्ता के रूप में प्रयुक्त है । निस्सन्देह ये कर्मवाचीय अथवा भाववाचीय प्रयोग हैं और इन रूपों के –इय– अंश का सम्बन्ध संस्कृत के कर्मवाचीय प्रत्यय –इय– यथा दीयते, क्रियते से जान पड़ता है । इस प्रकार 'चलिअ', करिअ, आधारों में ही –त प्रत्यय जुड़कर ये रूप बने हैं । वस्तुतः वर्तमान बुन्देली में ये रूप समाप्त होने के मार्ग में हैं और उनके स्थान पर कर्तृवाचीय रूपों का प्रयोग सुलभ है, यथा—

हम जाँ बात सुनत = हम यह बात सुनते हैं ।
हम जौ काम करत = हम यह काम करते हैं ।

ऐसा जान पड़ता है कि विनयार्थी अथवा आज्ञार्थी रूपों, यथा—सुनियो, अइयो, आइए, आदि में भी यही संस्कृत कर्मवाचीय –इय– प्रत्यय है ।

१० –ओ– यह भूतकालिक अर्थ की अभिव्यक्ति कराता है । विश्लेषण से जान पड़ता है कि इन पदों में प्रत्यय तो शून्य ही है; –ओ (पु० एक०) –ई (स्त्री० एक०), ए (पु० बहु०) ईं (स्त्री० बहु०) प्रत्यय तो लिंग-वचन-द्योतक प्रत्यय हैं; जिनकी चर्चा स्थान-स्थान पर की जा चुकी है ।

१०-१. निम्न अपवादों को छोड़कर सभी स्वरान्त एवं व्यंजनान्त धातुएँ बिना किसी परिवर्तन के लिंग-वचन-द्योतक प्रत्ययों के साथ प्रयुक्त होती हैं; यथा—

√खा	खाओ,	खाई,	खाए	खाईं
√कर	करो	करी	करे	करीं
√खब्	खबो	खबी	खबे	खबीं
√कह्	कहो	कही	कहे	कहीं

अपवाद—i) √जा धातु का धात्वादेश –ग– है : यथा—
गओ, गई, गए, गईं

ii) –ई तथा –ऊ में अन्त होने वाली धातुएँ क्रमशः –इय्, –उव् में परिवर्तित होती हैं, यथा—

√पी—पियो (पिओ), पियी (पिई), पिये, (पिए) पियीं (पिईं)
√छू—छुओ (छुवो), छुई, छुए, छुईं

iii) ले और दे धातुओं का तथा –ऐ में अन्त होने वाली धातुओं के धातु-स्वर –अय् में परिवर्तित हो जाते हैं, पर अन्तिम –य् श्रुति सुनाई नहीं देती । इस प्रकार—

√ले	लओ,	लई,	लए,	लईं
√दे	दओ,	दई	दए	दई
√बै	बओ	बई	बए	बईं
√पै	पओ	पई	पए	पईं

११. भूतकालिक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए कतिपय धातुएँ अपना अलग प्रत्यय –न– रखती हैं। इनके भी लिंग-वचन द्योतक प्रत्यय वही हैं—अर्थात् —ओ, ई, ए, ईं। इस प्रत्यय से बने हुए कुछ क्रिया-रूप कर्तृवाची और कुछ कर्मवाचीय हैं—

कर्तृ०	ऊ चिल्लानो = उसने जोर से आवाज की
	ऊ खिन्स्यानो = वह नाराज हुआ
	ऊ डिरानो = वह डर गया
	ऊ मुस्क्यानो = वह मुस्कराया
	बा बतानी = उसने बात की
	बा चिमानी = वह चुप हो गई
	बे रिसाने = वे रूठ गए
कर्म०	गइया पल्हानी = गाय का दूध नीचे उतरा
	हिन्ना दिखाने = हिरन दिखाई दिए
	अवाज सुनानी = आवाज सुनाई दी
	दार बढ़ानी = दाल समाप्त हो गई
	मूड़ पटानो = सर-दर्द कम हुआ
	दूध सिरानो = दूध ठण्डा हो गया
	रुपइया सेर बिकानी = रुपए की सेर भर बेंची गई

१२. भविष्यत्कालिक अर्थ की अभिव्यंजना के लिए कुछ क्षेत्रों में (परिशिष्ठ, भाषा मानचित्र) --ग-- प्रत्यय जोड़ा जाता है। इस प्रत्यय की प्रकृति अन्य कृदन्तीय प्रत्ययों से भिन्न कही जा सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य उपर्युक्त प्रत्ययों के सदृश यह लिंग-वचन द्योतक प्रत्यय है, पर यह प्रत्यय सीधे धात्वंश में न जुड़कर तिङन्तीय पदों (धातु + तिङन्तीय प्रत्यय) में जुड़ता है। ऐसा जान पड़ता है कि आधुनिक आर्य भाषा-युग तक यह कोई स्वतंत्र पद था जो ऐतिहासिक विकास-प्रक्रियावश परम्परागत तिङन्तीय पदों में घुलमिल गया है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार भाषा की कुछ अन्य सहायक क्रियाएँ इस विकास क्रम की ओर अग्रसर हो रही हैं, यथा—

जात + हतो = जात्तो (बुन्देली)
जातु + है = जात्वै (ब्रज)

ऐतिहासिक भूमिका के साथ इस प्रत्यय को अच्छी तरह समझा जा सकता है। संस्कृत में इस अर्थ में --स्य--(--इष्य--) मध्य प्रत्यय रहता था। वस्तुतः यही --इह-->--अह--(--ah--)>० (zero) [मध्यमवर्त्ती --ह-- के लोप से] होता हुआ विलुप्त हो गया और अब केवल संस्कृतयुगीन तिङन्तीय प्रत्ययों के अवशेष ही शेष रह गए हैं। यथा—

√कर

एक०	उत्तम	करिहों	>*करहौं + गो	>*कर्हौंगो	>करौंगो
	मध्यम	करिहै	>*करहै + गो	>*कर्हैगो	>करैगो
	अन्य	करिहै	>*करहै + गो	>*कर्हैगो	>करैगो
बहु०	उत्तम	करिहैं	>* करहैं + गे	>*कर्हैंगे	> करैंगे
	मध्यम	करिहौ	>*करहौ + गे	>*कर्हौगे	> करौगे
	अन्य	करिहैं	>*करहैँ + गे	>*कर्हौँगे	> करैंगे
एक०	उत्तम	*जाइहों	>*जाहौं + गो	>*जाऔंगो	>जाउँगो
	मध्यम	*जाइहै	>*जाहै + गो	>*जाऐगो	>जायगो
	अन्य	*जाइहै	>*जाहै + गो	>*जाऐंगो	>जायँगो
बहु०	उत्तम	*जाइहैं	>*जाहैँ + गे	>*जाऐंगे	>जायँगे
	मध्यम	*जाइहौ	>*जाहौ + गे	>*जाऔगे	>जावगे
	अन्य	*जाइहैं	>*जाहैं + गे	>*जाएँगे	>जायँगे

संस्कृत में भविष्यत् तथा वर्तमान कालिक निश्चयार्थ के रूपों के तिङन्तीय प्रत्यय समान थे। आधुनिक युग तक आते-आते भविष्यत् का --स्य-- जब विलुप्त हो गया तो दोनों पद-रूपों में भेद कर पाना असंभव था। भाषा ऐसे श्लेषार्थी (Homonymic) रूपों का वहिष्कार करती रहती है। परिणामतः अर्थ की सुरक्षा के लिए पुराने भविष्यत् कालिक रूपों ने अपने साथ सं० गतः से विकसित— गो, गी, गे आदि रूपों को सहायक क्रिया की भाँति अपना लिया होगा जो धीरे-धीरे उक्त रूपों के अभिन्न अंग बन गए। 'मुबारक' का निम्न प्रयोग हमारे निष्कर्ष की पुष्टि करता है —

मैं कह्यो, रंग न फाबिहैगो, कह्यो फाबिहै, लागैं मुबारक अंग हैं

वस्तुतः जिस समय 'फाबिहै' से 'फाबै' होने लगा होगा, उसी समय भ्रम-निवारण के लिए –गो जुड़ा होगा, परिणामतः कुछ समय तक फाबिहैगो और फाबैगो

साथ-साथ चलते रहे होंगे। संभव यही है कि पहले ये —गो आदि रूप क्रिया-पदों में सहायक रूप में ही प्रयुक्त हुए होंगे, पर अब इनको सहायक क्रिया रूप में स्वीकार करना संभव नहीं है। ये दोनों मिलकर एक क्रियापद बनाते हैं।

यह–गो बुन्देली भाषा के लिए एक अभिनव प्रवृत्ति (innovation) है। जैसा कि परिशिष्ट के भाषा-मानचित्र में स्पष्ट किया गया है, ३०-४० मील की यह पट्टी उत्तर से दक्षिण समस्त पश्चिमी क्षेत्र में पाई जाती है। इसका सांस्कृतिक तथा सैनिक अभियानों के सुप्रसिद्ध मार्ग पर पाया जाना बतला रहा है कि यह कौरवी की ही प्रवृत्ति है जो कि व्रज को रौंदती हुई यहाँ तक बढ़ आई है। स्वरमध्यवर्ती –ह– के लोप ने इसके विकास में सहयोग दिया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कुरु, व्रज, पंचाल क्षेत्र में यह–गो (–गा) वर्तमान पर भी अधिकार जमा रहा है यथा : भइया घर में हैंगे=भाई घर में हैं। परिनिष्ठित हिन्दी में पिछले बीस वर्षों से यह–गा, कीजिए, पीजिए आदि विध्यर्थक पदों में भी लग रहा है। वस्तुतः भाषा के आन्तरिक गठन में तथा बोली क्षेत्रों में यह–गा प्रवेश पाता जा रहा है। वर्तमान के क्षेत्र में घुसने का कारण मुझे यह जान पड़ता है कि ध्वनि–क्षीण 'है' जो कि ऐ रूप में विकसित होकर क्रियापाद से संश्लिष्ट (यथा जास्वै) होने की प्रवृत्ति अपनाने जा रहा था, अपनी सुरक्षा के लिए—गा को समेट लेता है।

भूतकालीन–गा ही क्यों अपनाया गया, यह एक प्रश्न हो सकता है। कोई समुचित समाधान तो नहीं पर, एक उत्तर हो सकता है। जिस प्रकार व्रजभाषा में ष ध्वनि नहीं थी जब कि वर्णमाला में वर्ण था, दूसरी ओर भाषा में ख वर्ण रव (=आवज) रूप में पढ़ा जा कर भ्रम उत्पन्न कर रहा था; इसलिए निष्क्रिय ष वर्ण को ख ध्वनि के लिए प्रयोग किया जाने लगा। ठीक इसी प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि गा (गतः > गअ > गा) गयौ, गया, गवा आदि आ जाने पर निष्क्रिय हो गया होगा जब कि दूसरी ओर श्लेषार्थी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इसलिए भाषा ने इस–गा को समेटकर काम चलाया होगा। वस्तुतः बहुलता से प्रयुक्त होने वाली क्रियाएँ–है, हो (काल, अर्थ के लिए), जाना (कर्मवाचीय अर्थ केलिए) करना (पूर्वकालत्व के लिए) इसी प्रकार व्याकरणिक अर्थों के लिए पकड़ ली गई हैं। अर्थ की महत्ता इतनी अधिक नहीं है, संयुक्तक्रियाओं के सन्दर्भ में इसे जाना जा सकता है। मार

खाना, पैसा खाना में खाने का तथा बेवकूफ बनाने में बनाने की कौन सी क्रिया स्पष्ट है।

संयुक्त काल

१३. कार्य की पूर्णता–अपूर्णता तथा भिन्न-भिन्न अर्थों (moods) की अभिव्यक्ति के लिए भाषा ने संयुक्त क्रिया-रूपों की योजना अपनाई है। ऊपर चर्चित कृदन्तीय रूप –त तथा शून्य (विषय-क्रम ६, १०) तथा सहायक क्रियाएँ (विषयक्रम ५, ६) मिलकर इस वर्ग की पूर्ति करती हैं। इन पदों को हमने संयुक्तकाल कहा है। ये रूप संयुक्त क्रियाओं से भिन्न हैं तथा दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं—

वर्तमानकालिक –त् + सहायक क्रिया
भूतकालिक –०– + सहायक क्रिया

ये पुनः दो रूपों में विभक्त हैं—

(अ) i) –त + √ह··· (तिङन्तीय प्रत्ययों सहित) अपूर्ण वर्तमान

ii) –त + √ह-त– (लिंग-वचन-द्योतक प्रत्ययों सहित) अपूर्ण भूत

iii) –त + √हो-त– (लिंग-वचन-द्योतक प्रत्ययों सहित) अपूर्ण संदिग्ध भूत (Conditional)

iv) –त + √हो-ह– (तिङन्तीय प्रत्ययों सहित) अपूर्ण भविष्यत्

v) –त + √हो-य (तिङन्तीय प्रत्ययों सहित) अपूर्ण संदिग्ध भविष्यत्

(ब) i) –०– + √ह-···(तिङन्तीय प्रत्ययों सहित) पूर्ण वर्तमान

ii) –०– + √ह-त···(लिंग-वचन-द्योतक प्रत्ययों सहित) पूर्ण भूत

iii) –०– + √हो-त–(लिंग-वचन-द्योतक प्रत्ययों सहित) पूर्ण संदिग्ध भूत

iv) –०– + √हो-ह— (अपने तिङन्तीय प्रत्ययों सहित) पूर्ण अनुमानित भूत

v) –०— + √हो-य (तिङन्तीय प्रत्ययों सहित) पूर्ण भूत

क्रियार्थक संज्ञाएँ एवं विशेषण

[Infinitives & Participles]

१४. एकाधिक स्थानों पर कहा जा चुका है कि संस्कृत धातुओं में अनेकानेक कृत प्रत्यय जुड़ते थे और जिनसे बने हुए शब्द भाषा में संज्ञा, विशेषण आदि रूपों में व्यवहृत होते थे तथा अन्य प्रातिपदिकों की तरह लिंग-वचन एवं कारकीय विभक्तियाँ धारण करते थे। भाषा-प्रवाह में अवशिष्ट विभक्ति-प्रत्यय सहित संज्ञा रूपों को जिस प्रकार मूल एवं विकारी रूपों की संज्ञाएँ दी गई थीं, उसी प्रकार इन रूपों को भी मूल एवं विकारी—इन दो रूपों में व्यवस्थित किया जा सकता है, पर कहीं-कहीं इनके अतिरिक्त एकाध रूप और उपलब्ध हो जाते हैं; साथ ही, विकारी रूपों के साथ परसर्गों का प्रयोग अनिवार्य नहीं।

१५. क्रियार्थक संज्ञाओं के निर्माण में तीन प्रत्यय प्रधान हैं i –ब—ii)–न–iii) –०– (शून्य)। ये सभी मूल अथवा यौगिक धातुओं में जुड़ते हैं।

ब— इससे बने क्रिया-पद केवल एक वचन में ही उपलब्ध हैं। सभी कारक-सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए इनका प्रयोग बहुलता से होता है—

	एकवचन	बहुवचन
मूल	–बो	+
विकारी	–बे	+

-ब्रो घूमब्रो अच्छो होत = घूमना अच्छा होता है
मैं पैरबो सीकत = मैं तैरना सीखता हूं

-बे मोय खाबे मैं काए कौ सँकोच = मुझे खाने में किस (बात) का संकोच
मोय खाबे खों जानैं = मुझे खाने के लिए जाना है
जादाँ खाबे सैं पेट बिगर गओ = अधिक खाने से पेट खराब हो गया
कौनउँ खाबे की चीज ल्याव = कोई खाने की चीज लाओ
तोए खाबे नैं काम बिगार दओ = तेरे खाने ने काम बिगार दिया
खाबे के नानैं ल्याव = खाने के लिए लाओ

खाँ-क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र संयुक्त- क्रिया पदों के प्रथम अवयव के रूप में भी इनका प्रयोग होता है; यथा—

बौ सुन्बे लगो = वह सुनने लगा
बौ खाबे आउत = वह खाने (के लिए) आता है

इस प्रत्यय से मूलतः सम्बन्धित दो रूप और भी उपबब्ध हैं— –बू, –बी। इन्होंने भाषा में कुछ भिन्न अर्थ विकसित कर लिया है।

–बू की दो प्रयोग स्थितियाँ हैं, साथ ही इसका प्रसार-क्षेत्र मध्यवर्ती बुन्देली तक ही सीमित है—

i) कर— क्रिया पदों के साथ संयुक्त क्रिया पद के प्रथम अवयव के रूप में।

परबू करै दूध पीबे कौं, सास के संगै सइँयाँ

'परबू' के साथ वैकल्पिक रूप में 'परबो' और 'परो' पदों का प्रयोग भी संभव है, यथा—

भर-भर देवो करै दूर सैं, देखत हमें तरइँयाँ

निस्सन्देह परो > परू, आओ > आऊ आदि रूपों की तरह परबो' ही 'परबू' रूप में विकसित हुआ होगा।

ii) श्रोता तथा वक्ता दोनों को समेटने वाले (inclusive) सर्वनाम-रूपों के साथ भविष्यत् काल की अभिव्यंजना करने के लिए :—

अपुन-तपुन नुमास देखबे चलबू = हम-तुम नुमायश देखने चलेंगे।

हम-तुम तला की ढी पै घूम्बू = हम-तुम तालाब की पार पर घूमेंगे।

-बी— ये प्रयोग खाँ क्षेत्र तक ही सीमित हैं। ये उत्तम पुरुष बहुवचन कर्त्ता के साथ भविष्यत् निश्चयार्थ तथा मध्यम पुरुष बहुवचन कर्त्ता के साथ भविष्यत् आज्ञार्थ (विनयार्थ) की अभिव्यक्ति कराते हैं; यथा :

हम काम करबी = हम काम करेंगे
अपुन चिठिया जरूर कर कैं लिखबी = आप पत्र अवश्य लिखना
अपुन बरात में अवस कैं आबी = आप बरात में अवश्य आना

भविष्यत् कालिक इस –ब– को विकास देने वाले संस्कृत —तव्यत् (सं० कर्त्तव्य = करने योग्य = करना चाहिए, दातव्य = देने योग्य = देना चाहिए) के अर्थ-विकास-क्रम को गोरखनाथ के पद्यों में छमिबा = क्षमा करना चाहिए, करिबा = करना चाहिए, से प्रारम्भ होकर तुलसी (१६वीं सदी) एवं बिहारी (१७वीं) के प्रयोगों से स्पष्ट किया जा सकता है।

दारिका परिचारिका करि पालबी करुनामयी[1]

=हे करुनामय राम ! हमारी विनय है कि पुत्री सीता को दासी रूप में स्वीकार कर पालन करें अर्थात् पालन करना चाहिए ।

मेरियौ सुधि द्यायबी कछु करुन कथा चलाइ[2]

=करुणा मिश्रित कथा के साथ आप हमारा स्मरण दिलाएँ अर्थात् दिलाना चाहिए ।

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखबी मुरारि[3]

=हे मुरारि ! हमें देखना है अर्थात् हम देखेंगे कि आपका बड़प्पन किस प्रकार सुरक्षित रह सकेगा ।

इस प्रकार 'तव्यार्थी' रूप 'योग्य', 'चाहिए' होते हुए भविष्यत् कालीन बने हैं ।

१६. –न– इस प्रत्यय से बनी हुई न जाने कितनी संज्ञाएँ भाषा में प्रयोग में आ रहीं हैं । खान-पान, लेन-देन आदि भाववाचक संज्ञाएँ तो हैं ही, जाति-वाचक संज्ञाएँ भी हैं । जैसे—छजना=छानने वाला, खदना=खोदा हुआ गड़ा आदि, पर यहाँ इस प्रत्यय से बने उन क्रिया-पदों से तात्पर्य है जो रूप-रचना में तो संज्ञाएँ हैं, पर कार्य क्रिया का कर रही हैं । इस प्रत्यय को भी हम संज्ञाओं की तरह मूल एवं विकारी रूपों में व्यवस्थित कर सकते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
मूल	नैं	+
विकारी	न	+

हिन्दी में इस स्थान पर -ना और -ने तथा ब्रजी में -नौं और —न प्रत्यय मिलते हैं । मूल रूप है तथा हो क्रिया-पदों के सम्पर्क में प्रयुक्त होता है जिनमें वास्तविक कर्त्ता, कर्म के परिधान में मिलता है । यथा—मोहें जानैं हैं । वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से यहाँ 'जानैं' रूप ही कर्त्ता है और 'मेरे द्वारा जाने का काम होना है' इस अर्थ में उक्त वाक्य का संगठन हुआ है । विकारी रूप का प्रयोग संयुक्त-क्रिया-पद रचना में ही संभव है । सहायक

१. तुलसी, रामचरितमानस—बालकाण्ड, दोहा ३२५-३२६
२. तुलसी, विनय-पत्रिका—पद संख्या ४१
३. संपादक, जगन्नाथ रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, दोहा ३१

क्रियाएँ विशेष रूप से जो इस प्रत्यय से बने क्रिया-पदों के पश्चात् प्रयोग में आती हैं;—लग, जा, आ, दे, आदि हैं।

यथा—

ऊ जान लगो = वह जाने लगा
ऊ लेन आउत = वह लेने आता है
ऊ खान जात = वह खाने जाता है
ऊ सोउन देत = वह सोने देता है

इस –न के पूर्व आने वाले विकरण सम्बन्धी नियम ठीक वे ही हैं, जिनकी चर्चा –त के साथ ऊपर की जा चुकी है।

नैं– यह प्रत्यय मूल तथा यौगिक, दीर्घ तथा ह्रस्वीकृत—सभी धातुओं में जुड़ता है; यथा—

हमें माता पूजनैं हैं = हमको शीतला माई पूजना है।
माता पुजनैं हैं = माता पूजी जानी हैं।
हमें माता पुजवावनैं है = हमको माता पुजवानी हैं।

दूसरे इस प्रत्यय से बने क्रियार्थी पद में यदि कर्त्ता, वाक्य में प्रयुक्त नहीं है; यथा—सबकैं जानैं परत = सबके यहाँ जाना पड़ता है; तो उसे विकारी रूप में अधिकृत रखते हैं; यथा—

मोय जानैं हैं = मुझे जाना है
हमें जानैं है = हमको जाना है
रमेश खों जानैं है = रमेश को जाना है

उपर्युक्त उदाहरणों से जान पड़ता है कि क्रिया-विशेष पर बल दिया गया है, कर्त्ता (doer) तथा कर्म (object) पर नहीं।

खों-क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रकार के प्रयोग भी उपलब्ध हो रहे हैं; यथा—

हमें आँगित पंडित नेहरू खों बुलावनैं =
हम आगे की साल पं० नेहरू को बुलायेंगे।
हमें जानैं = हम जाएँगे

इन उदाहणों से तो ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत का अनीयर् प्रत्यय भी ठीक तव्यत् की भाँति भविष्यार्थ की ओर बढ़ रहा है।

१७. क्रियार्थक संज्ञा का एक तीसरा वर्ग है जिसका कृदन्तीय प्रत्यय शून्य कहा जा सकता है। संभव है, भूतकालिक शून्य कृदन्त ही एक भिन्न अर्थ में

विकसित हो गया हो। ये क्रिया-पद भी मूल एवं विकारी, इन दो रूपों में व्यवस्थित किए जा सकते हैं। यथा—

	एकवचन	बहुवचन
मूल	खाओ	+
विकारी	खाए	+

मूल रूप का प्रयोग संयुक्त-क्रिया-पद-रचना तक ही सीमित है। कुछ प्रयोग दृष्टव्य हैं —

मुहैं खाओ आउत =मुझे अब खाया ही आता है।
हमैं खाओ आउत =हमें अब खाया ही आता है।
बाय जाओ चइए =उसे जाना चाहिए।
बिनैं जाओ चइए =उन्हें जाना चाहिए।

यहाँ स्पष्ट है कि समसामयिक दृष्टि से यह भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय–शून्य से अर्थ भिन्न रखने वाला प्रत्यय है क्योंकि भूतकालिक रूप 'गओ' बनता है, 'जाओ' नहीं।

ऊ खेलो चाउत = वह खेलना चाहता है।
वे खेलो चाउत = वे खेलना चाहते हैं।
बौ जाओ करत = वह जाया करता है।
वे जाए करत = वे जाया करते हैं।

विकारी रूप का विभक्ति-प्रत्यय अनुनासिक एवं निरनुनासिक दोनों ही रूपों में प्रयुक्त मिलता है। यथा—

खाए सैं काम बिगरजैहै=खाने से काम बिगड़ जाएगा
खाँयँ सैंकाम बिगर जैहै=खाने से काम बिगड़ जाएगा

ध्वनि-विचार अध्याय विषय-क्रम ५ में स्पष्ट किया जा चुका है कि ए अनुनासिक होने पर ऐँ हो जाता है और यह भी भाषा का संधि-नियम है कि पूर्व भाग में दीर्घस्वर होने पर 'ऐ' तथा औ अर्धस्वर य, व में बदल जाते हैं (विषय-क्रम ६-१)। अनुनासिक एवं निरनुनासिक रूपों का वैकल्पिक प्रयोग बुन्देली-लोक-साहित्य में प्रचुरता से मिल सकेगा। यथा—

ऐसे नर के ईसुरी जस गंगा कौ होवै[1]

× × ×

इतनउ भौत होत है, ईसुर मरैं जिऐँ पछतैहै[2]

१. ईसुरी प्रकाश, पृष्ठ ४२,

२. ईसुरी प्रकाश पृष्ठ ४६

विकारी रूपों के साथ परसर्गों का प्रयोग अनिवार्य सा है। वस्तुतः लगभग सभी कारक सम्बन्ध— कर्त्ता से लेकर अधिकरण तक —इन विकारी रूपों के सहयोग से प्रकट किए जा सकते हैं। यथा—

ऊ के हँसैं नैं काम बिगार दओ = उसके हँसने ने काम बिगाड़ दिया।

ऊ के हँसैं सैं काम बिगर गओ = उसके हंसने से काम बिगड़ गया

ऊ के बुलाँयँ को ठेकौ मैंने नइँ लओ = उसके बुलाने का ठेका मैंने नहीं लिया।

खायँ मैं काए की सोच-सरम = खाने में किस बात की लज्जा।

मैं काम करैं खों आओ हों = मैं काम करने को आया हूं।

यह बात उल्लेखनीय है कि बुन्देली के मध्य क्षेत्र में इन विकारी रूपों का स्थान विकारी –बे रूप लेते जा रहे हैं।

१८. क्रियार्थक संज्ञा के एक चौथे प्रकार के रूप भी परिगणित किए जा सकते हैं। ये रूप ध्वनि-सम्पत्ति में क्रिया के धातु-रूप से समानता रखते हैं। यथा—

हमैं खेल आउत = हमको खेलना आता है।

हमैं खाना बना आउत = हम खाना बनाना जानते हैं।

हम इन प्रयोगों को पूर्वकालिक प्रयोगों से भिन्न-रूप में स्वीकार कर सकते हैं; क्योंकि पूर्वकालिक प्रयोग का गठन उद्देश्यात्मक (Subjectival) होता है, जबकि उपर्युक्त प्रयोग विधेयात्मक गठन (objectival) लिए हुए हैं; यथा—

ऊ खेल आउत = वह खेलकर आता है।

ऊ खाना बना आउत = वह खाना बनाकर आता है।

१९. क्रियार्थक विशेषण (participles) की सम्यक् चर्चा ७–२. में की जा चुकी है। यहाँ दो प्रत्यय-रूपों की चर्चा अभीष्ट है।

i) क्रियार्थक संज्ञा का विकारी रूप –ऐं, के बाद परसर्गों का अभाव रहता है। ये प्रयोग संयुक्त-क्रिया पद रचना में सहायक होते हैं। यथा—

जे मौड़ा खाँयँ जात = ये लड़के परेशान करते हैं।

जौ मोड़ा खाँयं लेत = यह लड़का परेशान करता है

तुम हँसैं जाव = तुम हँसे जाओ।

मैं उऐ बुलाऐं आउत = मैं उसे बुलाए लाता हूं।

ii) इसी से सम्बन्धित एक कारण-सूचक-कृदन्त का प्रयोग भी है, जो कि स्वयं परसर्ग रूप धारण करता जाता है। यथा—

ऊ के मारैं हम कउँ नइँ जा पाउत = उसके कारण हम कहीं नहीं जा पाते।
घोड़ा मारैं ऊ आ पौंचो = घोड़ा दौड़ाए वह आ पहुंचा।

२०. किन्हीं दो क्रिया-पदों का यदि एक ही कर्त्ता है, तो पहले की हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। इस क्रिया-पद की रचना के आधार दो हैं—मात्र धातु रूप; धातु + परसर्ग रूप—कैं। प्रथम आधार संयुक्त-क्रिया-पद रचना में ही दिखाई देता है, दूसरे का प्रयोग व्यापक है।

प्राचीन बुन्देली में पूर्वकालिक कृदन्त का संश्लिष्टात्मक प्रत्यय —इ (व्यंजनान्त धातुओं में) तथा —य (स्वरान्त धातुओं में) जुड़ता था जो कि आज़ भी यत्र तत्र वैकल्पिक रूप में —आ धातु से बने क्रिया पद से संयुक्त होने पर परिलक्षित किए जा सकते हैं। यथा—

ऊ कर याओ = करि + आओ, वह करके आ गया

'हो' धातु से बने दो पूर्वकालिक कृदन्त रूप विश्लेषण की अपेक्षा रखते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं—

ऊ छत होनीं ~ होरीं निकर गओ = वह छत होकर निकल गया।

हो + नीं = यहाँ -नीं —संभवतः राजस्थानी –कन का अवशेष है। तथा—

हो + रीं = यहाँ -रीं– निस्सन्देह पूर्ववर्ती ब्रज-हिन्दी का 'करि' का अवशिष्ट रूप है। करि के प्रथम व्यंजन लोप ने –रीं तथा द्वितीय व्यंजन लोप ने—कैं रूप प्रदान किया है।

२१. ऊपर धातुओं का विभाजन करते हुए हमने उन्हें दो वर्गों में विभक्त किया था—मूल एवं यौगिक। प्रथम वर्ग को पुनः सामान्य एवं ह्रस्वीकृत, इन दो भागों में बाँट दिया था। अभी तक क्रिया-पद-रचना से सम्बन्धित जिन विभक्ति एवं कृदन्तीय प्रत्ययों की चर्चा की गई है, वे अधिकांशतः सामान्य धातुओं में ही जुड़कर विभिन्न काल एवं कृदन्तीय रचना में समर्थ होते हैं। पर ह्रस्वीकृत मूल एवं यौगिक धातुओं में वे सभी विभक्ति एवं कृदन्तीय प्रत्यय जुड़कर एक भिन्न अर्थ की अभिव्यंजना कराते हैं, जिन अर्थों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

१. कर्मवाचीय एवं भाववाचीय (Passive and Reflexives) मूल ह्रस्वीकृत धातुओं में सभी विभक्ति एवं कृदन्तीय प्रत्ययों के योग से इन रूपों की निष्पत्ति होती है।

२. प्रेरणा रूप (Causatives) मूल ह्रस्वीकृत धातुओं में - आ अथवा --वा के योग से ये रूप बनते हैं।

एक अन्य वर्ग के रूप भी हैं, जिन्हें नामीकृत (Denominatives) कहा जा सकता है। ये भी नाम (संज्ञाओं) के ह्रस्वीकृत रूपों में --या जुड़कर तथा इस प्रकार निष्पन्न धातु-रूपों में उक्त विभक्ति तथा कृदन्तीय रूपों के जुड़ने से बनते हैं।

कर्मवाचीय एवं भाववाचीय :—भाषा का स्वाभाविक प्रवाह तो कर्तृ-वाचीय प्रयोग ही हैं, पर कर्म एवं भाववाचीय क्रिया-पदों की कमी नहीं है। हिन्दी क्षेत्र की अन्यान्य बोलियों की तुलना में संभवतः बुन्देली में यह प्रवृत्ति प्रमुखता लिए हुए है। यही कारण है कि कर्मवाचीय अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा में 'जाना' के योग से संयुक्त क्रिया-पदों की रचना विरल बनकर ही रह गई है। सामान्य तथा ह्रस्वीकृत धातु-रूपों के पारस्परिक ध्वनि-व्यवस्था सम्बन्धी नियमों की चर्चा विषय-क्रम ३-२ में की जा चुकी है। कुछ उदारहण इस प्रकार हैं—

सामान्य	काट्	खा -	कह–	सीँ–
ह्रस्वीकृत	कट्	खब्	कभ्–	सिम्–

कर्तृ	मैं पेड़ काटत हौं = मैं पेड़ काटता हूं
कर्मकर्तृ	पेड़ कटत है = पेड़ कट रहा है
कर्तृ	ऊ आटा चालत है = वह आटा छान रहा है
कर्मकर्तृ	आटा चलत है = आटा छन रहा है

वस्तुतः इस प्रकार के प्रयोगों को वैयाकरणों ने कर्मकर्तृ प्रयोग कहा है क्योंकि इस प्रकार की वाक्य-रचना में कर्म की प्रधानता रहती है, कर्त्ता छिपा रहता है। यथा—

जा रस्ता खीब चलत	= यह रास्ता खूब चला करती है
जौ उन्हा खीब बिकत	= यह कपड़ा खूब बिकता है
उन लोगन कौ खाना खबत	= उन लोगों द्वारा खाना खाया जा रहा है (वे लोग खाना खा रहे हैं)

राम नाँगपास मैं बँध गए = राम नागपाश में बँध गए अर्थात् उन्होंने अपने आप को नागपाश में बँधवा लिया।

चौका रोज पुतत = रसोई घर रोज धोया जाता है।

गइया दुभत = गाय दुही जा रही है।

इन क्रिया-पदों के कर्तृवाचीय रूप क्रमशः चाल–, बेंच–, खा–, बाँध–, पोत–, दोह– होंगे। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि–

i) ह्रस्व धातु-रूप ने कृर्तृ प्रयोग पर भी अधिकार कर लिया है। ऐसी स्थिति में सामान्य रूप या तो भाषा से (अ) विलुप्त हो गया है, या (ब) अत्यन्त सीमित क्षेत्र में पहुंच गया है (स) या उसने अपना अर्थ ही बदल लिया है–

(अ) राख > रख, चाख > चख, दूक > दुक, दूख > दुख, ताक > तक

मैं मौड़ी खाँ रखैं (<राखैं) लेत हौं = मैं लड़की को अपनी रक्षा में लिऐ लेता हूं

मैं चखैं (<चाखैं) लेत हौं = मैं चखे लेता हूं

इसी प्रकार प्राचीन ब्रज साहित्य में अन्य दीर्घ प्रयोग सरलता से मिल जाएँगे।

(ब) चाल : चल यथा-मैं आटा चालत हौं = मैं आटा छान रहा हूं।

(स) मर : मार यथा मैं मरत हौं = मैं मृत्यु को पा रहा हूं।
मैं मारत हौ = मैं पीट रहा हूं।

लुट : लोट यथा मैं लुटत हौं = मैं लुट रहा हूं।
मैं लोटत हौं = मैं लोट रहा हूं।

वस्तुतः बसात (बास) गँधात (गंध) दिखात (दीखता) आदि कर्मवाचीय क्रिया-पद इसी ह्रस्वीकृत धातु-रूपों से बने हुए हैं।

मोहैं बसात है = मुझे बास आ रही है।
मोहैं गँधात है = मुझे गन्ध आ रही है।
मोहैं दिखात है = मुझे दिखाई दे रहा है।

संयुक्त क्रिया-पद-रचना द्वारा भी कर्मवाचीय गठन संभव है। कर्त्तृवाचीय अभिव्यक्ति को कर्मवाचीय रूप देने के लिए क्रिया के भूतकालिक कृदन्तीय पद में 'जानैं' सहायक क्रिया के रूपों का योग किया जाता है। यथा–

कर्तृ०	चरवाहौ गइया लगाउत	=नौकर गाय दुह रहा है।
कर्म० कर्तृ	गइया लग रई	=गाय दुही जा रही है।
कर्म०	गइया लगाई जा रई	=गाय दुही जा रही है।
कर्तृ०	हम मैंफर खात	=हम शहद खा रहे हैं।
कर्म० कर्तृ	मैंफर खबत	=शहद खाई जा रही है।
कर्म०	मैंफर खाई जा रई	=शहद खाई जा रही है।

'हो' सहायक-क्रिया के योग से भावबाचीय अर्थ की भी अभिव्यक्ति संभव है। यथा--

खाबो अथवा खबाई होत =खाना खाया जा रहा है।
बरात कौ चलबो होय, महराज !
=हे महाराज ! बरात चले।

प्रेरणार्थक क्रिया

यौगिक धातु का निर्माण सामान्य धातु के ह्रस्वीकृत रूप में –आ अथवा –वा जोड़कर किया जाता है, यथा—

खा–नैं = सामान्य
खब–नैं = ह्रस्वीकृत
खबा–नैं = प्रेरणार्थक (प्रथम)
खबवा–नैं = प्रेरणार्थक (द्वितीय)

इन यौगिक धातुओं के आधार पर रूप-रचना उतनी ही विशाल है, जितनी कि सामान्य धातुओं के आधार पर ऊपर दिखलाई जा चुकी है। यथा—

चल धातु

	सामान्य	प्रेरणा (प्रथम)	प्रेरणा (द्वितीय)
वर्तमान	चलत	चलाउत	चलवाउत
भूत	चलो	चलाओ	चलवाओ
भविष्यत्	चलहौं	चलाहौं	चलवाहौं
क्रियार्थक संज्ञा	चलनैं	चलानैं	चलवानैं
पूर्वकालिक कृदन्त	चल	चला	चलवा
भाववाचक संज्ञा	चली	चलाई	चलवाई

ह्रस्वीकृत धातु रूपों, जिनमें ये प्रेरणा-प्रत्यय जुड़ते हैं, के निर्माण-सम्बन्धी संधि-नियम ऊपर दिए जा चुके हैं (विषय-क्रम ३–३)। अशोक नगर (गुना-क्षेत्र) के प्रेरणा-रूपों के निर्माण सम्बन्ध में कुछ अन्तर है, जो कि निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है। यथा—

सामान्य	ह्रस्वीकृत	प्रथम प्रेरणा	द्वितीय प्रेरणा
पीत (पीता)	पिबत	पिबात	पिब्बात
खात (खाता)	खबत	खबात	खब्बात

मध्य बुन्देली के एक क्षेत्र में (ललितपुर, जिला झाँसी) प्रथम प्रेरणा के प्याउत, ख्वाउत रूप भी उपलब्ध हुए हैं।

नामीकृत Denominatives

ये यौगिक धातुएँ नाम (संज्ञा अथवा विशेषण) शब्दों के ह्रस्वीकृत रूपों में –या प्रत्यय जोड़कर बनाई जाती हैं और फिर इनकी रूप-रचना 'आ' धातु की तरह चलती है। यथा—

हँतयाउत, हँतयावनैं = (हाँत > हँत) = हाथ में आना।
गरयाउत, गरयावनैं = (गारी > गर) = गाली देना।
लड़याउत, लड़यावनैं = (लाड़ > लड़) = लाड़ करना।
कुलयाउत, कुलयावनैं = (कोल > कुल) = छेद करना।
मटयाउत, मटयावनैं = (माटी > मट) = मिट्टी से धोना।
लतयाउत, लतयावनैं = (लात > लत) = लात मारना।
उँगरयाउत, उँगरयावनैं = (उँगरिया > उँगर) = अँगुली से इशारा करना।
खुदयाउत, खुदयावनैं = (खोद > खुद) = खोद-खोद कर पूछना
पतयाउत, पतयावनैं = (पत) = विश्वास करना।
मँझयाउत, मँझयावनैं = (माँझ > मँझ) = बीच से निकलना।

संयुक्त क्रिया

२२. बुन्देली (अथवा अन्य अधुनिक आर्य भाषाओं) के क्रिया रूपों की संयुक्तता से हम कहीं व्याकरणिक (Grammatical) और कहीं अभिधा तथा लक्षणा मूलक (Lexical & Stylistic) अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। मुख्य क्रिया में ह– तथा हो– के योग से काल-रचना, जा– बन– के योग से कर्मवाचीय अभिव्यक्ति और आ–, जा–, पर– आदि क्रिया-रूपों के योग से अभिधार्थों की सिद्धि की जाती है। व्याकरणिक अर्थों को स्पष्ट करने वाली संयुक्तता की चर्चा इस अध्याय का विषय रहा है; अब यहाँ अभिधार्थों के लिए प्रयुक्त क्रिया-संयुक्तता का अध्ययन अभीष्ट है।

टी० जी० बेली ने संयुक्त क्रियाओं को परिभाषित करते हुये लिखा है, "विशुद्ध संयुक्तता वहीं है जहाँ परवर्त्ती क्रिया अपना अर्थ खो देती है; और

यदि वह अपना अर्थ नहीं खोती तो ऐसी स्थिति में वे दो भिन्न क्रियाएँ हैं, संयुक्त क्रियाएँ नहीं ।'[1]

उक्त कथन का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

बा मौड़ी रोटी खा गई=वह लड़की रोटी खाकर गई
बा मौड़ी पैसा खा गई=वह लड़की पैसा निगल गई

प्रथम वाक्य में कर्त्ता एक के बाद दूसरे कार्य में प्रवृत्त है जबकि दूसरे में दोनों क्रियाओं के योग से एक भिन्न अर्थ की अभिव्यंजना है। अतएव प्रथम क्रिया-संयुक्तता वाक्य-गठन की विधा समझी जाएगी जबकि दूसरे वाक्य का, खा + जाना = खा जाना, एक क्रिया-पद के अन्तर्गत परिगणित किया जाना चाहिए।

बौ रोउत जात = वह रोता हुआ जाता है
बौ रोउत जात = वह रोता ही जाता है (फुसलाने पर भी नहीं मानता)

प्रथम वाक्य में 'रोउत' विधेयात्मक विशेषण है यह वाक्य का Participial Construction है। दूसरे में, कर्त्ता के कार्य की अर्थात् रोने की ही सूचना है, कम या अधिक का प्रश्न है ।

बौ हँस परो = वह हँस पड़ा
बौ उठ बैठो = वह खड़ा हो गया

इन दोनों वाक्यों में निश्चय ही परवर्त्ती क्रियाएँ अपना अर्थ खो चुकी हैं अतएव 'संयुक्त-क्रियाएँ' ही कहलाएँगीं। जबकि,

बौ निकर आओ = वह निकल आया
बौ खान जात = वह खाने जाता है

इन दोनों वाक्यों में निश्चय ही—निकल कर आया (पूर्वकालत्व गठन) तथा खाने के लिए जाता है (संज्ञा गठन) अर्थों की अभिव्यक्ति की प्रधानता है अतएव संयुक्त-क्रिया-पद रचना के बाहर का गठन कहा जाना चाहिए।

बौ थम गओ = वह रुक गया
बौ चल बसो = वह मर गया

---

1. In real compounds, the second verb loses its usual meaning When second verb retains its meaning, we have not a compound but two verbs.

Hindustani Grammar, page 19.

निश्चय ही बुन्देली की दृष्टि से ये क्रिया-रूप 'संयुक्त क्रिया पद' कहलाएँगे पर यदि गम् धातु का 'जाने के साथ प्राप्त करने का' अर्थ भी स्वीकार कर लिया जाए जो कि संस्कृत युग में लाक्षणिक रूप में विकसित हो चुका था तो हम प्रथम वाक्य को— थमने को प्राप्त हुआ—यह अर्थ लेकर वाक्य का संज्ञात्मक गठन, कहने को बाध्य होंगे । वस्तुतः 'मरना' किसी अन्य स्थान पर चलकर बसना ही तो है, यदि यह व्युत्पत्तिपरक अर्थ सामने रखा जाए तो यह भी वाक्य का पूर्वकालत्व गठन कहलाएगा । इससे सिद्ध होता है कि संयुक्तता की यह विधा वाक्य-गठन से पद-गठत की ओर बढ़कर ही संगठित हुई है । इसलिए वर्तमान बुन्देली या हिन्दी में इस ऐतिहासिक संयुक्तता का क्रमिक वैविध्य सरलता से देखा जा सकता है । हम नीचे इस क्रम को प्रौढ़ता से शिथिलता की ओर जाकर वर्गीकृत कर रहे हैं—

i) ल्यानैं (लेनैं + आनैं) । योग प्रमाण-सिद्ध है—भूतकाल की सकर्मक क्रियाएँ कर्म के अनुसार लिंग-भेद रखती हैं, पर यह क्रिया अपवाद है, यथा : मैं किताब ल्याओ, मैं कागद ल्याओ । इस प्रकार स्पष्ट है कि अकर्मक 'आनैं' के प्रभाव-स्वरूप यह अपवाद बनकर रह गया है । ये दो क्रियाएँ पूर्ण-ऐक्य की स्थिति में हैं ।

ii) जाउँगो (= जाऊँगा), जात्तो (=जाता था) तथा जाकैं (=जाकर) में गा, तो और कैं क्रमशः प्रत्यय की स्थिति में पहुंच गए हैं ।

iii) काल-अर्थ-रचना-सहयोगी ह–, हो अभी परसर्गीय स्थिति में रहकर अपनी संयुक्तता व्यक्त कर रही हैं ।

iv) सक-क्रिया मुख्य क्रिया से असंयुक्त रहकर भी भाषा में स्वतंत्र रूप से प्रयोग में नहीं आती । इसने अर्थ का भी पूर्ण समर्पण नहीं किया है ।

v) इस वर्ग में वे सभी क्रियाएँ हैं जो भाषा में स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती हैं पर मुख्य क्रिया के साथ आकर 'जहत् स्वार्थी' हो जाती हैं और लाक्षणिक रूप में एक नए अर्थ को अभिव्यंजित करने लगती हैं । यथा— लगनैं, शुरू करने के अर्थ में; जानैं, समाप्त करने के अर्थ में; बैठनैं, अपने ठीक विपरीत उठने के अर्थ में; आदि ।

यदि वह अपना अर्थ नहीं खोती तो ऐसी स्थिति में वे दो भिन्न क्रियाएँ हैं, संयुक्त क्रियाएँ नहीं।'[1]

उक्त कथन का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

बा मौड़ी रोटी खा गई=वह लड़की रोटी खाकर गई
बा मौड़ी पैसा खा गई=वह लड़की पैसा निगल गई

प्रथम वाक्य में कर्त्ता एक के बाद दूसरे कार्य में प्रवृत्त है जबकि दूसरे में दोनों क्रियाओं के योग से एक भिन्न अर्थ की अभिव्यंजना है। अतएव प्रथम क्रिया-संयुक्तता वाक्य-गठन की विधा समझी जाएगी जबकि दूसरे वाक्य का, खा + जाना = खा जाना, एक क्रिया-पद के अन्तर्गत परिगणित किया जाना चाहिए।

बौ रोउत जात = वह रोता हुआ जाता है
बौ रोउत जात = वह रोता ही जाता है (फुसलाने पर भी नहीं मानता)

प्रथम वाक्य में 'रोउत' विधेयात्मक विशेषण है यह वाक्य का Participial Construction है। दूसरे में, कर्त्ता के कार्य की अर्थात् रोने की ही सूचना है, कम या अधिक का प्रश्न है ।

बौ हँस परो = वह हँस पड़ा
बौ उठ बैठो = वह खड़ा हो गया

इन दोनों वाक्यों में निश्चय ही परवर्त्ती क्रियाएँ अपना अर्थ खो चुकी हैं अतएव 'संयुक्त-क्रियाएँ' ही कहलाएँगीं। जबकि,

बौ निकर आओ = वह निकल आया
बौ खान जात = वह खाने जाता है

इन दोनों वाक्यों में निश्चय ही—निकल कर आया (पूर्वकालत्व गठन) तथा खाने के लिए जाता है (संज्ञा गठन) अर्थों की अभिव्यक्ति की प्रधानता है अतएव संयुक्त-क्रिया-पद रचना के बाहर का गठन कहा जाना चाहिए।

बौ थम गओ = वह रुक गया
बौ चल बसो = वह मर गया

---

1. In real compounds, the second verb loses its usual meaning When second verb retains its meaning, we have not a compound but two verbs.

Hindustani Grammar, page 19.

vi) संज्ञा-विशेषण शब्दों (Nominal) को आधार बनाकर करनैं, के योग से संयुक्त-क्रिया-पदों की एक बहुत बड़ी संख्या सामने आ गई है। यह विकास की दृष्टि से आधुनिक है और अभी उसका गठन वाक्यात्मक ही अधिक है।

vii) तीन या चार क्रिया पदों की संयुक्तता विकास की दृष्टि से अति आधुनिक कही जाएगी।

क्रिया-संयुक्तता भाषा की एक जीवित-प्रक्रिया है इसलिए संयुक्तता में सहयोग देने वाली सहायक क्रियाओं की सम्पूर्ण सूची प्रस्तुत करना तो संभव नहीं है, फिर भी द्वितीय अवयव बनकर आने वाली कुछ क्रियाओं की परिगणना यहाँ कराई जा सकती है : आ–, जा–, ले–, दे–, पर–, डार–, उठ–, बैठ–. लग–, चुक–, सक–, चाह–, हो–, पा–, खा–, कर–, भर–, दिख– (देख–), दौड़–, चल–, मच–, उड़–, धर–, फिर–, रह–, मर–, मार–, मिल–, धमक–, पटक–, पहुंच–, बन–, भाग--, गिर--, घाल-- आदि।

हिन्दी की इन सहायक क्रियाओं की समसामयिक संयोग की शिथिलता एवं प्रौढ़ता को परिलक्षित करके तीन भागों में विभक्त करके देखा जा सकता है—

अ. लग–, सक--, चुक--, चाह--

इन क्रियाओं ने अपना अर्थ पूर्ण रूप से मुख्य क्रिया को अर्पित नहीं किया है। यथा :

मैं सोचन लगो = मैं सोचने लगा
मैं खा सकत = मैं खाने की शक्ति रखता हूं
मैं खा चुको = मैंने खाना खा लिया है

वस्तुतः इन क्रियाओं ने लाक्षणिक रूप से अपने अर्थ का विकास तो कर लिया है, पर मुख्य क्रिया से अपना अस्तित्व अलग बनाए रखा है।

ब. आ- जा--, उठ-बैठ--, ले-- दे--, डार-- पर—

अर्थ-समर्पण की दृष्टि से तो ये सहायक क्रियाएँ ही हैं पर विरोधी क्रियाओं के साथ जुड़ कर आने की इनकी प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इसीलिए इनको एक अलग वर्ग बनाकर रख दिया गया है। निस्सन्देह इसके पीछे प्रयोक्ताओं के विचारों के संयोजन की प्रक्रिया काम कर रही हैं।

बौ आ गओ = वह आ गया

[इसमें आकर जाने का भाव नहीं है, अपितु प्रतीक्षा के बाद आने की पुष्टि है]

बौ उठ बैठो = वह खड़ा हो गया

[बैठने का अर्थ नहीं, विरोधी अर्थ की पुष्टि है]

बरीं दै दईं = बड़िआं दे दीं
बरीं दै लईं = बड़ियाँ बना लीं
बरीं लै दईं = बड़ियाँ खरीद दीं
बरीं लै लईं = बड़ियाँ खरीद लीं

[अन्तिम दो उदाहरणों से जान पड़ता है कि ये क्रियाएँ आत्मने पद तथा परस्मैपद की क्षति की पूर्ति कर रही हैं। प्रथम में पुनरुक्ति से तीव्रता का विधान है]

दूद गिरा डारो = दूध गिरा दिया
दूद गिर परो = दूध गिर पड़ा

[प्रथम में कर्तृत्व और द्वितीय में कर्मवाच्य का गठन है]

तीव्रता के भाव प्रदर्शन के लिए समानधर्मा क्रियाएँ मिलकर आती ही हैं, साथ ही विपरीतधर्मा भी आ जाती हैं। क्रमशः उदाहरण दिए जा सकते हैं।

बौ निकर गओ = वह निकल गया

[निकर– (<सं० √क्रम = चलना) तथा गओ (<सं० √गम् = जाना) समानधर्मा हैं।]

बौ रुक गओ = वह रुक गया

[रुकना तथा जाना विपरीत धर्म हैं]

इन दोनों अर्थ-विकास-स्तरों के बीच एक प्रकार के वाक्य और आते हैं—

बौ जग गओ = वह जाग गया

बस्तुतः सोकर जागने पर किसी कार्य में संलग्न होने की प्रवृत्ति का परिचय देने के लिए 'गया' आया होगा जो कि अब अभिधार्थी न होकर लक्षणा के अन्तर्गत पहुंच गया। इसके पश्चात् ही 'रुक जाने' की स्थिति आती है जिसमें 'आने' का भाव बिल्कुल समाप्त हो गया है।

स. इस वर्ग के अन्तर्गत शेष सभी सहायक क्रियाएँ आ सकती हैं। मुख्य क्रिया के पद-स्वरूप को निम्न चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

धातु +	कृदन्त +						नाम +
	-त +	− ० ई +			−न− +		
		विशेषण	संज्ञा		संज्ञा		संज्ञा, विशेषण +
			मूल ¬ विकारी	रूढ़	मूल	विकारी	
आ	आउत	आओ आई आए	आओ ¬ आए	आऐं	आउनैं	आउन	मना + कर···

चार्ट व्याख्या की आकांक्षा रखता है—

धातु रूप—

बुन्देली में धातु का मूल-रूप तथा प्रत्यय-रहित पूर्वकालिक कृदन्त का रूप एक ही है, अतएव हम इसे दो में से किसी एक नाम से उद्धृत कर सकते हैं। वस्तुतः अर्थ की गहराई पर उतरने पर भी हम सर्वत्र किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पा रहे हैं। जैसे:— ऊ जा सकत (=वह जा सकता है), ऊ खा चुको (=वह खा चुका), ऊ हँस रओ (=वह हँस रहा है), आदि वाक्यों की मुख्य क्रिया में पूर्वकालत्व बिलकुल नहीं समझ पड़ता, जबकि, ऊ निकर आओ (=वह निकल आया), ऊ नै लै दओ (=उसने ले दिया), ऊ गिर परो (=वह गिर पड़ा), आदि में उक्त अर्थ की संगत बिठला लेना कोई कठिन नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि इस वर्ग की संयुक्त-क्रियाएँ दो भिन्न स्रोतों से आई हैं। एक तो पूर्वकालिक रूपों से (निकरि> निकर, सुनि>सुन···) तथा दूसरे शून्य प्रत्यय-युक्त कृदन्त रूपों से। वस्तुतः मुख्य क्रिया असंदिग्ध रूप में इस समय धातु रूप में ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि आधे से अधिक संयुक्त पद-रचना धातु-रूपों के साथ ही होती है। साथ ही निर्विवाद संयुक्त-क्रिया–पदत्व यहीं मिलेगा।

बौ खेल आउत = वह खेल आया करता है

बौ खेल आओ = वह खेल (कर) आ गया (पूर्वकालत्व स्पष्ट है)

मोहैं खेल आउत = मैं खेलना जानता हूं (संज्ञा भाव स्पष्ट है ।

खाना खा आओ = (वह) खाना खा (कर) आ गया, पूर्वकालत्व स्पष्ट है परन्तु—

खाना खब आओ = खाना खाया जा चुका ।

बाय रो आओ = उसे रो आया (रोने से अपने को न रोक सका)

कृदन्तरूप—यह पुनः तीन वर्गों में विभक्त हो सकता है—

–त + जौ काम हमाए इतै होत आओ
= यह काम हमारे यहाँ (वर्षों से) होता आया है
जौ काम हमाए इतै होत रात
= यह काम हमारे यहाँ(आवश्यकतानुसार)होता रहता है
जौ काम हमाए इतै होत जात
= यह काम हमारे यहाँ (पहले भी) होता आया है और (आज भी) चल रहा है
जा बीमाई बढ़त जात = यह रोग बढ़ता जाता है
मोसैं चलत बनत = मुझ से चलते (हुए) बनता है

[यहाँ बन -लाक्षणिक अर्थ से शिथिल सहायक क्रिया बना है]

आव, खेल जा = आ, खेल जा

[जाने का भाव बिल्कुल समाप्त है]

बौ खेल गओ = वह खेल (कर) गया
बौ खेल जात = वह (अक्सर) खेल जाया करता है
बाय खेल जानैं = उसे (अक्सर) खेल जाया करना है

–०– + कर्त्ता अथवा कर्म के अनुसार यह प्रत्यय लिंग–वचन–विभक्ति-प्रत्यय रखता है । यथा :

बौ घुसो आउत = वह घुसते ही आ रहा है
[आने का भाव समाप्त होने के मार्ग पर है]
बौ मरो जात = वह मरने ही को है
बौ आओ जात = वह आने ही वाला है
काम करो गओ = काम किया गया
बात करी गई = बात की गई

–०–+ —संज्ञार्थ में यह मूल रूप रखता है—

मोहैं खेलो चइए = मुझे खेलना चाहिए

बौ खेलो चाउत = वह खेलना चाहता है

बौ जाओ चाउत = वह जाना चाहता है

[इसका विशेषणार्थ रूप 'गओ' होता]

बौ जाओ करत = वह जाया करता है

बे जाओ करत = वे जाया करते हैं

बा जाओ करत = वह जाया करती है

तुलना कीजिए—

बौ जाए करत = वह जाया करता है

वे जाए करत = वे जाया करते हैं

बा जाए करत = वह जाया करती है

–०–+ —अव्यय रूप, जिसका विभक्ति प्रत्यय –ऐं ही रहता है. कहीं संज्ञा और कहीं विशेषण का अर्थ देता जान पड़ता है—

जे लरका हमैं खाऐं जात = ये लड़के हमको बड़ा परेशान करते हैं।

[खाऐं = खाए हुए]

किताबैं धरैं राव = किताबें रखे (हुए) रहो

बौ मारैं डारत = बौ मारे (हुए) डालता है

बौ पिऐं रात = वह (शराब आदि) पिए (हुए) रहता है

मैं पढ़ैं लेत = मैं पढ़े (हुए) लेता हूं

मैं खाऐं जात = i) मैं खाए (हुए) जा रहा हूं
=खाता जा रहा हूं
ii) मैं खा (कर) जा रहा हूं

–न + —इसे मूल एवं विकारी दो संज्ञा रूपों में विभक्त किया गया है। –नैं का प्रयोग ह–, हो– कालार्थवाची सहायक क्रिया रूपों के साथ ही प्रधानतः होता है; परन्तु आ–, पर– क्रियाएँ ऐसी हैं जिनके योग से बने क्रियापद 'संयुक्त क्रिया' के अन्तर्गत आएँगे। यथा—

बाय जानैं परत = उसे जाना पड़ता है

मोहैं लाउनैं परत = मुझे लाना पड़ता है

[यहाँ पर– का लाक्षणिक अर्थ ही बदला है, इसलिए इसे शिथिल संयुक्तता के अन्तर्गत ही ले सकेंगे]

मौड़िन खाँ खेलनें आउत=लड़कियों को खेलना चाहिए

–न का प्रयोग व्यापक है। पर पा–, आ–, दे–, लग–, चाह–, बैठ– चल– धातु क्रिया-रूपों के साथ ही—

मैं नईं जान पाउत = मैं जाने नहीं दिया जाता

तुलना कीजिए—

मैं नईं जा पाउत = मैं (स्वयं) नहीं जा पाता
मैं खेलन चाउत = मैं खेलने ही वाला हूं

तुलना कीजिए—

मैं खेलो चाउत = मैं खेलना चाहता हूं
बो खेलन जात = वह खेलने (के लिए) जाता है

तुलना कीजिए—

बो खेलैं जात = i) वह खेल (कर) जाता है
ii) वह खेलना जारी रखे है

बो सोउन बैठो = वह सोने ही जा रहा है
बो खान लगो = वह खाने लगा
बो खान आउत = वह खाने आता है

वस्तुतः इस क्रिया-संयुक्तता में संज्ञा वाक्यांश का गठन अधिक है।

नाम आधारी—संज्ञा, विशेषण तथा कभी-कभी अव्यय रूपों को साथ लेकर कोई-कोई सहायक क्रिया एक क्रिया-भाव की अभिव्यक्ति करती है। इस क्रिया-ऐकत्व को ध्यान में रखकर इनको भी संयुक्त क्रिया के अन्तर्गत परिगणित कर लिया गया है। इनमें से कुछ तो कर्तृवाचीय गठन में ही प्रयुक्त होती हैं और कुछ कर्मवाचीय अभिव्यक्ति के लिए ही आती हैं। द्वितीय में वास्तविक कर्ता विकारी रूप धारण किए रहता है। क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—

(अ) मैनें माफ कर दओ = मैंने क्षमा कर दिया
बानें मार खाई = उसने मार खाई
बो बेकार मूंड़ खपाउत = वह व्यर्थ परेशान होता है
बो मूंड़ मारत फिरत = वह व्यर्थ परेशान होता है
बानें नाम धराओ = उसने बदनामी करा ली

(ब) मोहें दुख होत = मुझे दुख होता है
मोहें याद आउत = मुझे (उसकी) याद आती है
मोहें दिखाई देत = मुझे दिखलाई देता है
मोहें सुनाई देत = मुझे सुनाई पड़ता है

तृतीय तथा चतुर्थ अवयव बनकर भी सहायक क्रियाओं की योजना होती है। तृतीय अवयव में कर–, जा–, दे–, सक–, ले–, चाह– आदि क्रियाएँ प्रमुख हैं। चतुर्थ अवयव में तो संभवतः कर– क्रिया-रूपों को ही स्थान मिलता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

बौ खात चलो जात = वह खाता ही जाता है
तैं काम कर लए कर = तू काम कर लिया कर
तैं इतैं खेलं जा, सकत = तू यहाँ खेलने आ सकता है
यौ काम होत चलो आओ = यह काम (वर्षों से) होता चला आया है
तैं एखाँ खा लेन दए कर = तू इसको खा लेने दिया कर

जैसा कि अन्यत्र कहा गया, इस संयुक्त क्रिया–पद–रचना से सूक्ष्म भावों का निदर्शन होता है। वस्तुतः जो कार्य संस्कृत ने अपने उपसर्गों से लिया यथा—आहरति, विहरति, संहरति तथा जो कार्य अंग्रेजी अपने प्रीपोजीशन्स (Prepositions) यथा—get up, get down, get on, get into, से ले रही हैं, वही कार्य हिन्दी अथवा बुन्देली आदि भाषाएँ अपनी सहायक क्रियाओं से लेती हैं। परन्तु जिस प्रकार संस्कृत वैयाकरणों ने उपसर्गों की संख्या का तथा कमाधिक मात्रा में उनके अर्थों का निर्धारण कर लिया था वैसा कर पाना बुन्देली की बढ़ती हुई विश्लिष्टात्मकता के कारण संभव नहीं है। फिर भी—

बौ खान लगो = वह खाने लगा (प्रारम्भिकता)
बौ जा सकत = वह जा सकता है (शक्यता)
बौ नईं जा पाउत = वह नहीं जा पाता (अशक्यता)
बौ रोउत जात = वह रोता ही जा रहा है (निरन्तरता)
बौ दिखो चाउत = वह देखना चाहता है (इच्छार्थकता)
बौ खा चुको = वह खा चुका (पूर्णता)
बौ पढ़ो करत = वह पढ़ता रहता है (स्वभाव-सूचक)
चार बजो चाउत = चार बजना चाहते हैं (तात्कालिकता)
बानैं लै दओ = उसने ले दिया (परार्थक)
बानैं लै लओ = उसने ले लिया (स्वार्थक)
बौ गिर परो = वह गिर पड़ा } (भ्रंशार्थक)
बौ उठ बैठो = वह उठ बैठा }

अव्यय

१. 'यन्न व्ययेति तदव्ययम्' की व्याख्या से स्पष्ट है कि अव्यय एक प्रकार की नाम शब्दावलि है। यह तथ्य भाषा-इतिहास से भी प्रकट होता है। वस्तुतः संस्कृत तथा हिन्दी में प्रचलित चिरम्, पूर्णतया, सर्वतः आदि, नाम-शब्दों के क्रमशः द्वितीया, तृतीया तथा पंचमी कारक-विभक्ति-युक्त पद ही हैं. पर इन्होंने अपनी विभक्त्यात्मकता समाप्त करके एकरूपता अपना ली है। अतएव अविभक्तक (Indeclinables) कहला रहे हैं। अपनी इस अविभक्त्यात्मकता के कारण ये व्याकरणिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए वाक्य में प्रयुक्त दूसरे पदों का आश्रय लेते हैं—वस्तुतः आधुनिक भाषाशास्त्रियों ने इसीलिए इन शब्दों को वाक्यान्तर्गत परिगणित शब्द-वर्गों (Syntactical classes) के अन्तर्गत रखा है।

२. अर्थ को ध्यान में रखते हुए हम इन शब्दों को निम्न भागों में विभक्त करके अध्ययन कर सकते हैं—

i) क्रियाविशेषण
ii) समुच्चय बोधक
iii) निपात
iv) परसर्ग
v) विस्मय बोधक

क्रियाविशेषण

३. सुविधानुसार ये भी चार वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—काल, स्थान, दिशा, रीति वाचक। कतिपय स्पष्टतः सर्वनाम-रूपों पर आश्रित हैं, अतएव उन्हें सर्वनाम-विषय-क्रम १२ में स्पष्ट किया जा चुका है। नीचे शेष वर्गों की एक सामान्य-सूची प्रस्तुत की जा रही है :—

३.१. कालवाचक

आज ~ आझई (< आज + ही)
रोज ~ रोजीना (< रोज़ाना)
कल्ल ~ काल = बीता हुआ अथवा आगे आने वाला दिन
परौं = परसों, बीता हुआ अथवा आगे आने वाला, कल के बाद का अथवा पहिले का, दिन

आसौं = इस चालू वर्ष में

पर ~ पार = बीते हुए अथवा आने वाले वर्ष में

अँगाईँ (<अँगारीँ) ~ अँगाऊँ (अँगारूँ) ~

आँगैँ = आगे

आगित = आगे आने वाले अथवा बीते हुए वर्षों में

बेरा ~ बेराँ = (<बेला), समय

भ्यानैं = (<विहानहिँ) आगे आने वाला प्रातःकाल

अँदयाईँ = (<अँधेरे में ही) आगे आने वाला प्रातःकाल

सकारैं = (<सकाल) आगे अथवा बीते दिन का प्रातःकाल

सौकारूँ = (<सकाल) बहुत सबेरे

उलायतैं = जल्दी

दाईँ ~ दारीँ = बार, दफा

देर ~ धेर ~ झेल (<*ध्येर) = देर

धारक = कभी-कभी

हर हरजाँ = अक्सर

अथऐँ = (<अस्त) संध्या समय

दुफाईँ = दोपहर के समय

[तुलना कीजिए, दुफाई = दोपहर]

रातैं = रात के समय

इखयाऊ = अन्त में

३.२. **स्थानवाचक**

अँगाईँ (<अँगारीँ) ~ अँगाऊँ (<अँगारूँ) ~

आँगैँ ~ आँगूँ = आगे

पछाईँ (<पछारीँ) ~ पछाऊँ (<पछारूँ) ~

पाछैँ ~ पाछूँ = पीछे

सबरे हार = सर्वत्र

ऐंगर = समीप

दूर = दूर

बाहर = बाहर

अन्तै = अन्यत्र

नाँ = यहाँ

राजा के नाँ गए = राजा के यहाँ गए

माँ = वहाँ

तीरें = पास

३.३. **दिशावाचक**—स्थान-वाचक अव्ययों में दिशा-सूचक शब्दों के अथवा यत्रतत्र बलात्मक निपात 'आय' के योग से अथवा परसर्ग खाँ (खों, कों) के पर-भाग में प्रयुक्त होने से उक्त अभिप्राय की सिद्धि हो जाती है। यथा-

i) दिशा सूचक शब्द—

कोद ~ कोदीं ~ कुदाईं = ओर

ओरीं = ओर

डिब्बे हाँत कुदाईं = बायें हाथ की ओर

झाँसी कुदाईं = झाँसी ओर

हमाई ओरीं = हमारी ओर

ii) आय के योग से

इताँयँ = इस ओर

उताँय = उस ओर

नाँय = इस ओर

माँय = उस ओर

नाँय गई, माँय गई, पइसा भर जधा मैं बैठ गई =
यहाँ गई, वहाँ गई, पैसा भर स्थान पर रुक गई।
अर्थात् लाठी

माँय के उपेक्षा-सूचक प्रयोग भी दृष्टव्य हैं—

चलौ परिए, माँय = चलो पड़ें + उपेक्षा

माँय, को जाय उतै = अरे ! कौन जाए वहाँ

माँय, मरन देव उऐ = अरे ! मरने दो उसे

iii) कर्म कारकीय प्रत्यय के साथ——

आँगूँ खाँ = आगे की ओर

पाछूँ खाँ = पीछे की ओर

३-४. रीति वाचक—

हरईं–हराँ = धीरे-धीरे

मस्कई ~ मस्काँ = चुपके से

तराँ ~ तनाँ = तरह से

घाईं=तरह
तुरतईं=तुरन्त ही
जबरदस्तीं=ताकत से

समुच्चय बोधक

४.१ **संयोजक**—(Conjunctives)

और ~ औं=और
मैं औ ~ और ऊ गए ते = मैं और वह गए थे

नाँ=और
रात ताँ दिनाँ एक कर दओ=रात और दिन एक कर दिया ।
बा नाँ कक्को दोऊ जनैं गए =वह और चाची दोनों गईं ।
टंटी नाँ भुल्लीं, दोऊ आए=टण्टी और भुल्लीं दोनों आदमी आए

फिर ~ फिन (द्वितीय खाँ-क्षेत्र में)
वो गओ फिन मैं आ गयो = वह गया, फिर मैं आ गया ।

४-२. **विभाजक** (Alternatives)

या......या
या केसर या रामबाई कोऊ चलो जैहै
=या तो केसर अथवा रामबाई (दो में से) कोई चला जाएगा ।

कै......कै
कै घसीटा कै लटोरा कोऊ आ जैहै
=घसीटा अथवा लटोरा (दोनों में से) कोई आ जाएगा ।

चाय......चाय
चाय तैं चाय तोओ हरवाव चलो आवै
=चाहे तू चाहे तेरा नौकर, कोई चला आए

धौं........धौं
धौं बिन्नूं धौं तैं चली जइए
=या तो छोटी बहिन या तू चली जाना

ना......ना

ना तो सैं ना ऊ सैं, कोऊ सैं न आहै

=ना तुझसे न उससे, किसी से न आएगा

नइँ ता ~ नइँ तौ ~ नइँ तर

रुक जाव नइँ तर काम न हुइऐ

=रुक जाओ, अन्यथा काम न बन सकेगा

४-३. **बिरोध सूचक** (Adversatives)

पै=लेकिन

खीब मनाओ, पै बा न आई

=अच्छी तरह फुसलाया पर वह न आई

अकेलैं=लेकिन

हर हरजाँ कोशिश करी अकेलैं काम न बनो

=हर तरह प्रयत्न किया परन्तु काम न बना

४-४. **अनुमोदक** (Concessives)

घाल...पै=हालांकी...पर

घाल मौका न तो पै काम बन गओ

=यद्यपि उपयुक्त अवसर न था पर काम बन गया

स्यात...तौ ~ ता =यदि...तो

स्यात गाड़ी रुक गई तौ...=यदि गाड़ी रुक गई तो...

जौ...तौ ~ ता =यदि...तो

जौ ऊ आ गओ तौ=...यदि वह आ गया तो...

कजन्त ~ कजन...तौ ~ ता (जालौन जिला)

कजन्त ऊ आ गओ तौ...=अगर वह आ गया तो...

कभी-कभी वाक्यांश बदलकर इनमें से किसी एक शब्द से भी काम चला लिया जाता है यथा—

मौका न तो तै काम बन गओ।

अथवा

काम बन गओ घाल मौका न तो।

४-५. **हेत्वर्थक**—(Causatives)

कि=कि

ऊ ई सैं आओ तो कि ओ खाँ बुलाओ तो

=वह इसलिए आया था कि उसको बुलवाया था।

काए सैं कि = क्योंकि

ऊ ई सैं आओ तो काए सैं कि ओ खाँ बुलवाओ तो

= वह इसलिए आया था कि उसको बुलवाया था

४-६. परिणाम सूचक—(Resultatives)

सो = इसलिये

कक्की आई सो बा चली गई = चाची आई इसलिए वह चली गई

ईसैं = इससे

कक्की आई ईसैं बा चली गई = चाची आई इसलिये वह चली गई

[हेत्वर्थक तथा परिणामसूचक शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो जाते हैं।]

निपात

५-१. स्वीकारात्मक

हओ = हाँ

बजारै जइयो, हओ जू = बाजार जाना, जी हाँ।

हाँ ~ हूँ = किसी चलती हुई किस्सा-कहानी में हाँ-हूँ कहते जाना।

५-२. नकारात्मक

नईं = इनकार करना

जो काम करहो, का? नईं जू = यह काम क्या करोगे? जी नहीं।

नाँ = नहीं

जो काम नाँ करियो = यह काम न करना

आँहाँ ~ ऊँहूँ = इनकार करना (स्वीकारात्मक निपातों में आँ अथवा ऊँ का पूर्व प्रत्यय रूप में योग)

ऊ आओ तो, का ? ऊँहूँ = क्या वह आ या था ? नहीं।

इतै कोऊ है, का? कोऊ नहियाँ = यहाँ कोई है, क्या? कोई नहीं है।

उतै को है ? कोऊ नहोय = उधर कौन है ? कोई नहीं है।

इन वाक्यों में 'नहिं' का योग जान पड़ता है।

५-३. बलात्मक

i) आय (<संस्कृत अयम्) इनकी चर्चा क्रिया विषय-क्रम ५ में की जा चुकी है। यह पूर्वस्थ पद—चाहे व्यक्ति, वस्तु, क्रिया, स्थिति, किसी का भी द्योतक क्यों न हो, सभी में, बलात्मकता लाने के लिए जुड़ता है। यथा—

रमेश आय बजार सैं इतै आओ

= रमेश (कोई दूसरा नहीं) बाजार से यहाँ आया

रमेश बजार सैं आय इतै आओ

= रमेश बाजार से (किसी दूसरे स्थान से नहीं) यहाँ आया

रमेश बजार सैं इतै आय आओ

= रमेश बजार से यहाँ ही (अन्यत्र नहीं) आया

रमेश बजार सैं इतै आओ आय

= रमेश बाजार से यहाँ केवल आया है (विशेष प्रयोजन नहीं)

वस्तुत: बलात्मकता लाने के लिए जो काम सुर-लहर (Intonation) करती है, उसी ही पूर्ति 'आय' कर रहा है।

ii) तौ(=तो)इसकी चर्चा ऊपर विषयक्रम ४—४ में की जा चुकी है। इसने अन्य व्यक्ति, वस्तु अथवा क्रिया भावों से विरोध दिखलाते हुए बलात्मक अर्थ में भी प्रवेश पा लिया है। यथा—

मैं तौ आओ तो = मैं तो आया था (कोई दूसरा आया हो अथवा नहीं)

मैं आओ तौ तो = मैं आया तो था (पर जल्दी चला गया)

मैं बजारै तौ गओ तो = मैं बाजार तो गया था (पर लाना भूल गया)

वस्तुत: अभिप्राय की पूर्णता पूर्वापर सम्बन्धों से ही प्रगट होती है।

iii) तक (=तक), इसकी चर्चा आगे विषयक्रम ६ में हो रही है, जहाँ यह स्थान अथवा काल की अवधि सूचना का प्रत्यय बनकर आता है। यहाँ इसका अर्थ 'भी' के निकट है। यथा—

राम तक आओ = राम भी आया (जिसकी आशा नहीं थी)

परसर्गीय रूप से तुलना कीजिये—

राम तक आओ = (वह व्यक्ति) राम के पास तक आया।

और भी,

राम आओ तक = राम आया भी (उसने केवल संदेशा ही नहीं भेजा)

राम बजार तक आओ = i) राम बाजार भी आया
(बलात्मक प्रयोग)
ii) राम बाजार तक आया
(परसर्गीय प्रयोग)

iv) ई (=ही) तथा ऊ (=भी) बहुलता से प्रयुक्त होने वाले बुन्देली अव्यय हैं। प्रथम पूर्वस्थ पद के केवलत्व (Restrictive sense) को तथा दूसरा उसके अभिव्यापत्व (Inclusive sense) को प्रगट करता है। ये कभी-कभी सह-सम्बन्धवाची सर्वनाम 'सो' को जो कि भाषा से विलुप्त-सा हो गया है, अपने में समेट कर प्रयुक्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में 'सो' निरर्थक हो जाता है। यथा—

रामऊ आओ = राम भी आया
राम सोऊ आओ = राम भी आया

विभिन्न ध्वनि-वातावरणों में इनके प्रयोग इस प्रकार हैं—

बौ आउतई रात = वह आता ही रहता है
बौ रातऊ कैं आउत = वह रात को भी आता है
दद्दऊ आए ते = दादा भी आए थे
दद्दई आए ते = दादा ही आए थे
मौड़ियऊ चली गई = लड़की भी चली गई
मौड़ियई चली गई = लड़की ही चली गई
मोऊ खां = मुझे भी
मोई खाँ = मुझे ही
तुम्हऊँ = तुम्हें भी
तुम्हइँ = तुम्हें ही
दोऊ गए = दोनों गए
दोई गए = दो ही गए

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होगा कि व्यंजनान्त पदों में अई तथा अऊ अन्यत्र ई एवं ऊ का योग है। अन्यान्य स्थानों की भाँति ई तथा ऊ क्रमशः इय् तथा उव् में बदल जाते हैं।

बुन्देली के इन अव्यय रूपों की एक विशेषता है जो हिन्दी क्षेत्र में अन्यत्र न मिल सकेगी। वह यह, कि ये समस्तपदों के प्रथम अवयव में जुड़ जाया करते हैं। यथा—

रामऊचरन खाँ खबा दो = रामचरन को भी खिला दो
रामईचरन खाँ खबइयो = रामचरन को ही खिलाना
रातऊदिनाँ एक कर दओ = रात-दिन एक कर दिया

खों-क्षेत्र में दोनों निपातों के प्रयोगों में यत्किंचित अन्तर है। यथा—

परतऊँ नींद लग गई = पड़ते ही नींद आ गई
दोई आए ते = दोनों ही आए थे
रमेश सोई आओ तो = रमेश भी आया था

परसर्ग

६. इस वर्ग की कतिपय शब्दावलि जो कि भाषा में विशिष्ट व्याकरणिक विधा बन कर छा गई है, कारक-प्रत्यय के रूप में संज्ञा विषयक्रम १५ में वर्गीकृत की गई है। यहाँ शेष उन परसर्गों की चर्चा अभीष्ट है जो कि नाम शब्दों के पर-भाग में लगकर उनकी सीमा का निर्धारण तो करते ही हैं पर साथ ही, क्रिया-सीमा निर्धारण करने के लिए भाषा में अन्यत्र 'अव्यय' बनकर भी प्रयुक्त हो जाया करते हैं। इनके निम्न भेद संभव हैं—

(अ) विकारी एक वचन, के (पु०) अथवा की, (स्त्री०) के साथ—
करण कारकीय सम्बन्ध द्योतन के लिए—

ओखे संगै = उसके साथ
ओखे माएँ = उसके मारे (= कारण)

अपादान कारकीय सम्बन्ध द्योतन के लिए—

उन लोगन के बिना कोऊ = उनके लोगों के बिना कोई…
अपुन के सिबा कोऊ = आपके अलावा कोई…

अधिकरण कारकीय सम्बन्ध द्योतन के लिये—

ओखे आँगूँ-पीछूँ = उसके आगे-पीछे (= किसी समय)
राम ख्याँ = राम के यहाँ

(ब) विकारी, के अथवा की, का प्रयोग वैकल्पिक—
अधिकरण कारकीय—

पथरा तरैं धरो = पत्थर के नीचे रखा है

करण कारकीय—

रमेश घाईं न करिए = रमेश की तरह न करना

(स) विकारी रूपों के बिना कारक-सम्बन्धों का द्योतन—ये रूप कारक प्रत्ययों के अधिक निकट कहे जाएंगे—

करणकारकीय--

तुम पाँच रुपइयन लै का करहौ=तुम पांच रुपयों से क्या करोगे

अपादान कारकीय—

छत में निकर गओ=छत से निकल गया

मटका भर दओ=घड़ा भर दिया

अधिकरण कारकीय—

घर तक जानैं=घर तक जाना है।

विश्मय बोधक

७. अव्यव-शब्दों की यह कोटि भाषा-संगठन में स्वाभाविक अंग बनकर नहीं आती, अर्थ की दृष्टि से स्वतः पूर्ण होकर वाक्य के पूर्व भाग में शब्दात्मक वाक्य बनकर अलग रखी रहती है। यह अतिशय प्रसन्नता, दुःख, आकस्मिकता, विश्मय आदि अन्यान्य भावों को सुराघात की सहायता लेकर स्पष्ट करने में समर्थ होती है। सहसा निसृत होने के कारण अथवा वक्ता के आवेगपूर्ण स्थिति मय होने के कारण जो ध्वनियाँ अनायास ही निकल पड़ती है, उनको कभी-कभी लिपि के मान्य वर्ण-चिह्नों द्वारा यथारूप अभिव्यक्त करने में कठिनाई होती है। बहुधा प्रयुक्त शब्दावलि इस प्रकार है—

एजू=अरे भाई

एजू इतांय अइयो=अरे भाई यहाँ आना

अरी (अई) + एरी ~ एजू =स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गानों के टेक शब्द

इनमें पाया जाने वाला ए अतिशय रागपूर्ण तथा विलम्बित रहता है।

अरी (अई) दइया=दुःख मय स्थिति

बाभा=वाह वाह

बाभा ! भौत अच्छौ=वाह-वाह, बहुत अच्छा

ओ मताई=ओ माँ

ओ मताई ! आउत हौं=ओ माता जी, आती हूं

राम राम = हे राम

राम-राम ! भौत बुरओ भओ = हे राम बहुत बुरा हुआ

च-च = दुख है

च-च ! भौत बुरो करो, ओखाँ माड्डारो
= दुख है, बहुत बुरा किया, उसको मार डाला

रामधई = राम दुहाई

रामधई ! मैं नई गओ तो
= मैं राम की कसम खाता हूं, मैं नहीं गया था

भलाँ ~ भलूं = अच्छा !

भलूं ! तैं जरूर अइए = अच्छा तुम जरूर आना

बाअ ~ बाय

बाअ ! तैं आ गओ = वाह तू आ गया !

शब्द रचना

१. 'धातु', 'प्रातिपदिक', 'ध्वनिग्राम' (Phoneme) जिस तरह भाषा-विश्लेषण के परिणाम हैं, उस तरह 'शब्द' तत्त्व नहीं। वह तो भाषा की एक ऐसी इकाई है, जो कि वाह्य-जगत से अपना सीधा प्रतीकात्मक सम्बन्ध रखती है। भारतीय भाषाविदों द्वारा गिनाए गये भाषा-तत्त्वों में वह पद के सन्निकट है। शब्द में व्याकरणिक प्रत्यय लगकर ही वह 'प्रयोगार्ह' बनता है अर्थात् वाह्य-जगत के द्योतक शब्द को भाषा के अन्तःक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए कुछ सम्बन्ध-नियमों का निर्वाह करना पड़ता है। इस प्रकार, पद = शब्द + व्याकरणिक सम्बन्ध। शब्द से पद बनाने वाले विभक्ति-प्रत्ययों की चर्चा संज्ञा से लेकर क्रिया तक होती आई है अर्थात् लिंग, वचन, कारक (सुप्) तथा पुरुष, वचन, लिंग, काल, वाच्य, अर्थ आदि द्योतक (तिङ्०) विभक्ति-प्रत्यय क्रम से नाम एवं क्रिया की पद-रचना में समर्थ हैं। उदाहरण के लिये यदि हम घर, घरन, घरुवा और घर-द्वार, ये चार शब्द लें तो 'घर' को हम व्याकरणिक दृष्टि से प्रातिपदिक तथा अन्य दृष्टियों से शब्द कहेंगे। 'घरन' वचन-कारक-द्योतक विभक्ति लिये हुए है, अतएव पद हुआ। घरुवा (छोटे पौधों का थाला) 'एक छोटा सा घर', ह्रस्वार्थ-द्योतक प्रत्यय-युक्त शब्द बना जिसमें ठीक 'घर' की तरह पद-द्योतक विभक्ति-प्रत्यय लगाये जा सकते हैं। एक शब्द से दूसरा शब्द बनाने वाले इन्हीं रचनात्मक प्रत्ययों की चर्चा यहाँ अभीष्ट है। 'घर-द्वार' में पाये जाने वाले शब्दों को अलग-अलग भी प्रयोग किया जा सकता है, पर साथ-साथ प्रयुक्त करने से अर्थ में एक प्रकार की नवीनता आ जाती है;

जैसे • घर अच्छौ है = घर अच्छा है

द्वार (दोरो) अच्छो है = दरवाजा अच्छा है

घर-द्वार अच्छो है = घर और दरवाजा अच्छा है अर्थात्—जमीन-जायदाद अच्छी है।

इसलिये इस 'घर-द्वार' शब्द को समस्त-पद अथवा समास-शब्द कहेंगे। इसकी चर्चा भी संक्षेप में की गई है।

—संस्कृत के लिये कहा गया है कि उसके सभी शब्द किसी न किसी धातु पर आधारित हैं। वस्तुतः यह बात सर्वांशतः संस्कृत पर भी लागू नहीं होती

और हिन्दी के लिये जिसमें न जाने कितने विदेशी शब्द भी आ गये हैं, किस प्रकार धातु निर्धारित की जा सकती है ? संस्कृत के शब्द 'कर्म' को ही लीजिये। संस्कृत में √कृ धातु स्पष्ट है पर काम, चाम, धाम, हिन्दी शब्दों का विश्लेषण करके क्या, 'का', 'चा', 'धा' धातु निकाली जा सकती हैं ? वस्तुतः ऐसे तथा अन्यान्य विदेशी शब्दों को हम हिन्दी-व्याकरण की दृष्टि से 'अधातुज' मान कर ही चलेंगे। नीचे बुन्देली शब्दों की रचनात्मक विधा को चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

धातुज ——
|—शब्द-प्रकृति—|——मूल शब्द (=प्रकृति)
|——यौगिक शब्द (=प्रकृति + प्रत्यय)
अधातुज——
|——समास शब्द (=प्रकृति + प्रकृति)

बुन्देली धातुओं को सामान्य, यौगिक तथा ह्रस्वीकृत, इन तीन वर्गों में विभक्त किया गया है उन सभी पर आधारित शब्दों को धातुज कहा जा सकता है ; यथा—

चरइया [चर सामान्य धातु + अइया = आई + आ] = चराई करने वाला अर्थात् चरने वाला

चरवइया [चराव् यौगिक धातु + अइया = आई + आ] = चराई कराने वाला अर्थात् चराने वाला

खबइया [खब् ह्रस्वीकृत + अइया = आई + आ] = खिलाई करने वाला अर्थात् खाने वाला

उक्त सभी शब्द यौगिक हैं तथा धातुज प्रकृति को लेकर खड़े हैं। पर्याप्त संख्या में मूल शब्द भी धातुज प्रकृति वाले मिलेंगे। पर वे सभी सामान्य धातु पर आधारित संज्ञा शब्द होंगे। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

खेल [खेल- + ०] = खेल
मार [मार- + ०] = मार
दौड़ [दौड़- + ०] = दौड़
हार [हार- + ०] = हार
कसक [कसक- + ०] = कसक

सामासिक पदों में भी धातुज प्रकृति पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुई है, यथा—

घर-घुसा = घर में घुसा (√घुस--) रहने वाला
दिन-लौटें = दिन के लौटने (√लौट-) पर अर्थात् शाम को
दौड़ा-पदौड़ी = इधर-उधर कूद-फांद करना, (दौड़-आ—प-दौड़ + ई)

अधातुज मूल शब्द बुन्देली में असंख्य मिलेंगे, राजा, रानी, काम, घर, ईंटा, पथरा, हाँत, पाँव आदि, जिनका विशेष-अध्ययन शब्दकोष ही करा सकता है। यौगिक शब्दों की भी कमी नहीं है, यथा—

कमाई [काम > कम + आई] = काम से प्राप्त अर्थात् आमदनी
बिरहानौ [बेर > बिर + हानौ] = बेर के वृक्षों का स्थान
चमरौरा [चमार > चमर + औरा] = चमारों के रहने का स्थान
हँतनी [हाँती > हँत् + नी] = हथिनी

वस्तुतः प्रत्यय जुड़ने में सामान्य प्रकृति का ह्रस्वीकृत रूप ही रह जाता है। इस सम्बन्ध को क्रिया विषय-क्रम ३.२ में स्पष्ट किया जा चुका है। इस अधातुज कोटि में आने वाली सामासिक पदावली भाषा में प्रचुर मात्रा में मिलेगी जिसके उदाहरण यथास्थान संग्रहीत हैं।

२. बुन्देली के कुछ प्रमुख प्रत्यय इस प्रकार हैं। निकटस्थ बोली रूपों का सहारा लेकर ऐतिहासिक विकास की ओर भी संकेत कर दिया गया है।

--आ (पुल्लिग) एवं --ऊ (स्त्रीलिंग)— यह भाषा का सजीव एवं सबल प्रत्यय कहा जा सकता है।

मरखा √मार ~ मर + क + ह् + आ = मारने वाला (बैल आदि)
मरखू √मार ~ मर + क + ह् + ऊ = मारने वाली (गाय आदि)
[तुलना कीजिये—बैसवाड़ी मरकहा]
मुता √मूत ~ मुत + आ = बहुत मूतने वाला
मुतू √मूत ~ मुत + ऊ = बहुत मूतने वाली
चुट्टा √ *चोर ~ चुर + *ट + आ = चीजें चुराने वाला
चुट्टू √ *चोर ~ चुर + *ट + ऊ = चीजें चुराने वाली

['चोरना' धातु सामान्य वर्ग की है जो कि बुन्देली में प्रचलित नहीं, हिन्दी-क्षेत्र की कुछ बोलियों में इसका यह रूप शेष है—साथ ही *ट प्रत्यय भी सजीव नहीं—किसी पुरानी सन्धि ने र और ट में समीकरणत्व उपस्थित कर दिया है]

फिरत्ता √ फिर + त् + त् + आ = घूमने-फिरने वाला
फिरत्तू √ फिर + त् + त् + ऊ = घूमने-फिरने वाली
['त्' का द्वित्व हेय-अर्थवाची है]

घर-घुसा, घर-घुसू (घर में पड़े रहने वाले), खब्बा, खब्बू (अधिक खाने वाले), ढिंगा, ढिंगू (आयु के अनुसार समझ न रखने वाले), लबरा, लबरू (झूठ बोलने वाले), उचक्का, उचक्कू (जो कुछ मन आया, कहने, करने वाले)।

—अइया—यह प्रत्यय भी सजीव है, स्त्रीलिंग एवं पुल्लिग दोनों में प्रयुक्त होता है —

लिखइया √ लिख + आई + आ = बहुत लिखाई करने वाला
सुबइया √ सुब + आई + आ = बहुत सोने वाला
झरइया √ झर + आई + आ = झाड़ने-फूंकने वाला

[ऐसा जान पड़ता है कि –आई– प्रत्यय भी दो भिन्न प्रत्ययों का योग है। इसमें –आ– प्रेरणार्थक है जो कि अपना अर्थ खो चुका है।]

—अईंयाँ—इस प्रत्यय का स्थान –बाल– (–वार–) लेता जा रहा है, विरल प्रयोग इस प्रकार हैं —

मौड़ा हुबईंयाँ है = लड़का पैदा होने ही वाला है।
मैं जबईंयां तो = मैं जाने ही वाला था।

[धातु-रूप निश्चय ही √ हो > हुब्, √ जा > जब् हैं]

—वार (–आर) निर्जीव प्रत्यय ही कहा जाएगा। इसका स्थान—अइया ने ले लिया है —

दिबार √ दे > दिब + आर = देने वाला
लिबार √ ले > लिब + आर = लेने वाला
पुछवार √ पूछ > पुछ + वार = पूछने वाला
सुनवार √ सुन + वार = सुनने वाला

—बार— (**—वार—**), यह प्रयोग–बहुल प्रत्यय है।

घरबारो घर + बार = घरवाला, घर का मालिक, अर्थात् पति
घरबारी घर + बार = घरवाली, घर की मालकिन अर्थात् पत्नी
गभवारो *गभ < गर्भ + वार = दूध पीने वाले बच्चे के समान
गभवारी *गभ < गर्भ + वार = दूध पीने वाली बच्ची के समान
लरकौंरी *लरका + वार = लड़का (लड़की) वाली, ऐसी स्त्री जिसके बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं।
लरकौरो *लरका + वार = लड़का (लड़की) वाला ऐसा पुरुष जिसके बच्चे अभी छोटे-छौटे हैं।

—हार— (**—आर—**) यह प्रत्यय बहुलता से प्रयुक्त होता है।

लकड़हारो ~ लकड़हाव (स्वर मध्यवर्ती –र– का लोप)
*लकड़ + हार = लकड़ी को काटने वाला
गैल्हारो ~ गैल्हाव (स्वर मध्यवर्ती –र– का लोप)
गैल + हार = गली चलने वाला

पिसन्हारी ~ पिसनारी (न्ह ~ न के प्रयोग में क्षेत्रगत अन्तर है)
√पीस ~ पिस + न + हार (-आर-) = पीसने का काम करनेवाली (नौकरानी)

गुबरहारी गोबर ~ गुबर + हार = गोबर से कन्डे आदि बनाने वाली (नौकरानी)

रुटन्हारी ~ रुटनारी
√रोटी ~ *रुट + न + हार (-आर-) = रोटी बनाने वाली (नौकरानी)

नचन्हारी ~ नचनारी
√नाच ~ नच + न + हार (-आर-) = नाचनेवाली

पनहारिन पानी ~ पन + हार + इन = पानी भरने वाली

मनहारिन *मनि + हार + इन = मणियों (मूँगे आदि दानों) को बेचने वाली

-वाह- यह प्रत्यय अभी सामासिक स्थिति में है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं।

हरवाहौ हर + वाह = हल को वहन करने वाला अर्थात् हल चलाने वाला (नौकर)

चरवाहौ चारा ~ चर + वाह = चारा लाने के लिये, फिर गायों आदि को चराने के लिए रखा नौकर

गड़वाहौ गाड़ी ~ गड्डा + वाह = गाड़ी हाँकने वाला (नौकर)

-ऊ- यह प्रत्यय सजीव नहीं कहा जा सकता है—शब्दावलि अवश्य मिल रही है। यथा—

खटाऊ — *खट + आ + ऊ = अधिक दिनों तक चलने वाला

उड़ाऊ — उड़ + आ + ऊ = उड़ाने-खाने वाला

-उवा- ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि दो, ऊ + आ कर्तृवाचक (agentive) प्रत्यय ही मिलकर एक हो रहे हैं :

टहलुआ टहल + ऊ + आ = टहल (लीपना-पोतना) करने वाला

पारुआ पहर + ऊ + आ = पहरा देने वाला

जरुवा जर + ऊ + आ = जलने (ईर्षा करने) वाला

-उवा- ह्रस्वार्थ प्रत्यय रूप में-आ सबल है :

घरुवा = छोटे पौधों का थाला

जरुवा > जउवा = अँकुवा

—ई,—आ— निम्न शब्दों में पाये जाने वाले ये प्रत्यय मूलतः कर्तृवाचक ही जान पड़ते हैं, पर अब वे जातिवाचक हो गए हैं; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार धोबी, बढ़ई आदि में—ई प्रत्यय सजीव नहीं कहा जा सकता, पर है कर्तृवाचक ही। -न प्रत्यय के बाद इनका प्रयोग सम्भव है।

कतन्नी—कतर + न + ई = कतरन करने वाला- पात्र, कैंची
चलनी—चाल ~ चल + न + ई = चालन करने वाला पात्र
छजना—छाज ~ छज + न + आ = छाजन करने वाला पात्र
छन्ना —छान ~ छन + न + आ = छानन करने वाला कपड़ा
दोहनी—दोह + न + ई = दोहन करते वाला पात्र

वस्तुतः ये प्रत्यय 'न' के साथ मिलकर जाति, एवं भाव, सूचक संज्ञाओं की अधिकाधिक सर्जना करते हैं। ओढ़ना, बिछौना, खिलौना, चढ़ौना (जो चढ़ाया जाए), चटनी, लेन, देन, चलन आदि शब्दों की सृष्टि होती है।

ह्रस्वार्थक तथा हेयार्थक

–इया— लघुतावाचक प्रत्यय, इसमें –ई स्त्रीवाचक तथा –आ हेयार्थक प्रत्यय का योग है, परिणामतः —ई > –इय–।

डबिया < डब्बा + ई + आ [डब्बी = केवल जलाने की डिबिया के अर्थ में रूढ़ हो गया।]
फुरिया < फोड़ा + ई + आ = छोटा फोड़ा
डंडिया < डंडा + ई + आ = छोटा डंडा
दौरिया < दौल्ला = विशेष प्रकार की टोकरी
पन्हइया < पन्हा = जूते

–वा (—आ)

पुरवा < पुर (ह्रस्वार्थक)
चमरा < चमार (हेयार्थक)
कुरिया < कोरी (हेयार्थक)
कुढ़िया < कोढ़ी (हेयार्थक)
नउवा < नाऊ (हेयार्थक)

यही प्रत्यय पालतू जानवरों आदि के लिये भी लग जाता है, पर इसमें से हीनता अथवा लघुता का भाव समाप्त हो गया है। प्रथम वर्ग में पुल्लिंग तथा द्वितीय में स्त्रीलिंग शब्द संग्रहीत हैं—

घुड़वा (< *घोड़ा) घुड़िया (< *घोड़ी)
पड़वा (< *पाड़ा) पड़िया (< *पड़ी)

चिरवा (<*चिरा) चिरइया (<चिरई)
सुँघरवा (<*सुँघरा) सुँघरिया (<*सुँघरी)=सुअर
चौंखरवा (<*चौंखरा) चौंखरिया(<*चौंखरी)=चूहा
बिलरा (<*बिलार) बिलइया (<*बिलरिया<*बिलारी)
=बिल्ली
नौरा (<*न्योरा) नौरिया =नेवला
हिन्नाँ (<*हिरन) हिन्निया =हिरन

अन्यत्र भी इसके प्रयोग देखे गए हैं—

डुकरा (<डुकर) डुकरिया=बूढ़ा
लम्डा – लम्डिया = लड़का – लड़की

—ला —

गड्डा + ला=गड़ला, छोटी-सी गाड़ी
खाट + ला=खटोला, छोटी-सी खाट

स्त्री-प्रत्यय

-न, -नी, -इन, -आन, -आनी प्रमुख हैं। जान पड़ता है कि —न प्रत्यय ही संस्कृत के प्रमुख प्रत्ययों —ई तथा —आ के कभी पूर्व, कभी पर भाग में लगकर अनेकशः प्रत्ययों का स्वरूप धारण कर लेता है। वस्तुतः इन प्रत्ययों की प्रयोग-सीमाएँ निर्धारित करना बहुत कठिन है। इसके लिये तो लोक ही प्रमाण है। अभ्यास से सीखा जा सकता है कि किस शब्द में कौन सा प्रत्यय लगेगा। फिर भी कुछ नियम इस प्रकार है :-

—न— सामान्यतः स्वरान्त पुल्लिग शब्दों में जुड़ता है परिणामतः दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं।

(अ) काछिन < काछी + न
धोबिन < धोबी + न
नाउन < नाऊ + न
बानिन < *बानी + न <बनिया
हलवाइन < हलवाई + न

(ब) बढ़ैन < बढ़ई + न (—अइ>ऐ)
लड़ैन < लड़ई+न=सिआरिनी
गड़रैन < *गड़री+न=गड़रिन
पटैन < *पटई (पटवा)+न=रेशमी तागों को बटने का काम करने वाली

(स) पंडतान < पडित+आ+न

ठकुरान < ठाकुर+आ+न

–इन— सामान्यतः व्यंजनान्त पुल्लिग शब्दों में जुड़ता है यथा —

सुनारिन < सुनार+इन

लुहारिन < लुहार+इन

यदि इन व्यक्तियों के प्रति आदर का भाव है तो सुनारिन काकी, लुहारिन काकी आदि कहकर ही काम चलाया जाता है और यदि घृणा आदि का भाव प्रदर्शित करना है तो,

सुनरिया <सुनार+ई+आ

लुहरिया <लुहार+ई+आ

बसुरिया <बसोर+ई+आ

चमरिया <चमार+ई+आ

आदि कहते हैं। –ई प्रत्ययान्त सुनारी, लुहारी, चमारी आदि रूप भी मिल जायेंगे।

–नी इसके प्रयोग अत्यल्प हैं—

हँतनी <हाँती=हाथी

उँटनी <ऊँट

–इनी इसके भी प्रयोग अत्यल्प हैं–

लरकिनी = *लरक+ई+नी = नई बहू

–आनी यह प्रत्यय सजीव नहीं कहा जा सकता।

जिठानी < जेठ ~ *जिठ+आ+नी=जेठ (पति के बड़े भाई की) पत्नी।

द्योरानी < देवर ~ द्योर+आ+नी=देवर (पति के छोटे भाई) की पत्नी

–ई प्रत्यय वस्तुतः पुराना है; अतएव इसके सन्धि-नियम स्पष्ट नहीं है।

कक्की, काकी, कक्को <कक्का, काका=चाची

माँई <मामी <मम्मा+ई=मामी

लुगाई <लुगवा <लोग+ई=स्त्री

स्थान-वाचक

–आन— (—हान—)—यह सजीव प्रत्यय है।

सुक्लानी <सुकुल =शुक्ल ब्राह्मणों की गली

दिछतानौ <दीक्षित=दीक्षित ब्राह्मणों का मुहल्ला

बढ़यानौ < बढ़ई = बढ़ई के काम करने का स्थान
कुरयानौ < कोरी = कोरियों के रहने का स्थान
चौधरयानौ < चौधरी = चौधरियों का मुहल्ला
लुधयानौ < लोधी = लोधियों का पुरवा
रजपुतानौ < राजपूत = राजपूतों की अधिकता जहाँ हो

संभवतः निम्न शब्दों में भी यही प्रत्यय जान पड़ता है :-

ममानौ < मम्मा का घर
सिरहानौ < सिर की ओर का स्थान

-आंत (—यांत)

लुधांत ~ लुधयांत < लोध ~ लोधी = लोधियों के गाँव जहाँ अधिक हों।
कछयांत ~ कछवांत < काछी = जहाँ काछी रह रहे हों।
कुरयांत < कोरी = जहाँ कोरी रह रहे हों।
रठांत < राठ = राठ के समीपवर्ती गाँव

-औरा— यह प्रत्यय सजीव कहा जायगा—

चमरौरा < चमार + पुरा = चमारों का मुहल्ला
ढिमरौरा < ढीमर + पुरा = ढीमरों का मुहल्ला

अन्य संज्ञाएँ

-आव— यह प्रत्यय बहुलता से प्रयुक्त हो रहा है। सम्भव है इसमें —आ— प्रेरणार्थक एवं —व भावसूचक प्रत्यय हो।

जमाव जम—आव = भीड़ एकत्र होना
भराव भर—आव = गढ्ढा भरे जाने की आवश्यकता
चढ़ाव चढ़—आव = दुल्हिन के लिये भेंट
चलाव चल—आव = द्विरागमन (संभवतः बुन्देलखण्ड में पहिले विवाह में पत्नी की बिदा न होती होगी

-ई— प्रेरणा-रूप प्रत्ययों के साथ के उदाहरण पर्याप्त हैं, यह प्रत्यय सजीव है—

सुबाई ~ सुबवाई √ सुब < सो- + आ (-वा) + ई = सोने का कार्य
भराई ~ भरवाई √ भर + आ (-वा) + ई = भरने का काम
सुनाई ~ सुनवाई √ सुन + आ (-वा) + ई = सुनने का काम
सिमाई ~ सिमवाई √ सिम ~ सीं + आ (-वा) + ई = सिलाई

–याई (—आई) यह प्रत्यय भी बहुत चलता है। अर्थ में हीनता का भाव निहित है—

पंडित्याई ~ पंडताई < पंडित = पुरोहिती
लौँडयाई < लौँडा = लड़कपन
धुबयाई < धोबी = धोने का कार्य
गुरयाई < गुड़ = मिठाई

–आस— इस प्रत्यय से बने अधिक शब्द नहीं मिलेंगे—

मुतास < मूत ~ मुत + आस = मूतने की तीव्र इच्छा
कहास < कह + आस = कहने की तीव्र इच्छा
खबास < खा ~ खब + आस = खाने की तीव्र इच्छा
प्यास < पी ~ पि + आस = पानी पीने की इच्छा
भड़ाँस < भण + आस = कहने की इच्छा

–आँद— यह प्रत्यय विरलता से प्रयुक्त है।

खटाँद < खट्टा ~ खट + आँद = खट्टापन
तिलाँद < तेल ~ तिल + आँद = तेल की अधिकता सूचक

–क ~ —का संज्ञा-सूचक प्रत्यय है—

बैठक = एक प्रकार की कसरत
धमक = धम-धम की आवाज
खटका = खट-खट की आवाज से चिन्ता
कुल्का = कोल + का = छेद
टुल्का = *टोल + का = छेद
पट्का = पट + का = कपड़ा

संज्ञा वर्ग के अन्तर्गत तो अनेकानेक प्रत्यय आ सकते हैं, पर ऊपर कुछ विशेष सजीव प्रत्ययों की संख्या ही दी गई है। दूसरे खाबो-पीबो, घूम्बो में पाया जाने वाला —ब प्रत्यय, लेन-देन, चलन, बोलन में प्रयुक्त —न प्रत्यय, संज्ञा खपत, बचत आदि तथा अधिकाधिक विशेषणों की सृष्टि करनेवाला —त (—ता, —ती) प्रत्यय यहाँ संकलित नहीं है। वस्तुतः इनकी विशेष चर्चा क्रिया–प्रकरण में कर दी गई है।

विशेषण

कृदन्तीय विशेषण जो कि वर्तमान काल एवं भूतकाल की रचना में सहयोगी हैं, उनकी फिर से चर्चा अभीष्ट नहीं समझी गई है। और न

सर्वनाम मूलक विशेषणों में पाये जाने वाले प्रत्ययों को ही दोहराया गया है। वे यथास्थान क्रिया एवं सर्वनाम प्रकरण में मिल जाएँगे।

-माँ— यह सजीव प्रत्यय है।

छटमाँ < *छट < षष्ठ = छठवाँ
नमाँ < नव = नवाँ
मिल्माँ < मिल = मिले हुए

-वाँ— यह प्रत्यय बहु प्रचलित है।

भरवाँ (भाँटा) = भरे हुए बैंगन की तरकारी
छटवाँ (के आम) = छाँटे हुए आम
जड़वाँ (पैंजना) = जड़े हुए (पैंजना)
जुड़वाँ (मौड़ा) = जोड़े के रूप में पैदा होने वाले लड़के

-हा

पनहा (साँप) = पानी में रहने वाला
कुरहा (हिसाब) = जबानी हिसाब (संभवतः कोरियों से सम्बन्धित)

-इल— अधिकता सूचक प्रत्यय कहा जायगा।

पथरैल < पथरा + इल = पत्थरों वाली
खपरैल < खपरा + इल = खप्परों वाली
कँकरैल < ककरा + इल = कंकड़ वाली
गँठैल < गांठ + इल = गाँठों वाली
नसैल < नसा + इल = नशा करने वाला

-अक— लगभग का अर्थ दे रहा है। ऐतिहासिक सम्बन्ध संभवतः 'एक' से है।

पचासक आदमी = लगभग पचास आदमी
सेरक ~ सेराक दूध = लगभग सेर भर दूध
अत्पइयाक नेनूँ = लगभग आधा पाव मक्खन

-गुनौ— संस्कृत–गुण से सम्बन्धित यह प्रत्यय संख्यावाचक विशेषणों में बहुलता से जुड़ा हुआ मिलता है—

दुगुनौ = दो गुना
चौगुनौ = चार गुना
अठगुनौ = आठ गुना

—हरौ— यह प्रत्यय भी संख्यावाचक विशेषणों में जुड़ता है—

दुहरौ	=	दुहरा
तिहरौ	=	तिहरा
चौहरौ	=	चौहरा

—अर— केवल दो, तीन तथा चार संख्याओं में जुड़ता है।

दूनर < *दोन + अर = दुहरा
तीनर < तीन + अर = तिहरा
चउअरे < *ञौ + अर = चौहरा

अन्य प्रत्यय

—क— वस्तुतः यह प्रत्यय धातु-निर्माणक है, अनुकरणात्मक या लगभग समान भाव रखने वाली धातुओं का सृजन करता है। इस कोटि की धातुओं की संख्या अनगिनत है—

खुलक	=	बीच से निकल जाना
गुलक	=	कोंचना
चुलक	=	शरारत करना
बुलक	=	कुल्ला करना
मुलक	=	झाँकना
पटक	=	गिराना
हटक	=	रोकना
मटक	=	शरीर-अंगों को साभिप्राय हिलाना
सटक	=	खिसक जाना
लटक	=	रुक जाना
भटक	=	रास्ता भूल जाना
चटक	=	उछाल मारना, प्रस्फुटित होना

३. शब्द रचनात्मक प्रक्रिया में ऊपर प्रत्ययों की परिगणना करा दी गई है। ये सभी प्रत्यय शब्द के पर-भाग में जुड़कर एक नये अभिधार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। पूर्व भाग में जुड़ने वाले प्रत्यय (= उपसर्ग) भी भाषा में हैं, पर शब्द-रचना की यह प्रवृत्ति सजीव नहीं कही जा सकती, परम्परागत उपसर्गों के अवशेष चिह्न मिलेंगे, जिन्हें 'उपसर्ग' रूप में अलग करना प्रायः सम्भव नहीं है। उखाड़नै (उत्), पछाड़नै (प्र–) निकरनैं (नि–) बिगारनैं (बि–), औगुन (अव–), उकास (अव–) अजर-अमर (अ–) आदि

ऐसे ही उपसर्ग हैं। कुछ विदेशी उपसर्गों का प्रवेश अवश्य हुआ है, पर उनको भी सजीव कहना सम्भव नहीं है; जैसे नालाक (ना–), बेचैन (बे–), बच्चलन (बद्–) आदि, पर कुछ नये उपसर्गों का विकास होता दृष्टिगत हो रहा है। जैसे—

–अत्– (अद्–)—अत्पई <अध् ~ अद् ~ अत् = आधा पवा
अत्पको <अध् ~ अद् ~ अत् = आधा पका
अत्पर <अधू ~ अद् ~ अत् = न ऊपर न नीचे, अधर में
अद्चुरो <अध् ~ अद् ~ अत् = आधा पका हुआ

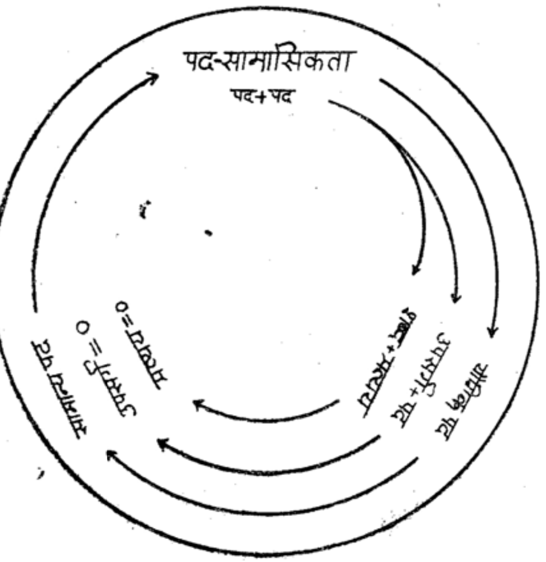
निम्न उपसर्ग संस्कृत में विशेषण रूप में ही मान्य था और कर्मधारय समास के अन्तर्गत परिगणित था।

–कु– कुचींदों <कुत्सित + चित्त = गिरा हुआ चित्त वाला
कुलच्छ <कुत्सित + लक्षण = गिरा हुआ आचरण
कुभक्क <कुत्सित + भक = बुरी या अशुभ बात

–अन्– (अ–)— संस्कृत का ही अ–(अन–) प्रत्यय है।
अनमनौ = उदास
अनगिनती = बेशुमार
अलौनौ = बिना नमक के
अनवासौ = जो अभी तक प्रयोग में नहीं लाया गया था।
अनसुनी = न सुना हुआ
अनगोए = बिना गूँथे हुए (बाल)

४. भारतीय आर्य भाषाओं में एक ऐसा चक्र चलता हुआ मिल रहा है, जिससे वाक्य में प्रयुक्त होने वाले कोई-कोई दो शब्द सामासिक रूप में जुड़ते हैं और फिर पूर्व अथवा पर भाग के शब्द घिसघिसाकर क्रमशः उपसर्ग एवं प्रत्यय की कोटि में आ जाते हैं। कालान्तर में ऐसी भी स्थिति आ जाती है कि उपसर्ग और प्रत्यय को शब्द से पृथक नहीं किया जा सकता। कभी-कभी यह प्रत्ययात्मकता पद-रचनात्मक विभक्तियों में विकसित हो जाती है; और इस प्रकार कल का सामासिक शब्द एक लम्बी यात्रा के पश्चात केवल एक साधारण पद रह जाता है फिर उनकी ध्वनि एवं अर्थ-परम्पराओं का मेल बिठाना मुश्किल हो जाता है। इस तथ्य के उदाहरण स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किये जा चुके हैं; यथा, संज्ञा, विषय क्रम १३, क्रिया, विषयक्रम ५, १२।

परिवर्तन के इस क्रम को निम्न चक्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—



उक्त तथ्य निम्न रूप में भी व्यवस्थित हो सकता है—

i)	पद	+	पद	(सामासिकता)	अर्ध पक्व	
	उप०	+	पद	(यौगिक)	अत्पको	उद् + गमन्
	०	+	पद	(मूल शब्द)	—	उगनैं
ii)	पद	+	पद	(सामा०)	चर्मकार	दारिकायै कृते
	शब्द	+	परसर्ग प्रत्यय	(यौ०)		दारिआए केडिआए दारिका को
	शब्द	+	०	(मूल०)	चमार	कदम्बक, जेहिक

५. सामासिकता के विकास की इस प्रवृत्ति को स्थान अथवा व्यक्तिनामों के आधार पर भलीभाँति स्पष्ट किया जा सकता है। वस्तुतः पुरा (रावतपुरा, लोदीपुरा), गवाँ (मझगवाँ, भटगवाँ), लाल (राधेलाल, प्यारेलाल), बाई (रामबाई, स्यामबाई), दुलइया (झनकदुलइया, गोईदुलइया) आदि सैकड़ों प्रत्यय इसी बहुव्रीहि समास की स्थिति से ही गुजर रहे हैं। बुन्देली से ऐसे

देशी-विदेशी-आगत प्रत्ययों की सूची दी जा सकती हैं जो कि अभी परसर्गीय स्थिति में हैं।

—वालौ, वाली

इटाएवाली = इटावा से व्याहकर लाई जाने वाली (दुलहिन)
खुड़े वालौ = खुड़ौ (= गाँव से बाहर बीहड़ की झोपड़ियाँ) में रहनेवाला
नकरियन वालौ = लकड़ियों से सम्बन्ध रखने वाला

–दार—दारी

दानेदार सक्कर = दानों (दाना) +
नातेदार = नातौ (नाता) +
थानेदार = थानौ (थाना) +

—बाज

धोकेबाज = धौकौ (धोखा) +
नसेबाज = नसा (नशा) +

—लाल

बारेलाल = बारौ (= छोटा) + लाला (= पुत्र)
गोरेलाल = गोरौ (= गोरा) + लाला (= पुत्र)

—पन— बचपना, लौंडपन आदि शब्दों में तो यह प्रत्यय स्थिति में ही है पर निम्न उदाहरणों में उपर्युक्त कोटि निर्धारित की जानी चाहिए।

मोटौपन, मोटेपन नैं
सूदौपन, सूदेपन नैं

—दान

चूहेदानी = चूहा पकड़ने का एक बक्स

६. ऊपर विषयक्रम १. में दिये गये विभाजन के अनुसार समास शब्द वे हैं, जिनके संयोगी अवयव भाषा में स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में आते हैं। परन्तु पुनरुक्ति तथा ऐतिहासिकता की विकास-प्रवृत्ति के कारण ऐसी भी सामासिकता मिल जाएगी जिसे यौगिक शब्द के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता और न वह मुहावरों (phraseology) के अन्तर्गत ही आती है। वस्तुतः यह सामासिकता बुन्देली में दो पदों से अधिक की नहीं जान पड़ती। हम इन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं। अर्थ की दृष्टि से ये सभी अतिशय की सूचना देते हुए बहुब्रीहि स्थिति में हैं। महामना टैगोर, डॉ० चटर्जी, श्री दामले, इन्हें द्वन्द्व के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। पं० कामता प्रसाद गुरू ने इन्हें समाहार द्वन्द्व कहा है ? इसमें प्रथम पद सामान्यतः स्वतन्त्र रूप से भाषा में प्रयुक्त मिलता है।

पृष्ठ ४९५, ९६, ९७, हिन्दी व्याकरण, संशोधित संस्करण २००९,

ध्वनि समाहार

i) रोटी-ओटी = रोटी आदि खाद्य-सामग्री
आटा-साटा = आटा आदि सामान
अंट-संट = व्यर्थ का

ऐसा जान पड़ता है कि प्रथम अवयव का प्रारम्भ यदि व्यंजन से है तो पुनरुक्त पद का विधान व्यंजन-सहयोगी स्वर से प्रारम्भ होगा और यदि प्रथम अवयव स्वर से शुरू होता है तो द्वितीय अवयव स् व्यंजन को पूर्वभाग में लेकर पुनरुक्ति अपनाएगा। कुछ अपवाद अवश्य मिलेंगे। यथा—

झूंट-मूंट = झूठ
साँच-माँच = सचमुच
ढुल-मुल = अनस्थिर
टेढ़ौ-मेढ़ौ = टेढ़ा

ii) हाँक-हूँक = (गाड़ी) हांकना, चलाना
मार-मूर = पीटना
पा-पू = पाना
पसार-पसूर = फैलाना
नोंच-नाँच = नाखून से खरोंचना
पी-पा = पीना
झूम-झाम = झूमना
सो-सा = सोना
दौड़-दाड़ = दौड़ना
खेल-खाल = खेलना
देख-दाख = देखना
पैर-पार = तैरना
समेट-समाट = समेटना
पर-परू = पड़ना
चल-चलू = चलना

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि द्वितीय उक्ति में सामान्यत: धातु-स्वर बदल जाता है। ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वर अ में, आ स्वर ऊ में बदलने की प्रवृत्ति रखता है। धातु-स्वर -अ- वाली धातुएँ पुनरुक्ति के पश्चात् —ऊ अन्त स्वर का योग ग्रहण करती हैं। —इ, —उ, के लिये, आगे व्याकरण वर्ग देखिए।

iii) धक्कम-धक्का = धक्के की अतिशय स्थिति
अद्धम-अद्धा (आधौंआध भी) = ठीक आधा

कुस्तम-कुस्ता = एक दूसरे को उठाने पटकने की स्थिति
टालम-टूल = टालने की विशेष पद्धति

नहीं कहा जा सकता कि उक्त प्रयोगों में ऐतिहासिक विभक्ति-चिह्नों के अवशेष नहीं हैं।

iv) आमने-सामने, अड़ोस-पड़ोस, आस-पास, ऐंड़ा-बेंड़ा, इने-गिने, इर्द-गिर्द, में प्रथम पद ध्वन्यात्मक रूप में विकसित हैं और दौड़ा-पदौड़ी (प < प्र, संभवत: उपसर्ग) हल्ला-गुल्ला, उलट-पुलट, उथल-पुथल, गलत-पलत, साँतौ-भाँतौ = शान्ति से बैठने वाला आदि इक्के-दुक्के प्रयोग अपनी-अपनी व्यवस्था किए हुए हैं।

व्याकरण समाहार—

एक ही शब्द के दो व्याकरणिक रूप तीव्रता का अर्थ स्पष्ट करते हुए साथ-साथ प्रयुक्त हो जाते हैं—

i) रोटी खा-खबा लेव = खाना खा डालो
दूद पी-पिबा लेव = दूद पी डालो
तनक चल-चला लेव = थोड़ा इधर-उधर चल लो
ऊनैं सुन-सुना लओ = उसने सुन लिया
सब नैं दिख-दिखा लओ = सबने देख लिया
कपड़ा नुंच-नुचा गओ = कपड़े में खरोंच अधिक लग गयी।

ii) खबो-खबाओ बेला = ऐसा कटोरा जिसमें रखा खाना खाया जा चुका है।
खबी-खबाई बिलिया = ऐसी कटोरी जिसमें रखा खाना खाया जा चुका है।
फटो-फटाओ अलफा = फटा हुआ कुर्ता
फटी-फटाई कमींच = फटी हुई कमीज
पटी-पटाई सौदा = ऐसी चीजें किसका भाव तय हो चुका है

iii) खाओ-खबाओ आय = (वह जो) खा चुका है
गओ-गबाओ लौट आओ = गया हुआ (वह) लौट आया
गाईं-गबाई गारीं = ऐसे स्त्री-गीत जिनको गाया जा चुका है

iv) चला-चली मैं छूट गओ = चलने की जल्दी में छूट गया
देखा-देखी आओ = (वह) दूसरे को देखकर आया

अर्थ-समाहार—

इसके अन्तर्गत i) लगभग समान अर्थ रखने वाले ii) अथवा विरोधी अर्थ वाले, देशी-विदेशी दो शब्द कालान्तर में एकनिष्ठ होकर तीव्रता, अतिशयता

अथवा उसी के निकट कोई लाक्षणिक अर्थ विकसित कर लेते हैं। ऐसे प्रयोग बुन्देली अथवा हिन्दी क्षेत्र की अन्यान्य बोली-रूपों में भरे पड़े हैं। अधिकांशत: इसका कोई पद लुप्त-प्रयोग वाला होता है।

i) काम-काज हो रओ = ∠ कर्म + ∠ कार्य, काम हो रहा है
खेल तमाशा हो रए = कई प्रकार के खेल हो रहे हैं।
काम-धाम नईं होत = ∠ कर्म + ∠ धर्म, काम नहीं होता
[धाम—लुप्त प्रयोग]
काम दंद होतें = ∠ कर्म + ∠ द्वन्द्व, काम हो रहा है
[दंद--लुप्त प्रयोग, दुंद चलता है]
चीज-बसत उठा ल्याव = चीज + वस्तु, गहने उठा लाओ
[वसत = चीज, लुप्त प्रयोग]
सपर-खोर लेव = सपरना + खोरना, नहा लो
[खोर-लुप्त प्रयोग]
देख-भाल लओ = देखना + भालना (सं०), देख लिया
[भाल, लुप्त प्रयोग]
सूज-बूज अच्छी है = सूझना + बूझना, समझ अच्छी है
[बूज-लुप्त प्रयोग]
गोड़ा-पाई मचाएँ = गोड़ो (पैर) + पाँव (पैर), इधर से उधर निकल रहा है
[पाई—लुप्त प्रयोग, पाँव चलता है]
चल-फिर चुको = चलना + फिरना, घूम लिया
नाटक-नौरा करत फिरत = इधर से उधर घूमता फिरता है,
[नौरा-लुप्त प्रयोग]
करता-कामदार सबई आए = काम पर नियुक्त सभी आए
राम-रहीम भओ चइए = नमस्कार होते रहना चाहिये
दोसदारी हो गई = दोस्त + यार + ई, मित्रता हो गई
डाँट-डपट देव = डाँटना + डपटना, डाट देना
छीना-झपटी न कर = छीनना + झपटना, छीनो मत
उचका-कूंदी न कर = उचकना + कूदना, उचको मत
खेलत-कूंदत फिरत = खेलना + कूदना, खेलता फिरता है
औने-पौने में ल्याव = ऊन (सं०) + पौने = ३/४
थोड़े कम में ले आओ

उतै कथा-बारता होत = कथा + वार्त्ता = वहाँ धार्मिक कथाएँ होती हैं
[बारता—लुप्त प्रयोग, बारतालाप चलता है]
सज-धज अच्छी है = सजना + ध्वज = साज-समान अच्छा है
[दोनों लुप्त प्रयोग, साज, धजा अलग-अलग चलते हैं]
सोच-बिचार न करो = सोचना + विचारना = चिन्ता न करो
कपड़ा-लत्ता लौ नइँयाँ = कपड़ा + लत्ता = कपड़े भी नहीं हैं
[लत्ता = फटे कपड़े के अर्थ में चलता है]
बासन-भाँड़े लौ नइँ जुरे = बासन + भाण्ड = बर्तन भी नहीं इकट्ठे हो सके
[भाँड़े लुप्त प्रयोग]
बिन्नाँ-सेली चलौ = बिन्नाँ (= छोटी ननद) + सेली < सहेली, मित्र चलो
बाल-बच्चन बाली है = बाल + बच्चा = बच्चों वाली है
[बाल लुप्त प्रयोग]
राह-रास्त पै लै आव = राह + रास्ता = ठीक रास्ते पर ले आओ
खींचा-तानी न करौ = खींचना + तानना = खींचिए नहीं
बीस-पचीस आदमी ते = लगभग पचीस आदमी थे

ii) कहा-सुनी हो गई = झगड़ा हो गया
[कहने पर, सुनना भी पड़ा]
ऊँच-नीच कौ ख्याल न करौ = थोड़ा ऊँचा होगा अथवा
थोड़ा नीचा, इस पर ध्यान न दो
आबा-जाई होत = आना-जाना होता है (थोड़ा सम्पर्क है)
[व्याकरणिक प्रत्यय लुप्त]
उठा-बैठी न करौ = उठना-बैठना न करो (अधिक सम्पर्क न रखो)

कतिपय 'समस्त पद' ऐसे भी हैं जिनके संयोगी पद अर्थ की दृष्टि से तो पर्याप्त भिन्न हैं पर परवर्ती पद के लुप्त प्रयोग ने उनके स्वतन्त्र अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर दिया है। ऐसे प्रयोगों, जैसे नकटा (नाक + कटा) पड़ोसी (प्रतिवेशी), लँगोटा (लिंग + पट्ट) आदि को हम यदि मूल अथवा यौगिक शब्द नहीं कह सकते, तो समास पद भी नहीं कहा जा सकता। वे योगरूढ़ पद की संज्ञा प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ हम ऐसे कुछ उदाहरण दे रहे हैं जिनके लुप्त-पद यदि स्वतंत्र पद नहीं, तो उनके निकट अवश्य हैं। ऐसे ही पदों को 'उपपद' की संज्ञा दी गई है।

iii) सेर-खाँड़ सक्कर = लगभग सेर भर शकर
[खाँड़ ∠ खण्ड, लुप्त प्रयोग]

कौने-आँतर = कोने में कहीं
[आँतर ∠ अन्तर, लुप्त प्रयोग]

हाथा-पाई = मारपीट
[पाई ∠ पात = √ गिर, लुप्त प्रयोग]

चिट्ठी-रसा = डाकिया
[रसा = ले जाने वाला, लुप्त प्रयोग]

पन-देवा = पानी देने वाला
[देवा का व्याकरणिक प्रत्यय विलुप्त है]

चरवाहौ = चारे को वहन करने वाला

हरवाहौ = हर को वहन करने वाला

नीचे परम्परागत पारिभाषिक शब्दावलि वाले कतिपय उन समास-शब्दों के उदाहरण दिए जा रहे हैं जो कि i) उभय पद प्रधान (द्वन्द्व) ii) द्वितीय पद प्रधान (तत्पुरुष, कर्मधारय) तथा iii) दोनों पदों के आधार पर विकसित कोई अन्य अर्थ रखने वाला (बहुव्रीहि), कहे गये हैं—

द्वन्द्व

बाई-दद्दा = माता-पिता
गिल्ली-डण्डा = गिल्ली तथा डण्डा
[एक खेल में प्रयुक्त उपकरण]
पटा-बिल्लाँ = पाटा तथा बेलन
चूल्हौ-चकिया = चूल्हा + चकिया
परों-नरौं = परसों तथा इसके बाद वाले दिनों में
हाँत-पाँव = हाथ तथा पैर

तत्पुरुष कर्म —लाप-काढ़ = लाभ को निकाल कर
मनन-बाँधो = मनों को बाँधने वाला
हाँती-डुब्बाँव = हाथी को डुबाने वाला
सेर-भरौ = सेर को भरने के बराबर
करण —मूं-माँगो = मुंह से माँगा हुआ
अपादान—देश-निकारौ = देश-निकाला
सम्बन्ध —दिन-लौटैं = दिन के लौटने पर
राम-धुई = राम की दुहाई

अधिकरण—	रतजगौ	=	रात भर जागना
	घुड़चढ़ी	=	घोड़े पर चढ़ने की क्रिया
कर्मधारय—	अन्तगाँव	=	दूसरे गाँव को
	छै थोक	=	छै थोक (मुहल्लों) वाला गाँव
बहुब्रीहि—	राई-भरौ	=	राई के समान अर्थात् लड़का
	चौंटा-भरौ	=	चिउँटा के समान अर्थात् लड़का
	तिलचट्टा	=	तिल्ली के चटकने का परिणाम, तिल्ली की बौंड़ी
	बिजरानी	=	ब्रज की रानी अर्थात् राधा या किसी स्त्री का नाम
	जगरानी	=	संसार की रानी अर्थात् सरस्वती या किसी स्त्री का नाम
	औघड़दानी	=	बिना अवसर के दान देने वाले अर्थात् महादेव
	बाराबाट	=	बारह जगह हिस्सा बाँटना अर्थात् बरबाद करना
	मनमुटाव	=	मन का मोटा होना अर्थात् बैर

वाक्य रचना

१. वाक्य भाषा की एक सुगठित इकाई कही गई है। यह इकाई अपने अल्पतम रूप में शब्दात्मक भी हो सकती है। आओ, बैठो, ऐसे ही शब्दात्मक वाक्य हैं। पर कभी-कभी व्यवहारिकता की सीमा लाँघ जाने वाले सौ-सौ शब्दों के भी वाक्य लिखित भाषा में मिल जावेंगे। 'वाण' की कादम्बरी तथा 'सुबंधु' का दशकुमारचरित इस प्रकार के वाक्यों के पुष्कल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। पर यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वाक्य शब्दों का समूह-मात्र नहीं है, उनकी गठन में एक सुनियोजित व्यवस्था है। यह व्यवस्था ही वाक्य अथवा भाषा की रीढ़ है। शब्दों का चयन तो व्यक्ति-विशेष की शैलीगत विशेषता है। समसामयिक दृष्टि से एक स्थान की भाषा की संयोजित व्यवस्था में परिवर्तन संभव नही। वाक्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ कथन की पूर्णता की ओर संकेत करता है। इस प्रकार वाक्य 'कथन की पूर्णता की परिचायक एक सुनियोजित व्यवस्था ही कही जाएगी।' आधुनिक भाषाशास्त्री अभिव्यक्ति की इस पूर्णता को आधार न बनाकर वाक्य को परिसीमित करने के लिए, समयाविधि-सूचक विरामों तथा शब्दों की आरोह-अवरोह-सूचक सुर-लहरी (Intonation patterns) का आश्रय लेते हैं। सुनिश्चित रूप से अंत में आने वाले पद भी सीमा निर्धारण कर सकते हैं। वस्तुतः 'वाक्य' के अध्ययन का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना कि पद रचना का अंकित किया गया है। पर यहाँ संक्षेप में बुन्देली वाक्य-रचना की सामान्यताओं पर ही विचार किया जा रहा है।

विराम चिह्न

२. भाषा-प्रवाह में जिन समयावकाशों की आवश्यकता होती है, उन्हें विराम स्थलों के रूपों में स्वीकार किया गया है। ध्वनि-विचार, विषय-क्रम २९ में ऐसे दो विरामों की चर्चा की जा चुकी है ; जो क्रमशः अक्षरों एवं शब्दों के मध्य अनिवार्य समझे गए हैं। पद-संहितियों में भी इन विरामों की आवश्यकता है पर वे केवल अर्थपरक नहीं; उनका अस्तित्व सुर-लहरी पर भी आधारित है। यथा—

i) भौनी बसोर खाँ बुलाव = (तुम) भौनी बसोर को बुलाओ

ii) भौनी, बसोर खाँ बुलाव = भौनी, (तुम) बसोर को बुलाओ

निस्सन्देह 'भौनी' के पश्चात् का यह अल्पविराम अर्थ की दृष्टि से महत्वपूर्ण है पर वाक्य के अर्थान्तरों को सुर के आरोह-अवरोह से भी स्पष्ट किया जा सकता है। और भी,

'बौ हारो-थको आय' वाक्य में 'हारो-थको' पद 'बौ' के सम्बन्ध में विधान कर रहा है, जब कि 'बौ हारो-थको आय, परतइँ सो गओ' वाक्य में 'हारो-थको आय','बौ' के 'सोने' के कारण के रूप में अंकित है। वस्तुतः यह अभिव्यंजना एक अल्पविराम के माध्यम से ही सुस्पष्ट की जा सकती है। भाषा में एक पूर्ण विराम, वाक्य की सीमान्त-स्थिति की आवश्यकता है। लिखित भाषा में पाए जाने वाले अन्यान्य चिह्न जैसे डैश, सेमीकोलन, कोलन, आदि संभवतः एक कथन से दूसरे कथन की भिन्नता प्रदर्शित कराने वाले अलंकरण हैं। बोल-चाल की भाषा में सुर-लहरी इस कार्य की पूर्ति करती रहती है। यथा—

बौ साऊकार बनकें चलत = वह, साहूकार बनके चलता है।

बौ साऊकार बनकें चलत = वह साहूकार, ढौंग करता है।

'यशोदा और कृष्ण' केखौ लिखो है

= 'यशोदा और कृष्ण' पुस्तक किसकी लिखी हुई है।

'यशोदा' और 'कृष्ण' केखे लिखे हैं

= 'यशोदा' और 'कृष्ण' पुस्तकें किसकी लिखी हुई हैं।

वस्तुतः यह अन्तर परवर्त्ती पदों से सुस्पष्ट है अतएव उद्धरण-चिह्न (Inverted commas) की आवश्यकता केवल लिखित भाषा का अलंकरण ही कहा जायगा।

सुर-लहर

३. सुर-लहर भी वाक्य के लाक्षणिक अर्थों की ओर संकेत करती है, पर उसको अंकित करने के साधन सुलभ न होने के कारण बुन्देली स्वरलहरी से उत्पन्न केवल प्रश्न, आश्चर्य ,बलात्मकता अदि भावों को स्पष्ट करने वाले तत्त्वों को ही यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है। वाक्य के सामान्य कथन को स्पष्ट करने वाला सुरलहर अवरोही होता है; यथा—

मैं बजारै जात हौं = मैं बाजार जा रहा हूँ

तुम रोटी बनइयो = तुम रोटी बनाना

पर 'प्रश्न' का अभिप्राय स्पष्ट करने वाला आरोह-अवरोह सर्वथा भिन्न है; यथा—

तैं बजारै चलिहत = क्या तू बाजार चलेगा ?

नईं जू = नहीं (सामान्य कथन)

नईं = क्या नहीं ?

अन्तिम शब्द-वाक्य में 'आश्चर्य' का मिश्रण है। वस्तुतः कभी-कभी वाक्य में प्रश्न तो नितान्त गौण हो जाता है, आश्चर्य की प्रधानता ही परिलक्षित होती है। यहाँ का सुर-लहर विलम्बित कहा जा सकता है; यथा—

हाय राम ! जा ज्वानी कैसें कटहै

= हे राम ! यह जिन्दगी कैसे कटेगी।

कभी-कभी प्रश्न-सूचक शब्द होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से वाक्य साधारण ही रह जाता है। यहाँ भी विलम्बित सुरलहर होगा। यथा—

अब तौहै का मारौं = अब तुझे क्या मारूँ।

उक्त सभी प्रकार के वाक्यों में बलाघात का योग हो सकता है। प्रश्न-सूचक पद तो बलाघात युक्त होते ही हैं, उनके अभाव में आवश्यकतानुसार अन्य पदों का बलाघात-युक्त प्रयोग किया जा सकता है। यथा—

मैं बजारै जाँव = क्या मैं बाजार जाऊँ ?

मैं बजारै जाँव = क्या मैं बाजार जाऊँ ?

मैं बजारै जाँव = क्या मैं बाजार जाऊँ ?

उपर्युक्त वाक्यों में क्रमशः 'जाने', 'बाजार' (जाने), तथा 'स्वयं को' (बाजार जाने) की अनुमति माँगी गई है। कहना न होगा कि प्रश्न के अन्तर्गत 'अनुमति' का भाव भी सम्मिलित है। इस प्रकार सुरलहर के आधार पर गठित वाक्य बुन्देली में तीन ही है—सामान्य, प्रश्नसूचक तथा विस्मयसूचक।

वाक्यों के प्रकार

४. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भाषा की स्वाभाविक गति में तीन-चार शब्दों वाला वाक्य ही प्रयुक्त होता है। यथा, एक राजा ते। ओखी दो रानीं

तीं। पर कभी-कभी कथन में तीव्रता लाने के लिए—एक राजा औ ओखी दो रानीं तीं, ऐसा भी सम्मिलित प्रयोग कर दिया जाता है। इसमें संयोजक तत्त्व तो रहता ही है, सुर-लहरी में भी यदा-कदा अन्तर आ जाता है। रचना की इस विधा को ध्यान में रखकर वाक्यों की निम्न कोटियाँ निर्धास्ति कर दी गई हैं—

साधारण वाक्य—जिनमें सामान्यतः उद्देश्य एवं विधेय, ये दो रचनात्मक संघटक (Constituents) अनिवार्य रूप से पाये जाते हैं।

उद्देश्य—जिसके सम्बन्ध में कुछ कहा जाए, यह कार्य (क्रिया) का सम्पादक कर्त्ता भी हो सकता है।

विधेय—उद्देश्य के सम्बन्ध में किया गया विधान, विधेय कहलता है।

संयुक्त वाक्य—जिनमें उपर्युक्त रचनात्मक संघटनों वाले दो या दो से अधिक साधारण वाक्यों का योग रहता है। यदि ये वाक्य समान स्तर वाले हैं तो उनमें से एक मुख्य और दूसरा समानाधिकरण वाक्य कहलाएगा। और यदि इन वाक्यों में कारण-कार्य-सा सम्बन्ध है तो एक मुख्य और दूसरे आश्रित उपवाक्य कहलाएँगे। अपने कथित सम्बन्धों के आधार पर वैयाकरणों ने इन्हें संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाविशेषण उपवाक्यों में विभक्त करके देखा है। वस्तुतः इन साधारण वाक्यों में रचना सम्बन्धी सामान्य लक्षणों—पद-क्रम, पद-अन्वय, पद-अधिकार—में कोई अन्तर नहीं मिलता। हाँ, दोनों वाक्यों के मध्य प्रायः समुच्चय बोधक विधान-चिह्नों, जिनकी चर्चा अव्यय, विषयक्रम ४, में हो चुकी है, का योग अनिवार्य रहता है। संयुक्त वाक्यों में मुख्य वाक्य पहले आता है, पर आवश्यक नहीं।

५. उद्देश्य एवं विधेय की स्थितियों को स्पष्ट करने वाले साधारण वाक्यों के कुछ वर्गीकृत उदाहरण इस प्रकार हैं। चिह्नित प्रथम वाक्य अथवा $_1$ से अंकित वाक्य 'उद्देश्य' की सूचना देते हैं।

कर्तृ प्रयोग

i) राम जात है = राम जा रहा है।
राम अच्छौ है = राम अच्छा है।
राम लड़का आय = राम लड़का है।
राम जैहैं = राम जाएँगे।
राम गओ = राम गया।

साथ ही, 'राम नैं रोटी खाई' (=राम ने रोटी खाई) तथा 'राम नैं मौड़िन खाँ दिखो' (=राम ने लड़कियों को देखा) आदि कारक-प्रत्यय सहित कर्त्ता एवं कर्म के प्रयोग भी इसी के अन्तर्गत आएँगे।

कर्म-कर्तृ प्रयोग

ii) रोटी खबत है =रोटी खाई जा रही है।
रोटी अच्छी है =रोटी अच्छी है।
रोटीं धरी आंय=रोटी रखी हुई है।

कर्म-भावे प्रयोग

iii) (ऊ कौ) खाबौ हो रओ=(उसका) खाना हो रहा है।
(ऊ की) खबाई हो रई =(उसका) खाना हो रहा है।
(ऊकौ) हाल बताओ गओ =(उसका) हाल बतलाया गया।
(ऊ की) बात बताई गई =(उसकी) बात बतलाई गई।

उपर्युक्त वाक्यों में या तो 'राम' क्रिया का सम्पादक कर्त्ता है या फिर, 'राम' के सम्बन्ध में कुछ विधान किया गया है। 'रोटी' वाले वाक्यों में 'रोटी' के सम्बन्ध में विधान है, अर्थात् यह वास्तविक कर्त्ता नहीं अपितु व्याकरणिक कर्त्ता है। तीसरे वर्ग के 'खाबो' एवं 'खबाई' के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है, अतएव व्याकरणिक कर्त्ता हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कर्म एवं भाववाचीय गठन रखने वाले साधारण वाक्यों का एक प्रकार और भी बुन्देली में बहु-प्रचलित है—

iv) मोहैं जानैं (है) =मुझे जाना है।
1

मोहैं रोटी खानैं (है)=मुझे रोटी खाना है।
1

रोटी खबनैं है =रोटी खाई जानी है।
1

पर इस गठन में आने वाले बहुत से वाक्यों, जैसे—मोहैं काम है (=मुझे काम है), मोहैं खेल आउत (=मुझे खेलना आता है), मोहैं मालूम है

(=मुझे मालूम है), मोहैं रुपइया चावनैं (=मुझे रुपया चाहिए), मोहैं जाओ चइए (=मुझे जाना चाहिए) तथा मोहैं भूक लगी (=मुझे भूख लगी है) को ध्यान में रखकर ऐतिहासिकता से दूर जाकर उक्त वाक्यों को निम्न प्रकार गठित करना होगा और कर्तृ प्रयोग में ले जाना होगा—

मोहैं जानैं है =मुझे जाना है।
मोहैं रोटी खानैं है=मुझे रोटी खाना है।
रोटी खबनैं हैं =रोटी खाई जानी है।

समर्थता एवं असमर्थता द्योतक वाक्यों की निम्न कोटि भावे प्रयोग के अन्तर्गत ही परिगणित की जानी चाहिए। यथा—

v) मोसैं चढ़त बन जात=मुझसे चढ़ते (=चढ़ना) बन जाता है।
1
मोसैं चढ़त नइं बनत=मुझसे चढ़ते (=चढ़ना) नहीं बनता।
1
मोसैं खाबो बन जात=मुझसे खाते हुए (=खाना) बन जाता है।
1

इस प्रकार साधारण वाक्यों की कोटियाँ और भी बढ़ाई जा सकती हैं।

उपर्युक्त पूर्ण वाक्यों की तुलना में अपूर्ण वाक्यों की भी कुछ कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। वस्तुतः उनकी सीमा उन्हीं विराम-स्थलों तथा सुर-लहरी की व्यवस्था से निर्धारित की जा सकती है। कभी-कभी सन्दर्भ का भी सहारा लिया जाता है।

लटोरा, इतै आव =लटोरा! यहाँ आओ।
हाय राम, का करो जाय =हे राम! क्या किया जाए
दिखौ तौ, का हो गओ =(आप) देखिये तो! क्या हो गया

बोलचाल का वाक्य विविधता लिए रहता है और परिणामस्वरूप श्रोता को आवश्यकतानुसार पदों का अध्याहार करना पड़ जाता है। यह अध्याहार कभी प्रतिष्ठित होता है और कभी पूर्वापर पर आधारित। मुहावरों में पाए जाने वाले अध्याहार प्रतिष्ठित ही कहे जायेंगे। 'मौं दूर कि चनकट' [=मुंह दूर (है) कि थप्पड़ (दूर है)]

अप्रतिष्ठत अध्याहार निम्न प्रकार के हैं—

कहते हैं, कि ऊनैं धतूरौ खा लओ = (लोग)कहते हैं कि उसने धतूरा खा लिया
होय, न होय, मौंहूँ चलो जाँव = हो, न हो, मैं भी चला जाऊँ
का दिखानो, कि एक भौंहरो है = (मुझे)क्या दिखाई दिया कि एक गुफा है
जौन होनैं होहै, होहै = जो होना होगा, (वह) होगा

पद्ध-व्यवस्था

६. वाक्य में पाए जाने वाले पद एक सुनिश्चित व्यवस्था रखे हुए एक-दूसरे से अनुस्यूत हैं। उनके इन व्यवस्था-सम्बन्धों को 'साधारण वाक्य' के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। वाक्य में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दो निर्माणक घटक अनिवार्य हैं——उद्देश्य एवं विधेय।

उद्देश्य——संज्ञा-परक (Nominals) होता है। संज्ञा-परक अर्थात् संज्ञा या संज्ञा के स्थानापन्न जैसे सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, संज्ञा-कृदन्त या कोई वाक्यांश। जैसे——

राम अच्छौ है = राम अच्छा है। [संज्ञा]
बौ अच्छौ है = वह अच्छा है। [सर्वनाम]
बड़ौ अच्छौ है = बड़ा (भाई) अच्छा है। [विशेषण]
बाहर अच्छौ है = बाहर अच्छा है। [क्रियाविशेषण]
महोबा कौ रहइया अच्छौ है = महोबा का रहने वाला अच्छा है। [संज्ञा-कृदन्त]
बड़ेन कौ कहिबो अच्छौ है = बड़े लोगों का कहना अच्छा है। [वाक्यांश]

विधेय—क्रिया-प्रधान रहता है। इसके अन्तर्गत सामान्य, संयुक्त तथा अपूर्ण (Incomplete) सभी क्रिया-रूप आ जाते हैं। जैसे——

बौ जात है = वह जाता है। [सामान्य]
बौ नाम कमाउत = वह नाम कमा रहा है। [संयुक्त]
बौ मास्टर तो = वह मास्टर था। [अपूर्ण]

७. उद्देश्य (कर्त्ता) तथा विधेय (क्रिया) को असाधारण रूप से विस्तृत किया सकता है। विस्तारक अवयव निम्न प्रकार हैं—

विशेषण-परक शब्दावलि (Adjectivals)

i) सामान्य तथा संख्यावाचक सर्वनाममूलक विशेषण—

मौड़ा आउत है=लड़का आ रहा है।

बड़ौ मौड़ा आउत है=बड़ा लड़का आ रहा है।

पाँच बड़े मौड़ा आउत हैं=पाँच बड़े लड़के आ रहे हैं।

इत्तो बड़े पाँच मौड़ा आउत हैं=इतने बड़े पाँच लड़के आ रहे हैं।

ii) कौ (की, के) प्रत्यय-युक्त संज्ञा शब्दावलि तथा अपने संश्लिष्ट प्रत्ययों सहित कतिपय सर्वनाम शब्द—

दद्दा हरन कौ मौड़ा आउत=दद्दा लोगो का लड़का आता है।

हमाओ (या अपनौ) मौड़ा आउत=हमारा (या अपना) लड़का आता है।

यह उद्देश्य तथा विधेय किसी के अन्तर्गत पाई जाने वाली संज्ञाओं की गुण-विस्तारक बन सकती है। सामान्यतः इसका प्रयोग संज्ञाओं के पूर्वभाग में ही होता है पर विधेयात्मक (Predicatively) प्रयोग भी प्रचुरता से मिलेंगे।

क्रियाविशेषण-परक शब्दावलि (Adverbials) यह विधेय विस्तारक मात्र कही जाएगी। इसके अन्तर्गत—

i) सामान्य (अव्यय, विषयक्रम ३.) तथा सर्वनाम मूलक (सर्वनाम, विषयक्रम १२.) अव्यय शब्दावलि आती है। यथा—

बौ रोज आउत =वह प्रतिदिन आता है।

बौ हरइँ-हराँ आउत=वह धीरे-धीरे आता है।

बौ ह्याँ रोज आउत=वह यहाँ पर रोज आता है।

ii) –सैं, –मैं, –कैं, कारक-प्रत्यय तथा परसर्गों से युक्त संज्ञा-परक तथा अन्य शब्दावलि भी विधेय-विस्तारक होती है। यथा—

बौ रात कैं आउत =वह रात में आता है।

बौ खातन मैं आउत =वह खाते हुए समय में आता है।

बौ कलमन सैं लिखत=वह कलम से लिखता है।

बानैं पेट-भर आओ=उसने पेट-भर खाया।

संज्ञा परक शब्दावलि—यह विधेय, क्रिया का विस्तार प्रत्यय सहित (–खाँ) या रहित कर्म के रूप में करता है।

बौ राम खाँ बुलाउत=वह राम को बुलाता है।

बौ घरै जात =वह घर जा रहा है।

८. वस्तुतः क्रियाएँ दो प्रकार की उपलब्ध हैं—समापिका (Finite) तथा असमापिका (Infinite)। समापिका क्रिया के विस्तारकों की जितनी कोटियाँ हैं, उतनी ही असमापिका क्रियाओं की हो सकती हैं। कृदन्तीय शब्दावलि असमापिका क्रियायें ही हैं जो कि विस्तारक भी हैं और विस्तृत होने वाली भी हैं। इनकी निम्न तीन कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं—

संज्ञापरक, जो कि उद्देश्य का विस्तार समानाधिकरण बनकर करता है। यथा—

महुबे को रहनवारो बो मौड़ा आउत है = महोबा का रहने वाला, वह लड़का आता है।

विशेषण-परक, यह वर्तमान या भूतकालिक प्रत्यय लेकर आता है और संज्ञापरक शब्दों का उद्देश्यात्मक (Attributive) तथा विधेयात्मक (Predicative) गुणवाचीय बनकर विस्तार करता है। यथा—

खाओ-खबाओ मौड़ा आउत है = खा चुकने वाला लड़का आता है।
बे मौड़ा थके-थकाए आउत हैं = वे लड़के थके हुए आते हैं।

अव्ययन्परक, यह पूर्वकालिक प्रत्यय –कैं लेकर आता है। जैसे—

बौ खा-पीकैं आउत है = वह खा-पीकर आता है।

इस सम्बन्ध में विशेष बात यह भी उल्लेखनीय है कि ये विस्तारक अवयव संयोजक विधायक चिह्नों द्वारा भी आशातीत रूप से बढ़ाये जा सकते हैं। बुन्देली के ये संयोजक-तत्त्व अव्यय, विषय-क्रम ४. में गिनाए जा चुके हैं। पर अन्य विराम भी कभी-कभी संयोजकत्व का काम करते हैं। यथा—

बीस, पचीस आदमी आउत हैं = बीस या पचीस आदमी आते हैं।

९. पदों में जिस सुनिश्चित व्यवस्था की चर्चा ऊपर की गई है, उसका अध्ययन निम्न भागों में किया जा सकता है—क्रम (Order) अन्यय (Concord) तथा अधिकार (Government)।

पद क्रम

जिस प्रकार पद में ध्वनियों तथा पदांशों (morphemes) का सुनिश्चित क्रम रहता है उसी प्रकार वाक्य के एक संगठन में पदों का भी पूर्वापर क्रम लगभग निश्चित रहता है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ विभक्ति-प्रधान थीं अतएव व्याकरणिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक पद लगभग स्वतंत्र था, दूसरे पद पर समान्यतः आश्रित न था; पर मध्य युग में विभक्त्यात्मकता की क्रमिक क्षीणता ने पद-क्रम को स्थायित्व प्रदान

किया और इस समय वाक्य-विश्लेषण के अन्तर्गत पद-क्रम विश्लेषण ही प्रधान जान पड़ने लगा है। पदान्वय तथा पदाधिकार उक्त विभक्त्यात्मकता के अवशेष चिह्न बनकर यत्रतत्र दिखाई पड़ रहे हैं। विभिन्य वाक्य संगठनों में बुन्देली पदों के सुनिश्चित क्रम-सम्बन्धी नियम निम्न प्रकार हैं। आलंकारिक शैली में व्याघात मिल सकेगा, पर अन्यत्र यदि व्याघात है, तो बलात्मकता का द्योतक है। यथा—

ऊ नैं अपुन सैं बात करी=उसने आपसे बात की।

करी, ऊनैं अपुन सैं बात ?=की, उसने आपसे बात ?

कभी-कभी बदले हुए पद-क्रम को पाकर भी बलात्मकता का आरोप साधारणत: लगाना कठिन हो जाता है। यथा—

बिजरानी कौ मौड़ा जगदेव आय=बृजरानी का पुत्र जगदेव है।

जगदेव, बिजरानी कौ मौड़ा, आय=जगदेव बृजरानी का पुत्र है।

i) उद्देश्य अपने विस्तारकों को तथा कतिपय वैकल्पिक प्रयोगों जैसे— समय तथा स्थान सूचक अव्यय-परक शब्दावलि को छोड़कर, वाक्य के प्रारम्भ में ही प्रयुक्त होता है। यथा—

काल बौ खेतन मैं पानूँ देत्तो=कल वह खेतों में पानी सींच रहा था।

बौ काल खेतन मैं पानूँ देत्तो=वह कल खेतों में पानी सींचता था।

अथाई मैं सब जनीं जुरीं तीं=अथाई में सब स्त्रियाँ इकट्ठा हुई थीं।

बा सबरे गाँव में न मिली=वह पूरे गाँव में नहीं मिली।

ii) कर्म या पूरक (यदि वाक्य में है तो) विस्तारकों को छोड़कर ठीक कर्त्ता के बाद प्रयोग में आता है। द्विकर्मक वाक्यों में सजीव कर्म प्रथम तथा निर्जीव, द्वितीय स्थान ग्रहण करता है।

हमनैं सबई खों न्योतो तो =हमने सबको निमंत्रण दिया था।

बानैं महराज कौं राम-राम पौंचाई=उसने महाराज को राम-राम कहला भेजा।

iii) क्रिया पद वाक्य के अन्त में ही प्रयुक्त होते हैं।

iv) समापिका अथवा असमापिका क्रिया-गठन वाले वाक्यों के विस्तारक अपने विशेष्य कर्त्ता, कर्म अथवा क्रिया के सामान्यत: ठीक पूर्व भाग में स्थित प्रयुक्त होते हैं। यदि अन्तर है, तो परिवर्तन में बलात्मकता का भाव प्रकट है।

v) बलात्मक निपात—ई, ऊ, आय, तक, तौ—बल चाहने वाले पदों के ठीक बाद प्रयुक्त किए जाते हैं। (उदाहरण अव्यय, विषयक्रम ५-३.)

vi) स्वीकारात्मक 'हओ' तथा प्रश्नसूचक 'ना' वाक्यान्त में प्रयुक्त होता है। नकारात्मक प्रवृत्ति के ना, नईं क्रिया-पद के ठीक पूर्व अथवा वाक्यादि में प्रयुक्त हो सकते हैं। यथा—

हओ, मैं बजारै गओ तो = जी हाँ, मैं बाजार गया था।
नईं, मैं बजारै नईं गओ तो = नहीं, मैं बाजार नहीं गया था।
बजारै चलहौ, ना = बाजार चलोगे ना ?

vi) प्रश्नवाचक का अथवा काए (=क्या) की स्थिति वाक्य में आन्दोलित रहती है सामान्यत: अन्त में ही आता है। यथा—

काए (का) गाड़ी आ गई = क्या, गाड़ी आ गई ?
काए (का) गाड़ी आ गई, का = क्या, गाड़ी आ गई, क्या ?
गाड़ी काए आ गई, का = गाड़ी क्या आ गई, क्या ?
गाड़ी आ गई का = गाड़ी आ गई, क्या ?

पदान्वय

सूदौ सारौ =सीधा साला
सूदी सारी =सीधी साली

तथा

मौड़ी आउती =लड़की आती
मौड़ीं आउतीं =लड़कियाँ आतीं

वाक्यों के युग्म को देखकर कहा जा सकता है कि पद-रचनात्मक विभक्ति-प्रत्ययों की दृष्टि से पदों का एक वर्ग दूसरे वर्ग से एक निश्चित सम्बन्ध जोड़े हुए है। वस्तुत: इसी व्याकरणिक सम्बन्ध को 'पदान्वय' की संज्ञा दी गई है। कभी-कभी व्याकरणिक धाराओं की समानता के साथ-साथ विभक्ति-प्रत्ययों में भी पूर्णत: मेल रहता है, इस स्थिति को 'पूर्ण पदान्वय' और यदि केवल व्याकरणिक धाराओं में ही मेल है, विभक्ति-प्रत्यय असमान हैं, तो इसे 'अपूर्ण पदान्वय' कहा जा सकता है। बुन्देली में पाए जाने वाले इन अन्वय-सम्बन्धों को निम्न वर्गों में विभक्त करके देखा जा सकता है।

लिंग-वचन—[कर्त्ता एवं क्रिया]

i) –तो (–ती, –ते) प्रत्यय युक्त क्रिया रूप जो कि संभाव्य भूत का अर्थ स्पष्ट कर रहे हैं (क्रिया, विषय-क्रम ६, ९-१)

ii) –० अथवा (–ओ, ई, ए,) तथा –नो (–नी, –ने) प्रत्यय-युक्त क्रिया रूप जो कि सामान्य भूतकाल का अर्थ

द्योतन कर रहे हैं (क्रिया, विषय-क्रम १०–१, ११) प्रथम कर्त्तरि एवं कर्म कर्त्तरि और द्वितीय केवल कर्म- कर्त्तरि प्रयोग के उदाहरण प्रयुक्त करते हैं।

पुरुष-वचन [कर्त्ता एवं क्रिया]

विभक्ति-प्रत्यय युक्त क्रिया के तिङन्तीय रूप जिनकी चर्चा क्रिया, विषय-क्रम ५, ६-१, ८, ८-१, ८-२, में की जा चुकी है।

लिंग-वचन तथा पुरुष-वचन [कर्त्ता एवं क्रिया]

–गो (–गी, –गे) प्रत्यय-युक्त भविष्यत् काल के रूप जिनमें मुख्य क्रिया, द्वितीय और सहायक क्रिया, प्रथम सम्बन्ध रख रही है (क्रिया, विषय-क्रम १२)

लिंग-वचन [कर्म एवं क्रिया]

–० अथवा (–ओ, –ई, –ए) प्रत्यय युक्त सकर्मक क्रिया-रूप कारक प्रत्यय रहित कर्म के अनुसार लिंग-वचन धारण करते हैं। जैसे—

राम नैं रोटी खाई = राम ने रोटी खाई।

राम नैं आम खाए = राम ने आम खाए।

इस सम्बन्ध में कर्त्ता सदैव प्रत्यय सहित रहता है।

लिंग-वचन-कारक [विशेषण तथा विशेष्य]

–औ/ओकारान्त विशेषण (विषय-क्रम २-१) तथा निकट-दूरवर्ती सर्वनाम (विषय-क्रम ६, ६-१) ही इस अन्वय सम्बन्ध में भाग लेते हैं यह नियम सभी प्रकार की विशेषण-परक शब्दावलि पर लागू होता है।

पदान्वय के कतिपय अन्य उदाहरण भी हैं—

i) एकाधिक कर्त्ता यदि भिन्न-भिन्न पुरुषों में हैं तो क्रिया क्रमशः उत्तम, मध्यम तब फिर अन्य पुरुष को प्राथमिकता देती है। यदि कोई समानाधिकरण शब्द है तो फिर उसी का अनुगमन होगा।

मैं औ बो घरै जात हौं = मैं और वह घर जा रहे हैं।

हम, तुम चल्बी = हम और तुम चलेंगे।

केसर, तैं औ मैं, सबजनीं जात हैं = केसर, मैं और तू, सब औरतें जा रही हैं।

ii) यदि भिन्न-भिन्न लिंग-वचन वाली संज्ञाएँ कर्त्ता अथवा कर्म बनकर आएँ तो क्रिया के लिंग-वचन निकटस्थ कर्त्ता अथवा कर्म के अनुसार होंगे—

मुत्के आदमी औ बइअरें बातैं करत तीं
=बहुत से आदमी और औरतें बात करती थीं

दो ठौ उघन्नी औ चार ठौ तारे डरे ते
=दो तालियाँ और चार ताले पड़े हुये थे ।

iii) –औ/ओकारान्त विशेषण-परक शब्दावलि यदि भिन्न लिंगस्थ एकाधिक विशेष्य से सम्बन्धित है तो वह निकटस्थ विशेष्य से लिंग-सम्बन्ध जोड़ेगी । यथा—

बड़ौ मौड़ा औ मौड़ी = बड़ा लड़का और लड़की ।
बड़ी मौड़ी औ मौड़ा = बड़ी लड़की और लड़का ।

पदाधिकार

	मैं जात हौं	=	मैं जाता हूँ ।
परन्तु,	मोहैं जानैं है	=	मुझे जाना है ।
	तारौ ल्याव	=	ताला लाओ ।
परन्तु,	तारे खाँ ल्याव	=	ताले को ले आओ ।

वाक्यों के प्रयुक्त युग्मों से नितान्त स्पष्ट है कि एक शब्द के दो विभक्ति-मय रूप (मैं तथा मोहैं, तारौ तथा तारे) परवर्ती पदों पर आधारित हैं । इस प्रवृत्ति को पद व्यवस्था में 'पदाधिकार' की संज्ञा दी गई है । दान के अर्थ में चतुर्थी, भी (डरने) के अर्थ में पंचमी तथा 'अधि' के योग में द्वितीया या सप्तमी, इस प्रकार के पाणिनीय व्याकरण के सूत्र निस्सन्देह 'पदाधिकार' के उदाहरण कहे जाएँगे । बुन्देली कारक-प्रत्ययों की भी ऐसी ही व्यवस्था की जा सकती है । बुन्देली में 'पदाधिकार' सम्बन्धी निम्न वर्ग निर्धारित किये जा सकते हैं—

कारक-प्रत्ययों से अधिकृत शब्दावलि—

कारक-प्रत्यय नाम (सर्वनाम, विशेषण भी) शब्दावलि को विकारी रूप में ग्रहण करते हैं (संज्ञा, विषयक्रम ७.)

क्रियाओं तथा क्रियारूपों से अधिकृत शब्दावलि—

i) क्रियार्थक संज्ञा –नैं रूप कर्त्ता का अर्थ रखने वाली 'नाम' शब्दावलि को संश्लिष्ट विभक्ति –ऐ (–है) अथवा –खाँ कारक प्रत्यय के साथ ग्रहण करती है । यथा—

मोहै जानैं है = मुझे जाना है ।
लटोरै जानैं है = लटोरा को जाना है ।

ii) जाव्–, आव्–, चल् आदि गत्यर्थक धातुओं के योग में आने वाला गन्तव्य –ऐं संश्लिष्ट विभक्ति लेकर आता है।

यथा—

बौ ममानैं जात = वह मामा के घर जा रहा है।
हम कामैं जात = हम काम के लिए जाते हैं।
तुम मदरसै चलौ = तुम स्कूल चलो।

iii) सभी सकर्मक क्रियाएँ अपने सजीव कर्म को उक्त –ऐ विभक्ति के साथ ग्रहण करती हैं। यथा—

बौ गइऐ दुहत = वह गाय दुहता है।
बौ लटोरैं बुलाउत = वह लटोरा को बुलाता है।
बौ दद्दैं चिठिया लिखत = वह पिता जी को पत्र लिखता है।
पाती राधाजुऐ गहाई = चिट्ठी राधा जू को दी।
बौ किऐ खबाउत = वह किसे खिलाता है।

अन्वय--अधिकार

i) एक वचन का कर्त्ता, सम्मान का भाव द्योतित करने के लिए क्रिया को बहुवचन में अधिकृत किए रहता है।

भरत ममाने सैं लौट आए = भरत ननिहाल से लौट आये।

ii) –नैं कारक-प्रत्यय युक्त कर्त्ता क्रिया के कृदन्तीय –ओ (–०–) प्रत्यय के साथ ही प्रयुक्त होता है। तथा खाँ (–ऐ) प्रत्यय-युक्त कर्मं क्रिया को पुं०, एक० में ही अधिकृत किए रखता है। यह क्रिया समापिका एवं असमापिका दोनों ही प्रकार की हो सकती है। जैसे—

डाँकुन नैं किबारे खाँ दिखो = डाकुओं ने किवाड़ देखा।
डाँकुन नैं किबरिया खाँ दिखो = डाकुओं ने खिड़की को देखा।
डाँकुन नैं किबारे खाँ जरो भओ दिख कैं.........
= डाकुओं ने किवाड़ को जला हुआ देखकर......
डाँकुन नैं किबरिया खाँ जरो भओ दिखकैं......
= डाकुओं ने खिड़की को जला हुआ देखकर......

इस प्रकार बुन्देली की काव्य-रचना में वैविध्य है। एक ओर तो प्राचीन संस्कृत परम्परा के विभक्त्यात्मक (Inflextional) पद हैं, तो दूसरी ओर मध्ययुगीन संस्कृत की कृदन्तीय (Participal) पदावली और सबसे अधिक पदों की वह विश्लिष्ट स्थिति है जो कि भारतीय आर्य-भाषाओं में १००० ई०

से आई जान पड़ती है। कारक-प्रत्यय, पूर्वकालिक क्रिया-योजना तथा संयुक्त एवं सहायक क्रिया गठन, सभी इसी विश्लिष्टात्मकता के प्रमाण हैं। द्विरुक्ति-विधान भी जो कि कभी बहुवचनत्व, कभी तीव्रता और कभी किसी अन्य भाव का स्पष्टीकरण करता है, इसी विश्लिष्टता की सूचना दे रहा है। इस प्रकार हिन्दी की तरह बुन्देली भी संश्लिष्ट तथा विश्लिष्ट—भाषा स्थितियों के मध्य-मार्ग से गुजर रही है।

परिशिष्ट

१

[भाषा-मानचित्र—पृष्ठ १—४]

इसमें कतिपय भाषा-मानचित्र संकलित हैं, जिनमें भाषा-प्रवृत्तियों की गतिविधि अंकित की गई है। ये बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक इतिहास की झलक तो प्रस्तुत करते ही हैं; साथ ही, क्षेत्र की संगठित इकाइयों का भी निर्देश करते हैं।

२

[वाक्य-सामग्री—पृष्ठ ५—३७]

बुन्देली के क्षेत्रीय-रूपों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए लगभग तीन सौ वाक्यों को आधार बनाया गया था। पुस्तक के प्रारम्भ में दिए हुए मानचित्र 'बुन्देली भाषा क्षेत्र' में निर्दिष्ट सत्तरह स्थानों पर जाकर लेखक ने स्वयं उन वाक्यों का अनुवाद किया था। लगभग इतने ही स्थानों से, अधिकारी व्यक्तियों से अनुवाद कराके मँगवाया था। अनुवाद के आवश्यक नमूने इस परिशिष्ट में किए जा रहे हैं, जिनका उपयोग, अनुवाद की सीमाओं को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। आरम्भ में तुलना के लिए मूल सूची भी संलग्न कर दी गई है।

३

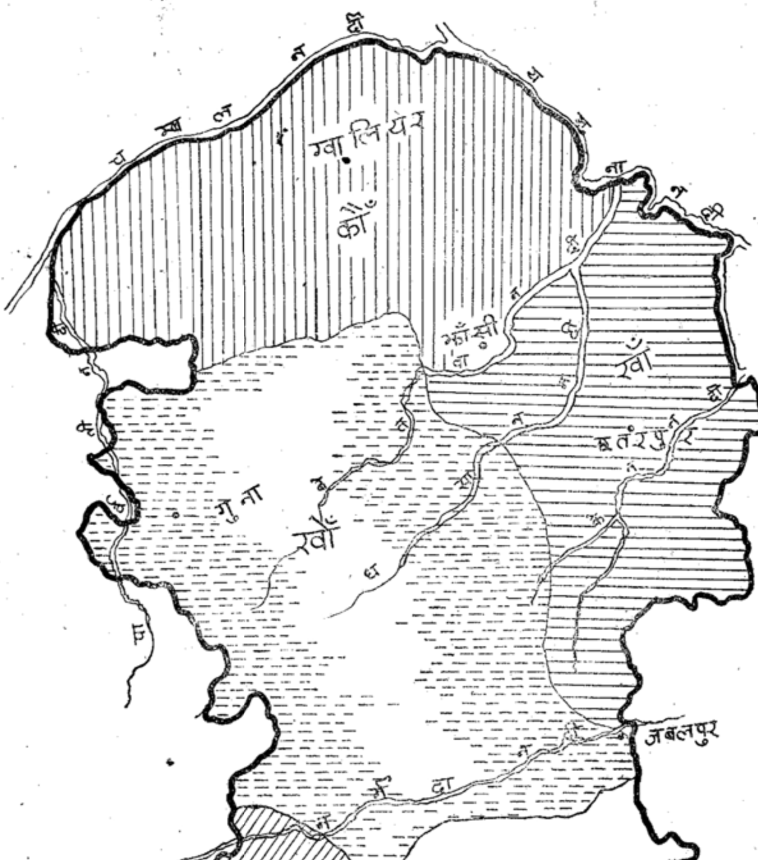
[विशिष्ट शब्दावलि—पृष्ठ ३८—४४]

लेखक की व्यक्ति-बोली (स्थान—मुस्करा, जिला हमीरपुर, उत्तर प्रदेश) पर आधारित होने के कारण, ये शब्द उच्चारण तथा अर्थ—दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

—:०:—

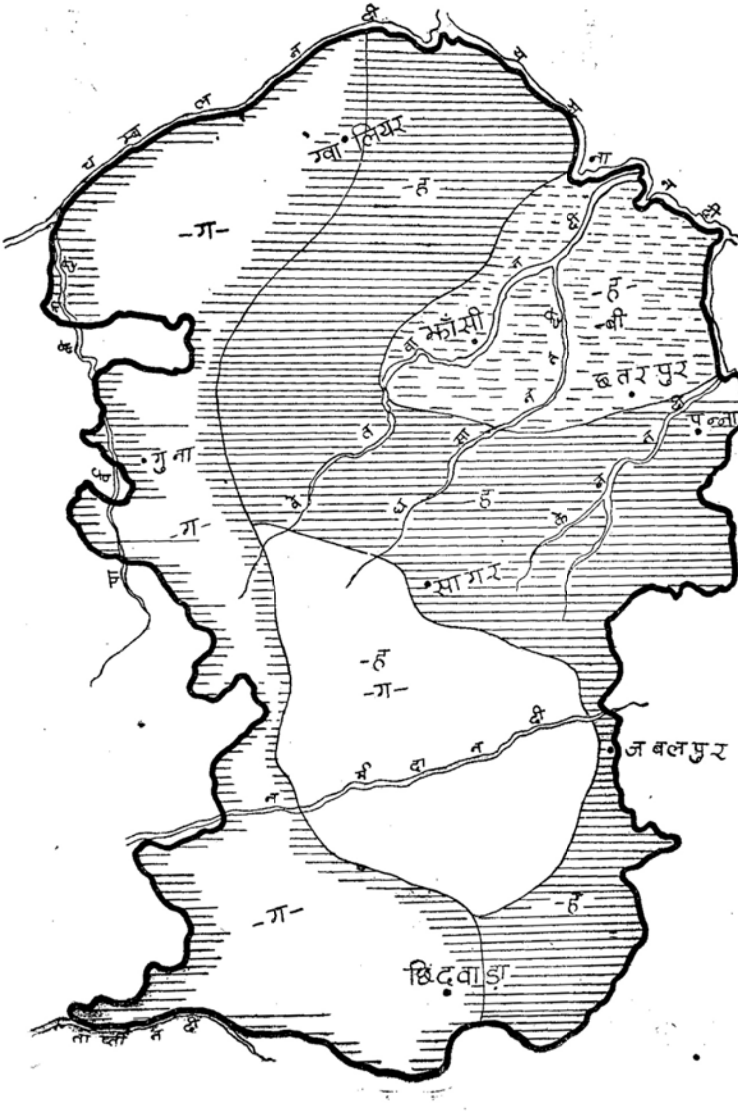
भाषा-मानचित्र – १

कर्म कारकीय प्रत्यय
संख्या – १५



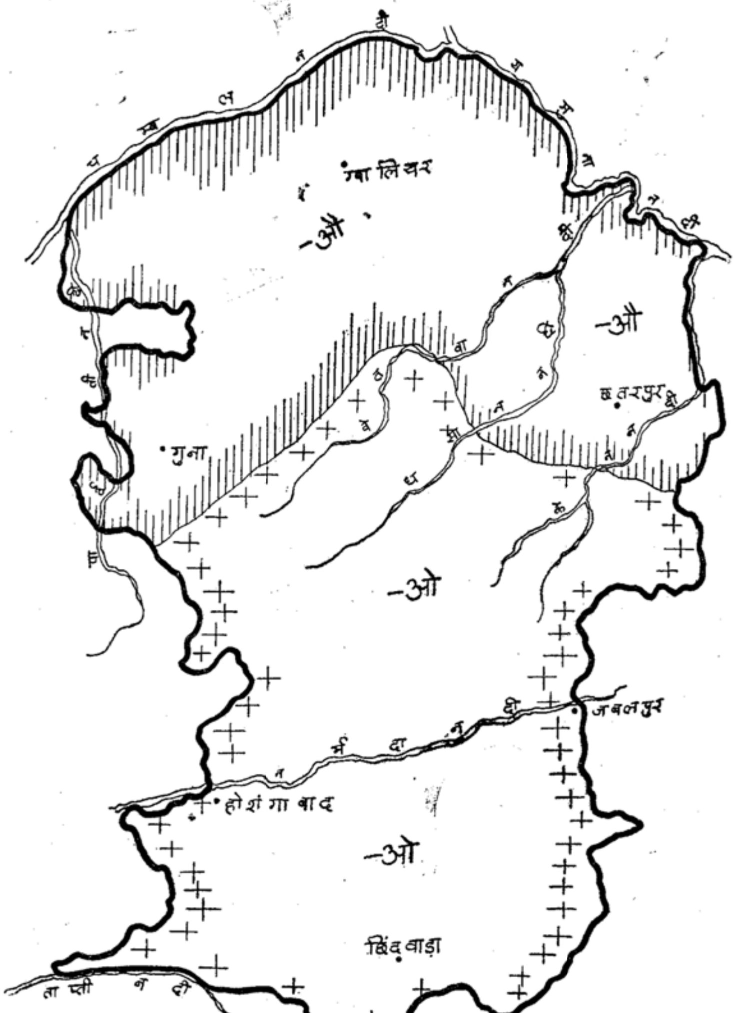
भाषा-मानचित्र-२

भविष्यत् कालिक प्रत्यय
क्रिया - १२



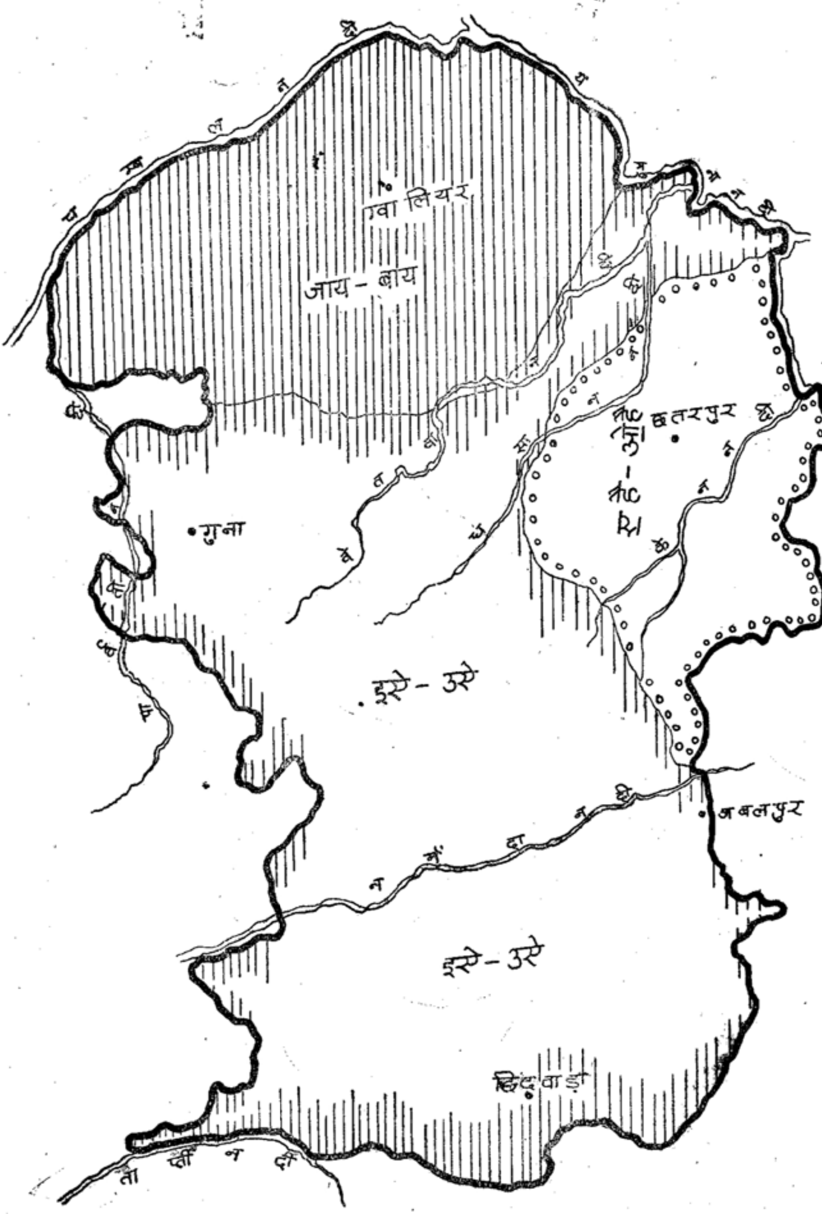
भाषा-मानचित्र - ३

संज्ञा प्रातिपदिक [औ/ओ]
संज्ञा - ४



भाषामानचित्र-४

संकेत वाचक सर्वनाम
सर्वनाम - ६



१. आप चाची जी के यहाँ गए थे ?
२. दो थप्पड़ों में आपका मुंह सीधा हो जाएगा।
३. विवाह में आपको चलना पड़ेगा।
४. नुमायश में हम तुम भी चलेंगे।
५. अपना कम्बल संभाल कर रखना।
६. अपनी रजाई कहाँ भूल आये।
७. छोटे भाई के विवाह में सब थालियाँ चोरी चली गईं।
८. ये हल अपने ही हैं।
९. जिसने घर के अन्दर पैर रखा वही मारा गया।
१०. जो घर के अन्दर पैर रक्खेगा वही मारा जाएगा।
११. जिसकी अटकी होगी वह मेरे यहाँ आएगा।
१२. जो बैल राठ गया है, वह चरने वाला है।
१३. जो चमारिन कल पीसने आई थी, वह बड़ी चोर निकली।
१४. यह चाहे जिसकी लड़की हो, बड़ी शरारतिन है।
१५. यह चाहे जिसका लड़का हो, बड़ा शरारती है।
१६. शाम के वक्त जो-जो आ जाए, सबको भोजन करा देना।
१७. चमारिनें जो रस्सियाँ दे गई थीं, सब टूट गईं।
१८. जिसमें ताकत हो, सामने आए।
१९. जिस पर हो वह दे देवे।
२०. वर्तन में क्या रखा है।
२१. क्या सब ढ़ोर छोड़ दिए गए।
२२. वहाँ कौन-कौन है।
२३. दरवाजे से कौन निकल गए।
२४. डाकू किस ओर भाग खड़े हुए।
२५. देखो वह कौन जा रहा है।
२६. ये कंकड़ियाँ मेरी जेब में किसने डाल दीं।
२७. पाँच मन ज्वार किसमें समाएगी।
२८. क्यों चले आ रहे हो।
२९. बैलों को धीरे-धीरे क्यों नहीं चलाते।
३०. किसी से कुछ मत कहना।
३१. उसके यहाँ किस पर बैठोगे।
३२. छोटी सन्दूक में कुछ भी नहीं है।
३३. मेरा काम इतनी चिड़ियों से नहीं चलेगा।
३४. कुत्ता जैसे ही निकला, उसने लाठी चलाई।
३५. तुम्हें कितनी चाहिए।
३६. तुम किस दर्जे में पढ़ते हो।
३७. तुम कैसे इतने रुपयों से काम चला लेते हो।
३८ जरा वहीं को हट जाओ, क्योंकि यहाँ चने का बोरा रखना है।
३९. उस दिन की तरह देर मत करो।
४०. वह कहाँ गया था।

४१. उसकी तरह मैं भी गंगा जी में नहाने जाऊँगा ।
४२. उस दिन शायद वह भी आ जाए ।
४३ तू भी आया, तो भी काम पूरा नहीं हुआ ।
४४. जब तक मैं आता हूँ, तब तक गाय दुहवा लेना ।
४५. या तो तुम आना, या फिर भाभी को भेज देना ।
४६. सिर दर्द के मारे मुझे चैन नहीं मिलती ।
४७. यह औरत लड़के वाली है ।
४८. मुझे अवकास कहाँ, बहुत काम पड़ा है ।
४९. दिखलाओ, भला, इसको ।
५०. गाय बैलों का काम कर डालूं, तब फिर आखीर में दैठकर तुम्हारी बात सुनूँगा ।
५१. अगर तू जाता हो तो जा ।
५२. अगर तुझे जाना ही है, तो देर मत कर ।
५३. मैं उसकी स्त्री हूँ ।
५४. वे अक्सर जाते हैं, लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगता ।
५५. खाने से अब रुका नहीं जाता ।
५६. अपनी सहेलियों सहित वह अभी ही चली गई ।
५७. चार महीना चौमासे भर पानी बरसता रहा ।
५८. वह क्रोधी है, बड़ी देर से क्रोधित बैठा है ।
५९. इकहरे शरीर का बना है ।
६०. बहुत मुलायम लौंकी है ।
६१. तू कहाँ से लौट पड़ा ।
६२. तू कल मदरसे गया था या नहीं ।
६३. मां आदि को लिवाकर तुम लोग कब आओगे ?
६४. तुम रोजाना नमक माँगने आ जाते हो ।
६५. तू कल कानपुर पहुँच जाएगा, परसों लौट पड़ना ।
६६. तुम लोग आओ, चाहे न आओ, मैं अवश्य आऊँगा ।
६७. मैं खूब जानता हूँ तुमसे यह भी न होगा ।
६८. तुमसे यह घर भी छाते नहीं बनता ।
६९. अभी तुझमें उठने-बैठने की ताकत नहीं आई है ।
७०. तेरा नाम क्या है, जल्दो बतला ।
७१. इस गाँव में तेरी जात के लोग बहुत हैं ।
७२. तेरे ढोर काजी हाउस में बन्द हैं ।
७३. तेरी चारपाइयाँ आंगन में भीग रही हैं ।
७४. चोरों ने आधी रात को तुम्हारे सन्दूक का ताला तोड़ डाला ।
७५. तुम्हारे कन्धे से खून टपक रहा है ।
७६. तुम्हारी आँख में यह ललामी क्यों है ।
७७. तुम लोगों की किसी से नहीं पटती ।
७८. तुम्हारे लिए आटा पिसा हुआ रखा है ।
७९. तुम्हें तुम्हारी सरहज बुला रही है ।
८०. तुम्हारी साइकिलें पंचर हो गई हैं ।

८१. तुम क्या खाली बैठे हो ?
८२. यह कोई बुरा काम नहीं है।
८३. यह लड़की किसकी है।
८४. यह लड़का किसका है।
८५. ये नौकर किस सेठ के हैं।
८६. इसमें लम्बा-लम्बा यह क्या पड़ा है।
८७. इस धोती का कपड़ा खूब मजबूत है।
८८. यह नहीं करोगे, तो तुम प्यासों मरोगे।
८९. ये सभी आम अभी अधपके हैं।
९०. इन सब पर सोने का पानी चढ़ा है।
९१. इनके जूते बिल्कुल टूट गये।
९२. इन औरतों के आदमी परसों से नहीं आये हैं।
९३. इस पर चदरें और तकिया लगा दो।
९४. इनकी क्या मजाल जो अब चमरौड़ा में घुसें।
९५. इस कुम्हारिन ने दो मटके भेजे हैं।
९६. इसकी उँगलियाँ कुचल गईं।
९७. यह लड़कियों के कहने में आ गई।
९८. इसे कल लौटा देना।
९९. मेरा होल्डर यही है।
१००. मेरी कलम यही है।
१०१. दूध दुहा जा रहा है।
१०२. दूध दुह लो।
१०३. नौकर से दूध दुहवा लो।
१०४. मैं कहता हूँ, मां से भी कहलवा दूँ ?
१०५. बड़ियाँ दी जा रही हैं।
१०६. पड़ोस की औरतें बड़ियाँ दे रही हैं।
१०७. या तू या लक्ष्मी उन बड़ियों को दिलवा ले।
१०८. सब कपड़े सिल गए।
१०९. भला इतनी जल्दी किसने सियें ?
११०. उसने बड़ी बहिन को चार कुर्तियाँ सिलाईं।
१११. अब सबको एक-एक सिलवा दो।
११२. रामायण हो चुकी। सैरा हो रहा है।
११३. वह सबसे बात करती है तो करने दो।
११४. गाड़ी खाली है, नहीं तो अभी खाली करवा दूंगा।
११५. मैं खुद खाली किए देता हूँ।
११६. शहद खाया जा रहा है।
११७. वह और मैं दोनों खा रहे थे।
११८. उस रोगी को भी खिला दो।
११९. वैद्य जी खिलवा देंगे।
१२०. वहाँ का शोर बहुत दूर तक सुनाई देता है।

१२१. पुरोहित जी भागवत सुना रहे हैं।
१२२. मुझे अभी कुछ रुपये और देने हैं।
१२३. रमेश । खाने में क्या संकोच।
१२४. नमस्कार करना मत भूलो ।
१२५. खेलते-खेलते जी मतलाने लगा।
१२६. गाड़ी आने वाली है।
१२७. किसी लिखने वाले को बुलाओ।
१२८. नाचने वालियों को जाने दो।
१२९. आखिरकार उनको आना ही पड़ा।
१३०. वह इटावे का रहने वाला है।
१३१. खिलाने में मैं किसी से कम नहीं।
१३२. वह मामा के घर से आ रहा है।
१३३. खेत की मेड़ पर वह कौन गा रहा है।
१३४. उसने छत पर से झाँका था।
१३५. धूप में चलने से उसने इनकार कर दिया।
१३६. वह ढ़ोर मेरे खेत में चर रहा था।
१३७. वह गाय पचीस रूपया में ली गई है ।
१३८. वे बकरियाँ जंगल में फिर रही होंगी।
१३९. वे बसोर कहीं दूसरे गाँव में बस गए।
१४०. उन्होंने तुम्हें कई बार बुलवाया।
१४१. मैं उनको कबतक बिठलाये रहूँ।
१४२. उस पर मेरा बस नहीं चलता।
१४३. दुर्गा माई उन पर प्रसन्न हैं।
१४४. मैं उससे सब कुछ कह दूंगा।
१४५. उन गवाहों से मैं सब कुछ कहलवा दूंगा।
१४६. उसमें इतनी शक्ति कहाँ ?
१४७. उसको किसने डरवा दिया।
१४८. उसकी भैंसें कीचड़ में फँस गईं।
१४९. उसकी पौर में कल सब लोग इकट्ठे हुए थे।
१५०. उन लोगों की क्या हस्ती जो मुहल्ले की लड़कियों को छेड़ें-छाड़ें।
१५१. वह बैलों को नहलवा रहा है।
१५२. वह भैंसों को नहला रहा है।
१५३. गाड़ी नह दो, कौन नहवा रहा है।
१५४. झांसी तरफ यह फल खूब मिलता है ।
१५५. मेरी कलमें किसने चुरा लीं।
१५६. मैंने सबको खिला-पिला दिया ।
१५७. मेरी कमीजें चूहों ने काट डालीं।
१५८. यह पत्र मुझसे पढ़ते नहीं बनेगा।
१५९. मुझे चार पैसे का गुड़ चाहिए।
१६०. मुझे घर जाना है।

१६१. मेरे लिए थोड़ी सी काली मिट्टी लेते आना।
१६२. उसने मरते दम तक मुझ पर भरोसा किया।
१६३. मेरी जगह पर लटोरा दो दिन काम कर जायगा।
१६४. मेरे खेतों पर बहुत से मजदूर काम कर रहे हैं।
१६५. हम तुम्हारे लिये रुके हैं।
१६६. खाने में हमको कोई एतराज नहीं।
१६७. हम इससे अधिक कुछ न देंगे।
१६८. हमारा आंगन तुम्हारे से चौगुना है।
१६९. हमारे लिए दो कटोरे लेते आना।
१७०. हमारी जेब बिल्कुल खाली है।
१७१. जाड़े के मारे हमारी उँगलियाँ बिल्कुल ठिठुर गईं।
१७२. हमारे साथ बद्रीनाथ चलोगे ?
१७३. कचहरी में हम सब साफ-साफ कह देंगे।
१७४. हमारे यहाँ पिछली साल एक जलसा हुआ था।
१७५. अगली साल हम लोग पं० नेहरू को बुलाएँगे।
१७६. लाकर दे दो, देकर चले जाओ।
१७७. हँसकर बहलाना अच्छा नहीं है।
१७८. छत होकर निकल जाना।
१७९. तालाब के किनारे घूमने चलेंगे।
१८०. खिला-पिलाकर बड़ा कर देना हमारा कर्त्तव्य था।
१८१. ज्यादा क्या लिखूँ, आप जवाब अवश्य देना।
१८२. बिटिया को लुवाने-पठाने हम जायँगे।
१८३. खाते में ही उसे चिट्ठी मिली थी।
१८४. चलते-चलते वह बिल्कुल थक गई।
१८५. वह ऐसी अच्छी तरह खेल रही थी।
१८६. ये आम कई दिन से रखे हुए थे।
१८७. आकर बनिये के यहाँ से ले जाना।
१८८. यहाँ लोधी बहुत बसते हैं।
१८९. यह ठाकुरों की बस्ती है।
१९०. इस ओर ब्राह्मणों की बस्तियाँ अधिक हैं।
१९१. बूंदें पड़ते ही, सब ढोर तितर-बितर हो गए।
१९२. मेरे होते हुए आप निश्चिन्त्य रहें।
१९३. नौगांव किस ओर है।
१९४. जलती आग में उसका पैर फिसल पड़ा।
१९५. पन्द्रह दिन के लिए हमें महाभारत बँचवाना है।
१९६. मैं इसे लिए जाता हूँ।
१९७. मैं नहीं जानता कि नाइन कब आएगी ?
१९८. तुम्हारा अहसान कभी नहीं भूलूँगा।
१९९. तू अपना नाम बतला।
२००. खड़ा रह, तुझे मैं अभी देखे लेता हूँ।
२०१. यह ताला इस ताली से खुल जाएगा।

४१. ओखी नाँई महूँ गङ्गाजुवै सपरन जैहौं ।
४२. ऊ दिनाँ सायत ओऊ आ जाय ।
४३. तहूँ आ गओ तऊ काम न भओ ।
४४. जौलौं मैं आउत हौं तौ लौं तैं गइया दुहवा लैत ।
४५. कै तौ तैं आइत नइंतर फिन भौजी खाँ पठवा दैत ।
४६. मूड़ के मारैं मौहैं राही नईं आउत ।
४७. या बइयर लरकौरी है ।
४८. मोहैं फुरसित नइयाँ, अभै बौहुत काम परो है ।
४९. दिखाओ भलाँ ए खाँ ।
५०. गइयन बैलवन कौ उसार कर लेँव तब फिन बैठ कैं तोई बातैं सुनह्यों ।
५१. जो तोहै जानै होय ता जा ।
५२. जो तोहै जानई है ता ढ्यार काए खाँय करत ।
५३. मैं ओखी बइयर आँहौं ।
५४. वैं तौ जातई रहत हैं पै मोहैं अच्छौ नईं लगत ।
५५. हमैं खाओ आउत ।
५६. अपनी गुइँयन के सँगै बा अभईं चली गई ।
५७. चार मईनाँ चौमासे भर पानी बरसो करो ।
५८. ऊ बड़ौ गुस्सैल है बौहुत ढ्यार सैं गुस्साँ बैठो है ।
५९. इसकरी ग्याँय कौ है ।
६०. बौहुत लरम तुमरिया है ।
६१. तैं काँ सैं लौटयाओ ?
६२. तैं काल मदरसै गओ तो कै नईं ?
६३. बाई हन खाँ लिवा कैं तैं कबै आहत ?
६४. तैं रोझऊँ नूँन माँगन (मँगाउन) आ जात हत ।
६५. तैं काल कानपुरैं पौहुँच जैहत परौं लौट परित ।
६६. तुम आइव चाय न आइव मैं तौ आहउँ ।
६७. मैं खीब जानत हौं कै तो सैं एऊ न हो पाहै ।
६८. तौ सैं एऊ घर छाउत नईं बनत ।
६९. अभै तोम्हैं उठैं बैठैं की सत्या नईं आई ।
७०. तोओ का नावँ जल्दीं बता ।
७१. ई गाँव माँ तोई बिरादरी बौहुत है ।
७२. तोए ढोर कानीहौद माँ बिंड़े हैं ।
७३. तोई खटोलीं बखरी माँ भींजत हैं ।
७४. चोरन नैं आधी रात कैं तोई सिन्दूक कौ तारौ टोर डारो ।
७५. तोए कँधन सैं रकत चुअत है ।
७६. तोई आँखी मैं ललामी काए है ।
७७. तुम्हाई कोऊ सैं नईं पटत आय ।
७८. तुम्हाए लानैं पिसनौं पिसो धरो है ।
७९. तोखाँ तोई सरज बुलाउत है ।
८०. तोई पैरगाड़ी पिंचर हो गई ।

८१. तैं सरतारौ काए बैठो हत ?
८२. यौ कौन्हउँ बुरओ काम नहोय ।
८३. या मौड़ी केखी आय ?
८४. यौ मौड़ा केखौ आय ?
८५. ई मँजूर कौन सेठ के आँय ?
८६. एम्हैं लम्बौ लम्बौ यौ काय डरो है ?
८७. ई धुतिया कौ उन्हाँ खीब मजबूत है ।
८८. यौ न करहत त्रा प्यासन मर जैहत ।
८९. ई सबरे आम अभै गदरयाने हैं ।
९०. इन सबरिन पै सोने कौ पानी चढ़ो है ।
९१. एखी पन्हइयाँ बिरकुलई टूट गईं ।
९२. ई बईरन के आदमी परौं सैं नईं आये आँय ।
९३. एफै पिछौरा औ गदियाँ लगा देव ।
९४. ऐखी का तागित जौन अब चमरौड़ा मैं घुसैं ।
९५. ई कुम्हार (कुम्हरिया) नै दो ठइयाँ मटका दए हैं ।
९६. एखी उँगरियाँ कुचर गईं ।
९७. या मौड़िन के कहे मैं आ गई ।
९८. एखाँ काल मुरका दैत ।
९९. मोऔ हुन्डल एई आय ।
१००. मोई किलम एई आय ।
१०१. दूद दुभ रओ ।
१०२. दूद दोह ले ।
१०३. मँजूर सैं दूद दुभवा ले ।
१०४. मैं कहत तौ हौं, बाई सैं सोऊ कभवा दैहौं ?
१०५. बरीं दई जा रईं (बरीं दिब रईं)
१०६. पुरा की बइरैं बरीं दिबा रईं ।
१०७. कै तौ तैं कै लक्च्छमी उन बरिन खाँ दिबवा ले ।
१०८. सब उन्हाँ सिम गये ।
१०९. काए, इत्ती जल्दीं केन्हैं सीं दये ?
११०. ओन्हैं बड़ी बैंहिन खाँ चार ठइया कुर्ती सिमवाईं ।
१११. अब सब खाँ एक एक ठइया सिमाँ दे ।
११२. रामान हो गई अब सैरा होत है ।
११३. बा सबसैं बतात है ता बतान दे ।
११४. गड्डी रीची (रीती) है नईं तर अभईं रिचवा (रितवा) दैहौं ।
११५. मैं खुदई रिचैयँ (रितैयँ) देत हौं ।
११६. मैंफर खबत है ।
११७. ऊ ना मैं दोऊ जनैं खात ते ।
११८. ऊ बिमरहऊ (रूगैलहऊ) खाँ खबा देव ।
११९. बैद जू खबवा दैहैं ।
१२०. उतै कौ हल्ला बौहुत दूर लौं सुनात है ।

१२१. पुर्हेत जू भागौत सुनाउत हैं।
१२२. मोहैं अभै कुछू रुपइया और देयँ खाँ हैं।
१२३. रमेस खाँय काँ काए खाँ सरम्यात।
१२४. राम राम (रामाकिसनी) करबो न भूल जैत।
१२५. खेलत खेलत जी उम्थान लगो।
१२६. रेल आउन चाहूत है।
१२७. कौन्हूउँ लिखइया खाँ बुलाव।
१२८. नचनारिन्ह खाँ जान दे।
१२९. अखीरत माँ उनखाँ आवनइँ परो।
१३०. ऊ इटाये को रहइया आयँ।
१३१. खिलाँऊँ माँ मैं कोऊ सैं कम नईं हाँव।
१३२. ऊ मम्मा के घर सैं आउत है, (ऊ ममाने सैं आउत है)।
१३३. खेत की मेड़ पै ऊ क्वाय गाउत है ?
१३४. ऊ मुड़िया पै भो झाँकत (ढूंकत) तो।
१३५. घाम मैं निगे सैं ओन्हैं नाईं कर दई।
१३६. ऊ ढोर मोए खेत मैं चरत तो।
१३७. बा गइया पचीस रुपइयन मैं लई है।
१३८. वैं छिरियाँ व्याहड़ (हार) मैं फिरत होहैं।
१३९. वैं बसवारा (बसह्वारा) कौन्हूँ अंबगाँव मैं रहन लगे।
१४०. उन्नै तोखाँ कई दइयाँ बुलाओ।
१४१. मैं उनखाँ कब लौं बैठाऐं रहौं ?
१४२. ओफै मोओ कौन काबू चलत है।
१४३. देवी मइया उन पै सीरो हथा दैंय।
१४४. ओम्हैं इत्तौ ह्याव काँ सैं आओ।
१४५. ऊ गबाहन सैं मैं सब कुछू कभवा दैहौं।
१४६. मैं ओसैं सब कुछू कह दैहौं।
१४७. ओ खाँ केन्हैं डिरवा दओ।
१४८. ओखी भैंसियाँ गिलाए मैं सल गईं।
१४९. ओखी चौपार (पोंर) माँ काल सब जनैं जुरे ते।
१५०. उनकीं का मजाल जौन वैं पुरा की बिटिमन(लम्डियन)खाँ रोकैं।
१५१. ऊ बैलवन खाँ सपर्वाउत है।
१५२. ऊ भैंसियन खाँ सपराउत है।
१५३. गड्डी नैह दे, क्वाय नभवाउत है।
१५४. झाँसी कुधईं ईं फल खूब मिलत।
१५५. मोई किलमैं केन्हैं चुरा लईं।
१५६. मैंनैं सब खाँ खबा पिबा दओ।
१५७. मोई कमींजैं चौखरिन नै काट डारीं।
१५८. या चिठिया मोसैं नईं बँचत।
१५९. मोहैं चार पैसा को गुर चाहुनैं।
१६०. मोहैं घरैं जानै।

१६१. मोए लानैं तनक (सी) कारी माँटी लेताइत ।
१६२. ओन्हैं मरत मरत लौं मोई बात मानी ।
१६३. मोई बल्दीं लटोरा दो दिनाँ काम कर जैहै ।
१६४. मोए खेतन मैं कुल के मँजूर काम करत ।
१६५. हम तुम्हाए लानैं आय ठाड़े (हन) ।
१६६. खाँय माँ कौनहूँ इतराज नहियाँ (खाँय के लानैं नाहीं नइयाँ) ।
१६७. हम एसैं जादाँ अब कुछू न दैहन ।
१६८. हमाई बखरी तुम्हाई सैं चार हीँसा बड़ी है ।
१६९. हमाए लानैं दो ठइया खुरवा लेतइयो ।
१७०. मोई खलेती बिरकुल छूँची है ।
१७१. ठंड के मारैं मोई सब उँगरियाँ ठिटुर गईं ।
१७२. हमाये संघै बद्रीनाथन चलहत ।
१७३. कचैहरी माँ हम सब साँची साँची कैह दैहन ।
१७४. हमाए इतै परसाल एक बड़ौ भारी जस्सौ भओ तो ।
१७५. परसाल (आँगित) हम पं० नेहरू खाँ बुलाहन ।
१७६. ल्या कैं दै दे फिन दै कैं चलो जैत ।
१७७. हँस कैं टार दैबो कौन अच्छौ आय ।
१७८. मुड़िया पै भो निकर जैत ।
१७९. तला की पार पै टैहलन चलहन ।
१८०. खबा पिबा कैं बड़ौ कर दैबो हमाओ काम आय तो ।
१८१. जादाँ का लिखौं अपुन जबाब जरूर करकैं दैबी ।
१८२. मौड़ी खाँ लिबाउन पठौन (पठाउन) हम जैहन ।
१८३. खातइ मैं ओखाँ चिठिया मिली ती ।
१८४. निंगत निंगत बा बिरकुल थक गई ।
१८५. बा ऐसी अच्छी तराँ खेलत्ती ।
१८६. ई आम कई दिनाँ सै धरे आयँ ।
१८७. आकैं बनियाँ ख्याँ सैं लै जैत ।
१८८. इतै लोधी बौहुत रहत हैं ।
१८९. यौ ठाकुरन कौ गाँव आय ।
१९०. ई कुधईं बाम्हनन के गाँव जादाँ हैं ।
१९१. पानी बुँदयातईं सब ढोर बिचक गए ।
१९२. मोए जियत अपुन निसाखातिर रइयो ।
१९३. नौगाँव कौन कुधईं हैं ।
१९४. बरत आगी मैं ओखौ पाँव रिपट परो ।
१९५. पन्द्रा दिनाँ के लानैं हमखाँ महाभारत बँचवाउनैं ।
१९६. मैं एखाँ लैंय जात हौं ।
१९७. मैं नईं जानत कै नाउन आहै कै नईं ।
१९८. तुम्हाओ ऐसान कभऊँ न भूलह्यौं ।
१९९. तुम अपनौ नाँव वताव ।
२००. ठाओ रौ, तोखाँ मैं अभईं दिखैं लेत ।
२०१. यौ तारौ ई कुंची लै खुल जैहै ।

१. तुम काकी के इतै गए ते ?
२. दो रापटन में तुमाव मूँ सूदो हो जैय।
३. व्याव मैं तुमै चलनैं आय।
४. नुमासै हम तुम चलबू।
५. अपनौ कमरा संभारें राखियो।
६. अपनी ख्वार काँ छोरयाये।
७. हल्के भइया के व्याव मैं टाठी बासन सब चले गए।
८. जे हर हमायई आय धरे।
९. जी नैं घर के भीतर पाँव धरो ऊ की खपरिया फोड्डारौं।
१०. जो कऊ घर के भीतर आय, हम मारबी उऐ।
११. जी की अटकी हुऐ सो आपई चलो आय।
१२. जौन बैला खजराऐ गओ तो, भाई मरखा है।
१३. जौन चमार काल पीसन आई ती बज्ज चोर,(बड़ी भँड़ऊ) निकरी।
१४. जा चाय जी की मौड़ी होय, बड़ी ऊधमयाऊ है।
१५. जौ चाय जी कौ मौड़ा होय, बड़ौ उधम्यां है।
१६. डिन्डूबै सब खां व्याई करा दइयो।
१७. चमान्नैं जौन जौरा दै गई तीं सब टूट गये।
१८. जी मैं हिम्मत होय साम्नै आ जाय।
१९. जी कैं होय सो दै देबै।
२०. बासन मैं का धरो।
२१. सबरे ढोर छोर दये, का ?
२२. उतै को को है।
२३. द्वाए सैं क्वाय कड़ गओ ?
२४. बागी क्यांय खों गए ?
२५. ऊ क्वाय जात, दिख तौ ?
२६. जे कक्रा मोई खलीती मैं की नैं डार दए।
२७. पाँच मन जुन्डी काए मैं बनै ?
२८. काए खौं चले आउत ?
२९. बैलन खां हरां हरां काए नई हाँकत ?
३०. काऊ सैं कछू न कइयो।
३१. ऊ के इतै काए पै बैठौ ?
३२. हल्की सिन्दूक मैं कछू नइंयां।
३३. हमाव काम इत्ती चिरियन सौं नई चल्नैं।
३४. जैसइं कैं कुत्ता निकरो ऊ नै लठिया चलाई।
३५. तुमै कितेक चानैं।
३६. तुम कौन दर्जा मैं पड़त, भइया ?
३७. इत्ते रुपइयन सैं तुमाव कैसैं काम चलत ?
३८. तनक मई खों सरक जाव इतै चनन कौ वोरा धन्नें।
३९. उद्नां कै सौ झेल न कइयो।
४०. ऊ कां गओ तो।

४१. ओई घांई हमई गंगा जू सपरबे खों जैबू ।
४२. उद्‌ना चाय ओई आ जाय ।
४३. तुमई आ गए तौई काम पूरो नइं भौ ।
४४. जलौं मैं आउत तलौं गइया लगवा लइयो ।
४५. कै तो भइया तुम आ जइयो नइं ता भौजी खौं पौंचा दइयो ।
४६. मूंड़ के मांएं चैन नइं मिलत ।
४७. जा लुगाई लरकौरी है ।
४८. हमैं उकास नइंयां भौत काम दन्द कन्नैं ।
४९. दिखाऔ भईया हमैं दिख्नैं ।
५०. ग्वासिली कन्नैं तब सुनबू तुमैं ।
५१. तो खों जानै होय तौ चले जाव ।
५२. तुमै जानै होय ता जल्दी चले जाव ।
५३. घरैनूं हीं जू ।
५४. आउत तौ भले हैं, मोए अच्छौ नइं लगत ।
५५. खैबे सैं अब रुको नइं जात जू ।
५६. अपने मेरबानन के संगे चली गई बा ।
५७. चार मईना चौमासे भर पानी बरसत रऔ जू ।
५८. ऊ आदमी बड़ौ गुस्सैल है बड़ी झेल सैं गुस्सा करैं बैठो ।
५९. इकारिया सरीर कौ है ।
६०. जा गड़ैलू कौंरी है ।
६१. तुम कां सैं लौटयाये ?
६२. तैं मदरसै गओ तो काल, कै नइं ।
६३. मताई हन खों लुबा कैं कबै आए ।
६४. रोजइं रोज तुम इतै नौन मांगबे खों आ जात ।
६५. तुम काल कानपुरै पौंच जैव, परौं लौं लौटयाइयो ।
६६. तुम चाय आइयौ चाय नई, हमैं तौ आवनैं है ।
६७. हम खूब जानियत तुमाओ करो नइ होनैं जौ ।
६८. तुम पै जौ घरई नइं छाउत बनत ।
६९. अबै लौं तुम्मैं उठबे बैठबे की हिम्मत नइं आई ।
७०. तुमाव का नांव जल्दी बता ?
७१. ई गांव मैं तुमाई जात भौत है ।
७२. तोए ढोर कानीहौद मैं बिड़े हैं ।
७३. तुमाई खाटैं आंगन में भींज रईं ।
७४. भंड़यन्नैं आदी रातैं तुमाई सिन्दूक कौं तारौ टोड़डारो ।
७५. तुमाए कँधन मैं रकत कड़याओ ।
७६. तुमाई आंखी लाल काए है ?
७७. तुमाई काऊ सैं नइं पटत लटत ।
७८. तुमाए लानैं चून पिसो धरो ।
७९. तुमाई सारी साराज बुलाउत तुमैं ।
८०. तुमाई बाईसिकलैं (पांवगाड़ीं) काए बिगर गईं ।

८१. तुम कैसे सरताए बैठे ?
८२. जौ कच्छू बुरऔ काम नइंयां ।
८३. जा लरकी की की आय ?
८४. जौ लरका की कौ आय ?
८५. जे चाकर कौन बानियां के आंय ?
८६. ई में लम्मौ लम्मौ काय डरो दिखात ?
८७. ई परदनियाँ कौ उन्नां बड़ौ नीचट है ।
८८. जौ न करौ तौ प्यासन मरौ ।
८९. जे सबरे आम अंदकच्चे हैं ।
९०. जे सब सुनाटूं जान परतें ।
९१. इनकी पनइयां सबयार टूट गई ।
९२. इन लुगाइन के आदमी परों से नईं आये ।
९३. ई पै पिछौरा औ गेंडुआ धर दो ।
९४. इनकी का तागत जो चमरौरा मैं घुसैं ।
९५. ई कुमारन् नैं दो ठौ मटका पोंचाए ।
९६. ई की उगइयां कुंचर गईं जू ।
९७. जा बिटियन के कएँ लग्गई ।
९८. ई खां काल लौटा दइयो ।
९९. हमाऔ हुल्डर जेई आय ।
१००. हमाई किलम जेई आय ।
१०१. दूद लग रओ ।
१०२. दूद लगा लो ।
१०३. हरवाए सैं गंइयां लगंवा लो ।
१०४. हम कात जइत, अपनी मताई सैं सोई किभवा दैबी ।
१०५. बरीं लग रईं ।
१०६. पुरा की लुगाई बरीं लगाउतीं ।
१०७. चाय तौ तैं चाय लच्छ्मी बरीं लगवा ले ।
१०८. सब उन्नां सिम गए ।
१०९. बताऊ तौ, इत्तीं जल्दीं कीनें सीं दए ।
११०. ऊ ने बड़ी बैन के लानैं चार कुर्ती सिमवा दईं ।
१११. घर भर खों एक एक सिमवा दो ।
११२. रामान हो चुकी, सैरो होन लगो ।
११३. बा सब सैं बतकाऔ करत, ता करत जान दो ।
११४. गाड़ी न रीती होय ता रितवा देंव ।
११५. मैं रितैंय देत ।
११६. मैंफर खात ।
११७. ऊ ना मैं दोई खईत्ते ।
११८. ऊ रोगिया खों सोई खबा दो ।
११९. बैद मराज खबाएं ।
१२०. उतै को हल्ला भौत दूर लौं सुना परत ।

१२१. पंडज्जी पुरान बांचत ।
१२२. मोए कछू रुपइया और देनैं अबै ।
१२३. रमेश खैंबे को का सकोस ।
१२४. राम राम करबो न भूलौ ।
१२५. खेलत खेलन जी उम्छान लगो (ओकाई आउन लगीं) ।
१२६. रेल आउन चाउत ।
१२७. काऊ (कौनऊ) लिखइया खां बुला लो ।
१२८. नचनारन खां जान दो ।
१२९. आखरस पै इनैं आउनैंइं आओ ।
१३०. बौ इटाँय कौ रिवइया आय ।
१३१. खवाबे में काऊ सैं कम नइयां मैं ।
१३२. ऊ अबै ममयावरे सैं आय आओ ।
१३३. ऊ खेत पै क्वा जू गाउत ।
१३४. हमनै मड़वा पै हो दिखो तो ।
१३५. घाम् मैं जाबे सैं ऊनैं नाई कर दई ।
१३६. तुमाऔ ढोर हमाए खेत मैं घुसो तो ।
१३७. बा गइया पचीस रुपइया मैं आय लई ।
१३८. बे छिइयां हमाई हार मैं फिरतीं हुइएं (हुएं) ।
१३९. बे बसोर दूसरे गाँव मैं रान लगे ।
१४०. उन्नैं कैऊ बेर कैं बुलाओ ।
१४१. हम कौलौं बैठाएँ रइये उनैं ।
१४२. ऊ पै हमाव उपाव नइयां ।
१४३. महामाई उनपै खुसी आँय हैं ।
१४४. हम उनसैं सब कछू कै दैबू ।
१४५. उन गबान पै सब कछू किबा दैबू ।
१४६. अब उऐ काए की कमती आय ।
१४७. उऐ कीनैं आए डरवा दओ ।
१४८. उनकी भैंसियां खंचन मैं धर रहीं ।
१४९. उनकी पौर मैं सब जनैं काल जुरे रए ।
१५० उनकौ का बस जौ पुरापाले की बिटियन खां छेड़ैं ।
१५१. ऊ बैलन खां सपराउत है ।
१५२. ऊ भैंसियन खां सपराउत है ।
१५३. गाड़ी नैं दो, क्वाय निबवाउत ।
१५४. झाँसी कोद खूब मिलत जे फल ।
१५५. हमाई किलमैं कीनैं चुरा लईं ।
१५६. हमनैं सब खां खबा पिबा दओ ।
१५७. हमाई कमीचैं चुखरवन नैं काड् डारीं ।
१५८. जौ कागथ हम पै नई बनत बाँचत ।
१५९. मोय चार पइसा कौ गुर चानैं ।
१६०. हमैं घरै जानै ।

१६१. हमाए लानै तनक कारी माटी लेताइयो।
१६२. मरत मरत लौं हमाऔ भरोसौ करत रए।
१६३. हमाई जगा पै लटोरा दो दिनां काम करै।
१६४. हमाऐं भौत मजूर लगे।
१६५. हम तुमाए लानैं आय बने रए।
१६६. खैबे पीबै मैं कछू इतराज नइयां।
१६७. हम ई सैं कछू जादां न दैबू (दैबी)।
१६८. हमाओ आंगन चार हींसा जादां है।
१६९. हमाए लानैं दो ठउआ कचुल्ला लेताइयो।
१७०. हमाई खलीती बिल्कुल रीती है।
१७१. ठंड के मारैं हमाई उंगइयां सबयार ठटुर गईं।
१७२. हमाए संगे बद्दीनरान तौ न चलौ?
१७३. कचारी में सांची सांची कैबी।
१७४. हमाए इतै परसाल अच्छौ छाव भओ तो।
१७५. अंगायत पं० जू खाँ बुलाबू।
१७६. ल्या कैं दै राखो। दै कैं जात राव।
१७७. हँसा कैं उंसी डाँकाबे न करे।
१७८. अटाई (मचयारा) पै हो कड़ जइयो।
१७९. तलवा पै चलबू जू अपुन।
१८०. खबा पिबा (से पालकैं) बड़ो कर दैबो हमाऔ काम तो।
१८१. जादां का लिखिए पल्टा जरूर दइयो।
१८२. बिटिया खां हमई ल्वा लाइबू, पठै दैबू।
१८३. खातई मैं मिली ती चिट्ठी।
१८४. निंगत निंगत बा हार गई।
१८५. जे आम भौत दिनन सैं आंय धरे
१८६. बा ऐसैं नौनैं खेलत्ती।
१८७. बानियां कां सैं लै आऊ।
१८८. इतै लोदी भौत रात।
१८९. ठाकुरन कौ गांव आय जौ।
१९०. नांय्रु बामनन की बखरी भौत हैं।
१९१. पानी के बरसैं सब ढोर टिल्ल पिल्ल हो गये।
१९२. हमाए आंगूं तौ तुम निरखटकैं रऔ।
१९३. क्यांय खायं है नऔगांव।
१९४. बरत आगी मैं गोड़ौ खिसल परो।
१९५. पन्द्रा रोज खां हमैं महाभारत बैठान्नैं।
१९६. मैं ई खां लैंअ जात।
१९७. मोय नइयां जू पतौ कै नान आऐ कै नई।
१९८. तुम।व जस कबउं न भूल्बी।
१९९. तुम अपनौ नांव बताऊ।
२००. ठाँओ रौ (ठाऐं रौ) तुमैं अबै देखैं लइत।
२०१. ई कुची सैं बौ तारो खुल जैय।

१. तुम काकी जू कैं गए ते का ?
२. दो थापरन मैं तुमरो मों सूदो हो जायगो ।
३. व्याव मैं तुमैं चलनैं परैगो ।
४. नुमास मैं अपन सब चलैंगे ।
५. अपनौ कमरा समार के धरियो ।
६. अपनी गलेफ (फर्द) कां भूल आए ।
७. छोटे भइया के व्याव मैं अपनी सबरीं थारीं भँड़याई मैं गईं ।
८. जे अपनेई हर हैं ।
९. जो घर में घुसो बोई मारो गओ ।
१०. जो घर मैं घुसैगो बौई मारो जायगो ।
११. जे की अटकैगी बौई मेरे झां आयगौ ।
१२. जौ बैल राठ गओ बौ भौत खाबे बारो है ।
१३. जो चमरिया काल पीसबै आई ती बा बड़ी भड़ैल (भड़ऊ) निकरी।
१४. जा चाय जे की मौड़ी होय, है बड़ी ऊधमन ।
१५. जे चाय जे को मौड़ा होय, है बड़ौ ऊधमी ।
१६. सन्झा कैं जित्ते आंयं सबखौं खबा दइयो ।
१७. चमरिऐं जो लेजैं दैं गई तीं, सबरी टूट गईं ।
१८. जेमै तागत होय सामूं आय ।
१९. जे फै होय बौ देबै ।
२०. बासन मैं का धरो है ।
२१. सबरे ढोर छोर दये का ?
२२. मां को को है ?
२३. द्वार फै सैं को कड़ गए ?
२४. भंड़या कितै खों भग् गए ?
२५. दिखैं तौ सई, बौ को जा रओ ?
२६. जे ककरिऐं मेरे खींसा मैं कोन् नैं डार दईं ?
२७. पांच मन जुआंर काए मैं बनैगी ?
२८. काए खों चले आ रए ?
२९. बैलन खों धीरे धीरे काए नई रिंगात ?
३०. कोई सैं कछू मत कइयो ।
३१. बाके झां काए फै बैठोगे ?
३२. हल्की संदूक मैं कछूअई नईयां ।
३३. मेरो काम इत्तीं चिरइयन सैं नई चलेगो ।
३४. कुत्ता जैसोई निकरो बानें लठिया चलाई ।
३५. तुमैं कित्ती चइए ?
३६. तुम कां के दरजा मैं पड़त हो ?
३७. तुम कैसैं इत्ते रुपइयन सैं काम चला लेत हो !
३८. नैंक उत्थई खों हट जाऔ, झां चनन कौ बोरा धन्नैं है ।
३९. बा दिनां की तरैं, (घांई,) लेतलाली न करौ ।
४०. बौ काँ गओ तो ?

४१. बा घांई मैं सोई गंगा मइया मैं न्हांने जाउंगो ।
४२. बा दिनां चाय बौ सोई आ जाय ।
४३. तू आओ तौंई काम पूरी नई भौ ।
४४. मैं आत्थौं तौ नौ गइया लगवा दइये ।
४५. चाय तुम अइयो चाय फिर भौजी खौं पौंचा दइयो ।
४६. मूंड़ दूखबे के मारैं मोय चैन नइऐं ।
४७. जा बइअर बेटाबारी है ।
४८. मोय कां फुरसत, भौत काम डरो है ।
४९. अच्छा, दिखाव जाय ।
५०. गोस्टी कल्लऊं फिर तुमरी बात सुनउंगो ।
५१. तू जात होय तौ चलो जा ।
५२. तोय जानेई है तौ चलो जा ।
५३. मैं बाकी बइअर हौं ।
५४. बे जात रात हैं मोय अच्छौ नई लगै ।
५५. अब तौ खाबो होत ।
५६. अपनी गुइंयन के संगै बा अभई चली गई ।
५७. चौमासे मैं चार मइनउं पानी बरसू करो ।
५८. बौ गुस्सैल है बड़ी देर को गुस्सा मैं बैठो है ।
५९. टीटई बानौ है ।
६०. बड़ी नरम गड़ेरी है ।
६१. तू कां सै लौट रओ ?
६२. तू काल इस्कूल गओ तो कै नई ?
६३. मताई खौं लिबाय कैं तुम कब नौं आउगे ?
६४. तुम रोजई नोन मांगबे आ जात ।
६५. तू काल नौ कानपूर पोंच जायगो परौं लौट अइए ।
६६. तुम आव चाय न आव हमन तौ जरूर जायंगे ।
६७. मैं खूब जान्त् हौं तोसैं जौऊ नई बनेगो ।
६८. तुम सैं जौ घरई छात नई बनत ।
६९. अबै तोमैं उठबे बैठबे की ताकतइ नई आई ।
७०. तेरौ नांव का है, जल्दी बता ।
७१. जा गांव मैं तेरी बिरादरी के आदमी जास्ती हैं ।
७२. तेरे ढोर कानीहौत मैं बिड़ें हैं ।
७३. तेरी खाटें आँगन मैं भीज रईं ।
७४. भंड़यन् नैं आधी रात खौं तुमाई सन्दूक को तारो तोड़ दओ ।
७५. तुमरे कंदा सैं खून गिर रओ ।
७६. तुमाई (तुमरी) आंख मैं जा ललाई काए है ?
७७. तुमरी कोऊ सैं नई बनै ।
७८. तुम खौं आटौ पिसो धरो है ।
७९. तुम खौं तुमरी सारैज बऊ बुलात है ।
८०. तुमरी साइकलें पन्चर हो गईं ।

८१. तुम का वैंसेई बैठे हौ ?
८२. जौ कछू बुरो काम नईऐं ।
८३. जा कौन की मौड़ी है ?
८४. जौ कौन कौ मौड़ा है ?
८५. जे आदमी कां के सेठ के हैं ?
८६. जा मैं जौ लम्बो लम्बो का डरौ है ?
८७. जा धुतिया कौ कपड़ा अच्छो है ।
८८. जौ नई करौगे तौ प्यासन मर जैव ।
८९. जे सबरे आँम अबै अदकच्चे हैं ।
९०. इन सबरिन पै सोनै को पानी चड़ो है ।
९१. इन की पन्हइंयाँ बिल्कुल्लई टूट गईं ।
९२. इन बइरब के आदमी परों सैं नई आये ।
९३. इन फै चादरैं और उसीसे और लगा दो ।
९४. इनकी का बस की है, जो चमरानै मैं घुसैं ।
९५. जा कुम्हारन नैं दो मथनियें पौंचाई हैं ।
९६. जा की उंगरियें कुचर गईं ।
९७. जा मौड़िन के कैबे मैं आ गई ।
९८. जाए काल मुरका दइयो ।
९९. जौई मेरौ होल्डर है ।
१००. जेई मेरी कलम है ।
१०१. दूद लग रओ है ।
१०२. दूद लगा लो ।
१०३. आसामी सैं दूद लगवा लो ।
१०४. मैं कैत्तो हौं बाई सैं सोई कैलवा दौंगो ।
१०५. बरीं दिब रई हैं ।
१०६. बगल की बइरैं दै रई हैं ।
१०७. चाय तू चाय लच्छ्मी बे बरीं दिबा दो ।
१०८. सबरे कपरा सिब गए ।
१०९. इत्ती जल्दीं कौन् नैं सी दए ?
११०. बानैं बड़ी भैन खौं चार कुरतियाँ सिंबाई ।
१११. अब सबन खों एक एक सिंबा दो ।
११२. रामान हो गई अब आल खंड हो रओ ।
११३. बा सबसैं बतरात है तौ बतरान दो ।
११४. गाड़ी रीती है नई तौ अभई खाली करवा दऊंगौ ।
११५. मैं खुदई रितौंय देत हौं ।
११६. सैत खब रओ (खबत) ।
११७. बौ और मैं दोई खा रए ते ।
११८. बा मरीजै सोई खबा दो ।
११९. हकीम जू खब्बा देंगे (देइंगे) ।
१२०. मां कौ हल्ला बड़ी दूर नौ सुनाई देत है ।

१२१. महराज भागवत बांच रए हैं ।
१२२. मोय अबै कछू रुपइया और देनें हैं ।
१२३. रमेस, खाबै मैं काए की सरम ।
१२४. जै राम जी की करबो मत भूलू करे ।
१२५. खेलत खेलत जी फिरन लगो ।
१२६. रेल आबे बारी है ।
१२७. कोई लिखबे बारे खों बुलाव ।
१२८. नचबै बारिन खौं जान दो ।
१२९. अखीर मैं उन खौं आनइ परो ।
१३०. बौ इटाबे मैं रैत है ।
१३१. खबाबे मैं मैं कोई सैं कम नाई हौं ।
१३२. बौ मामन के झां सैं आ रओ है ।
१३३. खेत की मेड़ पै बौ को गा रओ है ।
१३४. बा नैं छत्त पै सैं दिखो तो ।
१३५. घाम् मैं चलबे सैं बा नैं नाई कर दई ।
१३६. बो ढोर मेरेई खेत मैं चर रओ तो ।
१३७. बा गइया पचीस रुपइयन मैं लईऐ ।
१३८. बे बकइएं डांग मैं फिर रई होंयगी ।
१३९. बे बसोड़ और कऊं गांव मैं रैन लगे ।
१४०. उन्नैं तुमै कैऊ बेर बुलाव(ओ) ।
१४१. हम उनैं कब नौं बिठाएं ।
१४२. बा पै मेरौ कछू बस नइयाँ ।
१४३. दुर्गा मइया उन पै किरपा करत ।
१४४. मैं बा सैं सब कछू कै दउंगो ।
१४५. उन गभन सैं मैं सब कछू किभा दउंगो ।
१४६. अब बाय का चइए ?
१४७. बाय कौन् नें डरवा दओ ।
१४८. बा की भैंसैं किचाय(गिलाव) मैं फंस गईं ।
१४९. बा की पौर मैं काल सब जनैं जुरे ते ।
१५०. उनकी का मजाल जो मौड़िन खों छेड़ैं ।
१५१. बौ बैलन खों नभा रओ है ।
१५२. बौ भैंसन खों नभा रओ है ।
१५३. गाड़ी नैह दो को निभा रओ है ।
१५४. झाँसी तनै जौ फल खूब मिलत ।
१५५. मेरी कलमैं कौन् नैं चुराईं ?
१५६. हमन् नैं सब खों जिबाय दओ ।
१५७. मेरी कमीचैं चौंखरन् नैं काट दईं ।
१५८. जा चिट्ठी मो सैं पड़त नई बनैं ।
१५९. मोय चार पइसा कौ गुड़ चाइए ।
१६०. मोय घर जानैं ।

१६१. मोय नेक सी कारी माटी लइयो ।
१६२. बा नैं मरतन मो फै भरोसौ करो ।
१६३. मेरी बजाय लटोरा दो चार दिनां काम कर जायगो ।
१६४. मेरे खेतन पै मुलक केरे आदमी काम कर रए ।
१६५. हम तुमाई बाट देख रए ।
१६६. जेबे मैं हमैं कोई हरजा नई ।
१६७. हम जासैं जादा कछू नई देंयगे ।
१६८. हमाओ आंगन तुमाए सैं चार गुनो बड़ो है ।
१६९. हमाए लानैं दो कटोरा लेत अइयो ।
१७०. हमरौ खींसौ रीतौ है ।
१७१. ठंड के मारैं हमरी उंगरिऐं ठुटुर गईं ।
१७२. हमरे संग बद्रीनाथ चलहौ ?
१७३. कचैरी मैं हम सब कछू खोल कैं कै देंगे ।
१७४. हमरे झां पर कैं एक बड़ो भारी जल्सा भओ तौ ।
१७५. अगाड़ी साल हम नेरू (लें डूजू) खौं बुलायेंगे ।
१७६. ला कैं देव, दै कैं जाव ।
१७७. हांसी मैं टारबो अच्छी नइएं ।
१७८. छत फै हो चले जइओ ।
१७९. तला की पार फै घूमबे चलेंगे ।
१८०. पाल पोस कैं बड़ो करबो हमरो फरज हैतो ।
१८१. भौत का लिखों तुम ऊतर जरूर दइओ ।
१८२. मौड़ी खों लिबाबे करबे हमई जांगे ।
१८३. रोटी जैंत मैंई बाय चिट्ठी मिली ती ।
१८४. चलत चलत बा भौत हार गई ।
१८५. जे आम कैई दिनां के धरे ते ।
१८६. बा इत्ती अच्छी खेल रई ती ।
१८७. आकैं बनिया के झां सैं लै जाव ।
१८८. झां लोदी भौत रैत हैं ।
१८९. जा ठाकुरन की बस्ती है ।
१९०. जा तरफ बांभनन के घर भौत हैं ।
१९१. बूंदें गिरतई सबरे ढोर फैल फूट गए ।
१९२. मेरे होतन तुम निसफिकर रऔ ।
१९३. नौगाँव कां के तनैं है ।
१९४. बरत आगी मैं बाकौ पांव रिपट गओ ।
१९५. पन्द्राक दिन खों हमैं माभारत बंचवानैं ।
१९६. मैं जाय लैंय जात हौं ।
१९७. मैं नई जानौ खवासन आयगी कैं नई ।
१९८. तुमरौ ऐसान कभौं नई भूलौंगो ।
१९९. तू अपनौ नांव बता ।
२००. ठाड़ो रऔ तोय अभई देखत हौं ।
२०१. जा कुची सैं जौ तारौ खुल जायगो ।

पाली (जिला झाँसी)

१. तुम काकी इतै गए ते ?
२. दो थापरन मैं तुमाव मौं सूदो होजै ।
३. व्याव मैं तुमैं चलनै आय ।
४. तुमास मैं अपन तपन सोउ चलबू ।
५. अपनो कमरा समार कैं धरियो ।
६. अपनी रिजाइ कितैं भूल आए ।
७. हल्के भइया के व्याव मैं अपनी सबरीं टाठीं चोरी चली गईं ।
८. जे हर अपनईं आँय ।
९. जी नैं घर मैं पाँव धरो सो बोउ मारो गओ ।
१०. जु कोऊ घर मैं पाँव धरैं सो बेउ मारो जै ।
११. जी की बीदी हुइए सो बेऊ मोरे नाँ आय ।
१२. जौन बैल राठ गओ है बो भारी मारबे बारो है ।
१३. जौंन चमारन काल पीसबे आइ ती बा बड़ी भँड़ऊ है ।
१४. जा चाय जी की बिटिया होवै बड़ी चालन है ।
१५. जौ चाय कौनउं कौ लरका होय बड़ो चाली है ।
१६. दिन डूबें जु कोऊ आ जाँय सब खों बियारी करा दियो ।
१७. चमारन जौन जेवरा दै गई ती बे सब टूट गये ।
१८. जी में जोर होबै बौ हमाए सामैं आबै ।
१९. जी के लिगाँ होबै सो दै देबे ।
२०. बासन मैं का धरे है ?
२१. का सबरे ढोर छोर दए ?
२२. उतै को को है ?
२३. दुवारे सें को-को कड़ गओ ?
२४. डाँकू की बगलै भग गये ?
२५. देखौ, बौ को आ जा रओ ?
२६. जे ककोरियाँ मोरे खलीता मैं कौनें धर दईं ।
२७. पाँच मन जुनई काय मैं बनैं ?
२८. काए खों चले आउत ?
२९. बैलन खौं हौलै हौलै काए नइँ हाँकत ?
३०. कोऊ सें कछू नइँ कइयो ।
३१. ऊ के इतै काए पै बैठौ ?
३२. हल्की बगसिया मैं कछू नइयाँ ।
३३. मोरो काम इतेक चिरइयन सें नइँ चलै ।
३४. कुत्ता जैसउ कड़े ऊसउ लठिया दे दइ ।
३५. तोय कितेक चानैं ?
३६. तूं कै दरजा में पड़ रओ ?
३७. तैं इतेक रुपइयन मैं कैसें काम काड़ लेत है ?
३८. तनक माँइखौं सरक जइए कायकैं इतै चनन कौ बोरा धरनें है ।
३९. उदना घाँइँ झेल जिन करिओ ।
४०. बौ काँ गओ तौ ?

४१. ओई घाँई हम सोउ गंगाजू खौं सपरबे जैंय ।
४२. ऊ दिनाँ चाय बे सोउ आ जैं ।
४३. तूं आओ तोउ काम पूरो नइँ भओ ।
४४. जौलौं मैं आउत हौं तौलौं गइया लगा लियो ।
४५. चाय तुम आइयो चाय भौजी खौं पठै दियो ।
४६. मूड़ के मारैं मोय साता नोइँ परत ।
४७. जा लुगाई मौड़ा वारी है ।
४८. मोय उकास क्यांय है, भौत काम डरो है ।
४९. दिखइये रे नौंय ई खों ।
५०. ढोरन कों काम करें लऊँ ई के पछाइँ बैट कैं तोरी बात सुनों ।
५१. कजंत तैं जात होय तो जा ।
५२. कजात तोय जानैं होय तौ झेल जिन कर ।
५३. मैं ऊ की घरबारी आँव ।
५४. बे चाय जब जात हैं मोय नौंनौं नई लगत ।
५५. खाबे खौं अब रुकौ नई जात ।
५६. अपनी गुइँयन के संगे बे अबई चली गई ।
५७. चार मइना बसकारे मैं पानी बरसत रओ ।
५८. बौ नाराज है, बड़ी देर सैं नाराज बैठो है ।
५९. भारी पतरे आँग को है ।
६०. भाई कोंरी गड़ैलू है ।
६१. तूँ कितै सैं लौट आओ ?
६२. तूँ काल मदरसा गओ तो कै नई ?
६३. मताई हरन खौं लुआ कैं तुम सब जनैं कबै आऔ ?
६४. तुम रोज नौंन माँगबे आ जात ।
६५. तूँ काल नौं कानपुर पौंच जैय और परों नौं लौट आइये ।
६६. तुम औरैं आऔ चाये नई आऔ मैं जरूर ज्यों ।
६७. हम खूबई जानत कै तुम सैं ज्योउ नैं हुइये ।
६८. तूँ सैं जौ घरई छाउतन नई बनत ।
६९. अबै तूँ मैं उठबे बैठबे की तागत नई आई है ।
७०. तोरो नाँव का है झट्टई बता ।
७१. ई गाँव में तोरी जात के लोग जादाँ हैं ।
७२. तोरे ढोर काँनीभौत में पिड़े हैं ।
७३. तौरी खाटें आँगन में भींज रई हैं ।
७४. भँड़यन् ने आदी राते तुमाये सन्दूक कौ तारो टोर डारे ।
७५. तुमाये कंदा सैं लोउ टबक रओ ।
७६. तुमाई आंखन में जा ललामी काये है ।
७७. तुम लोगन की काउ सैं नई बनत ।
७८. तुमाए लाजें चून पिसे धरे ।
७९. तुमें तुमाई साराज टेर रई है ।
८०. तुमाई बाईसिकलें पंचर हो गईं ।

८१. तुम का ठलुआ बैठे हो ?
८२. जौ कछु बुरओ काम नोंई।
८३. जा मौंड़ी कौँन की आ ?
८४. जौ लरका कौँन को आ ?
८५. जे नौंकर कौंन सेट के आँ ?
८६. ई में लामों लामों का या डरे।
८७. ई धुतिया को उन्ना भारी नीचट है।
८८. जो नई करौ तौ तुम प्यास मैं मर जैऔ ।
८९. जे सबरी अमियाँ अबै अदपकीं हैं ।
९०. इन सब पै सोने को पानी चड़े हैं।
९१. इनकी पनइयाँ निट्ठुअई टूट गई।
९२. इन लुगाइयन के मुंस परों से नई आये हैं।
९३. ई पै पिछौरा औ गेंड़ुआ और बिछा दो।
९४. इनकी का मजाल जो अब चमरौला मैं घुसें।
९५. ई कुमारन नें दो मटकियां पौँचाई हैँ ।
९६. ई की नुंगरियाँ कुच गई हैँ ।
९७. जा बिटिअन के कैबे में आ गई।
९८. इऐ काल लौटा दिओ।
९९. मोरो खत जेऊ आ।
१००. मोरी कलम जेइ आ।
१०१. दूद लग रओ।
१०२. दूद लगा लो ।
१०३. नौकर सैँ दूद लगवा लो।
१०४. मैँ कत तोँ होँ मताइ सों सोउ कुवा दैँऔँ ।
१०५. बरीँ दई जा रई।
१०६. पुरा की लुगाई बरीँ दै रई हैं।
१०७. तूं कै लच्छमी उन बरियन खोँ दुआओ।
१०८. सब उन्ना सिएँ गये।
१०९. भलाँ इत्तेक जल्दी कौंन नैँ सिंए।
११०. ऊनेँ बड़ी बैन की चार ठउआ कुरतियाँ सुंआई।
१११. अब सब खोँ एक एक सुआँ दो।
११२. रामान हो चुकी सैरो हो रओ है।
११३. बा सबसेँ बात करत है तो करन दौ।
११४. गाड़ी खाली है नईं तो अबई खाली करवा दैओं।
११५. मैं खुदइ रितैँय देत ।
११६. मछोँ खाइ जा रई।
११७. बौ और मैँ दोइ खा रए ते।
११८. ऊ रोगी खोँ सोउ खुवा दो।
११९. बैदजू खुवा दैँय।
१२०. माँ को हल्ला भारी दूर नौँ सुनाइ देत है।

१६१. हमाय लानैं तनक सी कारी माटी लेत आइयो ।
१६२. ऊनैं मोपे मरत मरत नौं भरोसौ करे ।
१६३. मोरी जाँगाँ लटोरा दो दिनाँ काम करै ।
१६४. मोरे खेतन पै भारी आदमी काम कर रये ।
१६५. मैं तुमाय लानैं रुके हौं ।
१६६. खाबे मैं मोखों कौनऊँ उजर नइयाँ ।
१६७. मैं ईसैं जादाँ कछू नइँ दैंओं ।
१६८. मोरो आँगन तुमाय सैं चौगुनों है ।
१६९. मोरे लानैं दो ठउआ बिलियाँ लेत आइयो ।
१७०. मोरो खलीता बिलकुलइ रीतो है ।
१७१. ठंड के मारे मोरी नुंगरियाँ बिलकुलई ठिटुर गईं ।
१७२. मोरे संगे बदरीनाथ चलौ ।
१७३. कचैरी मैं हम सब साँसी साँसी कै दैं ।
१७४. हमाय इतै परकी साल एक बड़ौ भारी जलसा भओ तो ।
१७५. परकी सालै हम सब जनैं पंडित नेहरू खौं बुलाँय ।
१७६. ल्या कैं दै दो, दै कें चले जाऔ ।
१७७. हँस कै बैलाबो अच्छौ नइयाँ ।
१७८. बान पै हौ कड़ जइयो ।
१७९. तला पै टैलन चलें ।
१८०. खुवा पिया कैं बड़ो करबो हमाओ काम हतो ।
१८१. जादाँ का लिखें आप जुआब जरूर दिओ ।
१८२. बिटिया खों लुआवे पठैबे हमई जैंय ।
१८३. खातई में उये चिट्ठी मिली ती ।
१८४. निंगत निंगत बा निठुअई हार गई ।
१८५. जे अमियाँ भौत दिनन की धरीं ती ।
१८६. बा ऐसी नौंनी खेल रई ती ।
१८७. आकैं बाँनियाँ के ना सैं लै जाऔ ।
१८८. इतै लोदी भौत बसत हैं ।
१८९. जा ठाकुरन की बसती है ।
१९०. ई तरफ बामनन की बसीगत भौत है ।
१९१. बूँदें परतनई सब ढोर बिडर गये ।
१९२. हमाये होत आप बे फिकर रैबें ।
१९३. नौगाँव कितायँ है ।
१९४. बरत आग मैं ऊको पाँव रिरक परे ।
१९५. पन्दरा दिनाँ खों हमैं महाभारत बँचवाउनैं है ।
१९६. हम इयै लैंय जात ।
१९७. मैं नोंइँ जानत खबासन आउनैं के नई ।
१९८. तुमाओ ऐसान कबउँ नई भूलैं ।
१९९. तुम अपनौ नाँव बताव ।
२००. ठाँड़े रौ तोय अबई देखत ।
२०१. जौ तारो ई कुची सैं खुल जै ।

१. तुम कक्को के इतै गये ते ?
२. दो थापरन में तुमाओ मौ सीदो हो जै।
३. व्याव में अपुन कों चलनैं परहै।
४. नुमास में हमऊं तुमऊं चलिये।
५. अपनो कमरा समार के धरियो।
६. अपनी गलेफ (सुपेती) कितै भूल आये।
७. हल्के भईया के व्याव मैं अपनी सब टाठी चोरीं चई गईं।
८. जे हर अपनेई हैं।
९. जीनैं घर के भीतर पांव धरो, कैं बोई मारो गओ।
१०. जो घर के भीतर पांव धरहै बोई मारो जैहै।
११. जाकी अटकी हुहै बो हमाये इतै आहै।
१२. जौन बैला राठैं गओ है बो भौत चारू है।
१३. जौन चमारें काल पीसन आई तीं बे भौत भड़ऊं कढ़ीं।
१४. जा चायें जी की बिटिया होय बड़ी चबाइन है।
१५. जौ चायें जी कौ लरिका होय, बड़ौ चबाई है।
१६. अथये कें जो जो आ जाय, सब को खबा दिइयो।
१७. चमारैं जौन डोरें दै गई तीं बे सब टूट गईं।
१८. जीमैं तागित होय सो अँगाऊं आ जाय।
१९. जी पै होय बौ दै देय।
२०. बासन मैं का धरो।
२१. का सब ढोर (चौंपे) ढिल गये।
२२. उतै को को है ?
२३. दुआये सें को कढ़ (निकर) गए ?
२४. डाँकू कितै तर भग गये ?
२५. देखौ, बौ को जा रऔ ?
२६. जे ककरा हमाई जेब मैं कीनैं डार दये।
२७. पाँच मन जुन्डी काये मैं समैहै।
२८. काये चये आ रये ?
२९. बैलन कों हरें हरें काये नई चलाउत।
३०. काऊ सें कछू नई कईयो।
३१. बाके हिनाँ (इतै) काये पै बैठहौ ?
३२ छोटी (नेंकसी) सिन्दूक में कछू नईयां।
३३. हमाओ (मोरो) काम इत्ती चिरईयन सें न चलहै।
३४. कुत्ता जैसेई निकरो, ऊनै लठिया मार दई।
३५. तुमें कित्ती चईये।
३६. तुम कै दरजा मैं पढ़त ?
३७. तुम इत्ते रुपईयन सें कैसे काम चला (निकार) लेत ?
३८. नेंक उतई को सरक जाव, काय सें इतै चनन कौ बोरा धन्ने है।
३९. बा दिन की नाई देर नई करौ।
४०. बौ कितै गओ हतौ।

४१. बा की तरै (नाई) मैंऊं गंगा जी सपरन जैहों ।
४२. ऊ (बा) दिन चाये स्यात बौऊ आ जाय ।
४३. तैंऊं आऔ, ताऊ तौ काम पूरौ न भओ ।
४४. जब नौं मैं आऊत, तब नौं गईया दुआ लिइओ ।
४५. तुम आव चायें भौजी कों पौंचा दैव ।
४६. मुँड़ के मारें मोय चैन नई मिलत ।
४७. जा जनी लरकौरी है ।
४८. मोय औसर कितै. भौत काम डरो ।
४९. भलें नेंक जाय दिखाव ।
५०. उसार कल्लें तंई फिर हमैं बैठकें तुमाई बात सुनें ।
५१. तें जात होय तौ जा ।
५२. तोय जानेई है, तौ देर नई लगा ।
५३. मैं (हम) उनके घर सें हैं ।
५४. बे जात रहत हैं, अकेलें मोय अच्छो नई लगत ।
५५. खाये सें अब नई रुकौ जात ।
५६. अपई सकियन के संगै बा अबई-अबई चई गई ।
५७. चार मईना चौमासे भर पानी बरसत रऔ ।
५८. बौ किरोधी हैगो, भौत देर सें गुस्सा मैं भरौ बैठो ।
५९. इसकरी देवं कौ है ।
६०. भौत मुलाम लौंकिया है ।
६१. तें कितै सें लौट परौ ?
६२. तें काल मदरसें गओ तौ कै नई ?
६३. अम्मा (मताई) हरन को लिबा कें अपुन सब जनें कबै आहौ ?
६४. तुम रोज नोन माँगन आ जात ।
६५. तें काल नों कानपुरै पौंच जै, परों नों लौट परिये ।
६६. तुम सब जनें आऔ चायें नई आओ, हम अबसई जैहैं ।
६७. हम खूब जानत तोसें जौऊ ना हूहै ।
६८. तो सें जौऊ घर छाउत नई बनत ।
६९. अबै तो में उठबे बैठबे की तागित नई आई ।
७०. तोरौ नांव का है, जल्दी बता दै ।
७१. जा गांव में तोरी जात (बिरादरी) के जादा हैं ।
७२. तोये (तोरे) ढोर कानीहौद में बिड़े ।
७३. तोई (तोरी) खटियां आंगन में भीज रईं ।
७४. चोरन (भड़ियन) नैं आदी रातै तुमाई सिन्दूक कौ तारो टोर दओ ।
७५. तुमाये कँधा सें लोऊ टपक रओ ।
७६. तुमाई आंख लाल काय है ?
७७. तुम लोगन की काऊ सें नई पटत ।
७८. तुमाये लानें चून पिसौ धरौ ।
७९. तुमाई सरज बुला रई ।
८०. तुमाई साईकिलें (पागाड़ीं) पन्चर हो गईं ।

८१. तुम का सरते बैठे ?
८२. जौ कोऊ (कछू) बुरौ काम नईयाँ ।
८३. जा बिटिया की की है ?
८४. जौ लरका की कौ है ?
८५. जे नौकड़ की सेट के हैं ?
८६. जामें लम्बो लम्बो जी का डरो ?
८७. जा धुतिया कौ कपड़ा भौत मजबूत है ।
८८. जौ नई करहौ तौ तुम पियास में मर जैव ।
८९. जे सबेरे आँम अबै अदपके हैं ।
९०. इस सब पै सोने कौ पाँई चढ़ो ।
९१. इनकी पनईयाँ बिरकुल टूट गईं ।
९२. इन जनियन के आदमी परों सें नई आये ।
९३. ई पै चादरा औ तकिया और लगा देव ।
९४. इनकी का दम कै अब चमड़ौरा में घुस पायें ।
९५. जा (ई) कुमारिन नें दो मटका पौंचाये ।
९६. जा की उंगइयां कुचर गईं ।
९७. जा बिटियन के कहे में आ गई ।
९८. जा कों काल लौटा दिईयो ।
९९. हमाव हुंडिल जौई है ।
१००. हमाई कलम जई है ।
१०१. दूद दोव जा रओ ।
१०२. दूद दो लेव ।
१०३. नौकड़ सें दूद दुवा लेव ।
१०४. हम तौं कतई हैं, मताई सेंउ कबा देंयूं ।
१०५. बरीं दई जा रईं ।
१०६. परोस की जनीं बरीं दै रईं ।
१०७. तें कै लच्छमी उन बरियन कों दिबा ले ।
१०८. सब कपड़ा सिम गये ।
१०९. बाभा, इत्ती जल्दीं कीनैं सी दये ।
११०. ऊनें (बानें) बड़ी भैन कों चार कुर्त्ती सिमवाई ।
१११. अब सब कों एक एक सिमा देव ।
११२. रामान बच्चुकी, अब सैरो हो रओ ।
११३. बा सबई सें बातें करत, तौ करन्दो ।
११४. गाड़ी रीती है, कै नई, नई तौ अबई रितवा दैहैं ।
११५. हम खुद रितयें देत ।
११६. सहत खब रई ।
११७. बौ औ हम दोउ जनें खा रये ।
११८. बा रोगियाऊ कों खबा देव ।
११९. बैद जू खबवा दैहैं ।
१२०. उतै कौ हल्ला भौत दूर नों सुनात ।

१२१. पुरोत जू भागवत सुनै रये।
१२२. मोय अबै कछू रुपईया और दैबे कों हैंगे।
१२३. ऐं रमेश, खाबे में का सकुचाव।
१२४. राम जुहार करिबौ नई भूलियत।
१२५. खेलत खेलत जी मचलन लगौ।
१२६. गाड़ी आउन कों है।
१२७. कौनऊं लिखईया कों टेरौ।
१२८. नचनारिन कों जानु देव।
१२९. अखीर में उनें आनेई परो।
१३०. बौ इटावे कौ है।
१३१. खिलाबे में मैं काऊ सें कम नईयां।
१३२. बौ अम्मा के इतै सें आ रओ।
१३३. खेत की मेंड़ पै बौ को गा रओ।
१३४. बानें छत पैसें ढूंको हतो।
१३५. घास में चलबे सें बानें इन्कार कर दओ।
१३६. बौ ढ़ोर मोरे (हमाये) खेत में चरत्तो।
१३७. बा गईया पच्चीस रुपईया में लई गई।
१३८. बे छिरियां हार में फिर रई हूंहैं।
१३९. बसोरन की बा बसीकत कऊं और गांव में बस गई।
१४०. उन्नें तुमें कैऊ बार बुलवाओ।
१४१. हम उनकों कबनों बैठारें रयें।
१४२. बापै हमाओ बस नई चलत।
१४३. दुरगा मईया उन पै पिरसन्द हैं।
१४४. हम बासें सब कछू कै दें।
१४५. उन गवाअन सें हम सब कछू कबा दें।
१४६. अब बाऐं का बात की कमीं।
१४७. बाकों कीनें डरवा दऔ।
१४८. बाकी भैंसें गिलारे में फंस गईं।
१४९. बाकी पौर में काल सब जनें इखट्टे भये ते।
१५०. उन लोगन की का दम कै मुहुल्ला की बिटियन कों छेंकें।
१५१. बौ बैलन कों सपरा रऔ।
१५२. बौ भैंसन कों सपरा रऔ।
१५३. गाड़ी नै देव, को नवा रओ।
१५४. भांसी तर जौ फल खूब मिलत।
१५५. हमाई कलमें कीनें दुका लईं।
१५६. हमनें सबकों खबा पिबा दओ।
१५७. हमाई कमीचें चुखरन नें कतड्डारीं।
१५८. जा चिठिया हमसें (मोसें) नई पड़त बनहै।
१५९. मोय चार पईसा कौ गुर चईये।
१६०. मोय घरै जानें।

१६१. हमाये लानें नेंक कारी मट्टी लयें आईओ ।
१६२. बानें मरत खन नों मोपै भरोसो राखौ ।
१६३. हमाई जगा पै लटोरा दो दिनां करहै ।
१६४. हमाये खेतन पै भौत से मँजूर काम कर् रए ।
१६५. हम तुमाये लानें रुके ।
१६६. आबे में हमें कोऊ इतराज नईयां ।
१६७. हम जासें जादां कछू न दैहें ।
१६८. हमाओ आंगन तुमाये सें चार हींसा है ।
१६९. हमाये लानें दो ठौरें कटोरा लयें आईओ ।
१७०. हमाई जेब बिरकुल खाली डरी ।
१७१. ठंड के मारें हमाई उंगइँयाँ बिरकुल ठिट्टुर गईं ।
१७२. हमाये संगे बद्दरीनाथन चलहौ ?
१७३. कचैरी में हम सब साप साप कै दें ।
१७४. हमाये इतै पर की साल एक भारी जिलसा भओ तौ ।
१७५. पर की साल हम सब जनें पं० नेरू जी कों बुलैहैं ।
१७६. ल्याकें दै देव, औ दैकें चले जाव ।
१७७. हँस कें टार दैबो अच्छो नईयां ।
१७८. छत्त पै भयें कढ़ जईयो ।
१७९. तला की पार पै घूमन चलहैं ।
१८०. खबा पिबा कें बड़ो कर दैबो हमाओ काम हतो ।
१८१. जादां का लिखें, अपुन ज्वाब जरूर दिईयो ।
१८२. बिटिया कों लिबाउन पठाउन हम जैहें ।
१८३. खातई में उये (बाये) चिठिया मिली ती ।
१८४. चलतई चलत में बा बिरकुल हार गई ।
१८५. जे आम कैऊ दिन सें धरे हते ।
१८६. बा ऐसें अच्छें खेल रई ती ।
१८७. आकें मोदी (बनियहँ) के इतै सें लै जाव ।
१८८. इतै लोधी जादां बसत ।
१८९. जा ठाकुरन की बस्ती है (इतै ठकुरास जादां है) ।
१९०. इतै तर बामनन की बस्तीं जादां हैं ।
१९१. बूंदें परतन खन, सब ढोर इतै उतै बगर गये ।
१९२. हमाये होत भये आप बेफिकिर रऔ ।
१९३. नौगाँव कितै तर है ।
१९४. बरत आगी में बाको गोड़ो सरक परौ ।
१९५. पन्द्रा दिन के लानें हमें महाभारत बँचवाउनें ।
१९६. हम जायै (इयै) लयें जात ।
१९७. मैं नई जानत नान आहै कै नई ।
१९८. तुमाव ऐसान कबउं नई भूलहौं ।
१९९. तैं अपनौ नांव बता ।
२००. ठांड़ौ रै, तोय अबइं समझत ।
२०१. जौ तारौ जा कुची सें खुल जै ।

साँगर बेड़ा खुर्द (होशंगाबाद)

१. का तू काकी खां गव थो ?
२. दो तमाचे में तेरो मो सीधो हो जाहे ।
३. बिहाव में तुम्हें चलनो पड़े ।
४. मेले में अपन चल्हेंगे ।
२२. भाँ कौन कौन हैं ?
३३. मेरो काम इत्ती चड़िइयों से नइँ चले ।
३६. तू कौन सी किलास में पढ़े है ?
४०. वौ कहाँ गव थौ ?
४१. वाके सरीखो मैं हूँ गंगा जू में नहा हूँ ।
४९. दिखो तो जाहे ।
५१. तोहे जानो हो तो जा ।
६०. गड़ेली बड़ी लुचलुची है ।
१०१. दूद लग रव है ।
१३२. वो मामा के हां से आ रव है ।
१३४. वा ने छत पे से झाँको थो ।
१३६. वो ढोर मेरे खेत में चर रव थो ।
१४०. उन ने तुम्हें कैइ बार बुलाव ।
१४१. मैं वाहे कौ नौ बिठारे रहूँ ।
१४३. देवा वा पे पिरसन्न हैं ।
१४७. वाहे कौन ने डरवा दवो ?
१४९. वाकी दलान में सबरे इखट्टे भए थे ।
१५१. वौ बैलोंहें सपड़ा रव थो ।
१५४. झांसी तरफ ऐसो फल मिले है ।
१५५. मेरी कलम कौने चोर लई ?
१५६. मैंने सभे खबा पिया दव ।
१६०. मोहे घर जानो है ।
१६३. मेरी बित्तल में लटोरा दो दिनां काम कर जाहे ।
१६४. मेरे खेत में मुतके बनहार लगे हैं ।
१६६. मोहे खाने में कोई उजर नहीं ।
१६९. मेरे काजे दो कटोरा लि आइयो ।
१७०. मेरो खींसा रीतो है ।
१७३. कचेरी में मैं साफ साफ कह दहूँ ।
१७५. पर की साल हम नेंहरूजिहै बुलाहें ।
१७७. हँस के बात टारनो अच्छो नइँ ।
१८१. जादे का लिखूँ, जल्दी जवाब दइयो ।
१८२. मौड़ीहै लेबे भेजबे मैं जाहूँ ।
१८६. जे आम मुतके दिन से धरे थे ।
१८७. आ के बनियाँ खां से ले जइयो ।
१८८. भाँ लोदी बहुत रैवे हैं ।
१९५. एक पखवाड़े महाभारत बिठाहें ।

हीरापुर (जिला सागर)

१. आप काकी कैं आँय गए ते ?
२. दो तमाँचा मैं टेड़ौ मौं हो जैय ।
१३. जौन चौदरन (चमारन, हरवान, पिसनारी) काल पीसन आईं ती, ऊ बड़ी भँड़ऊ निकरी ।
२४. डाँकू क्याँय खौं भाग गए ?
२५. दिखियो, क्वाय जात ?
२६. जे ककरा हमाए खीसा मैं कीनें धर दए ?
२८. इतै काए खौं चले आउत औ ?
३३. हमाओ काम इत्तीं चिरइयन सैं नैं चलै ।
३९. उदनाँ घाँईं झेल न करियो ।
४७. जा लरकौरी लुगाई आय ।
५३. हम ऊ की घरैनी आँय ।
६०. भौत कौंरी गड़ैलू है ।
७१. ई गाँव मैं तुमाई बिरादरी मुतकी है ।
८२. जौ काम बुरओ नओइँ ।
८३. जा लरकी की की आ ?
८४. जौ लरका की कौ आ ?
८५. जौ हरवाव की कौ आ ?
८९. ई पै सोने कौ पानूँ आय चड़ौ ।
९१. पनइयाँ इकाउ टूट गईं ।
१०४. हम कात्त हैं मताई सें सोउ क्वा देंय ।
१०७. कै बिन्नाँ कै तैं चली जा, बरीं दिबा लें ।
१०९. इत्ती जल्दी कौनैं सीं दए ।
११६. मच्छौं खात ।
११७. हम तुम दोई खात्ते ।
११८. उऐ……ख्वा दे ।
१२३. ……खाबे में काए सकुसत ।
१३०. बौ खजुरए कौ रैबे बारौ आय ।
१३८. बे बुकइयाँ हार मैं फिरत ।
१४८. ऊ की भैंसियाँ गिलाए मैं गप गईं ।
१५१. ऊ बैलन खौं सपराउत है ।
१५२. ऊ भैंसन खौं लुराउत है ।
१५३. जा गाड़ी नै दे, क्वाय न्वाउत ।
१५६. हम नें सब खौं ख्वा प्या दओ ।
१५८. जा चिठिया नइँ बाँचतन बनत ।
१६१. हमें तनक सी कल्लू माटी लेत आइयो ।
१६७. हमें अदकारौ कछू नइँ देनैं ।
१७५. अँगाऊँ की साल पं० नेड़ू खौं बुलाएँ ।
१८९. ठकरायसो गाँव है जौ ।
१९७. हम नइँ जानत, वा खबासन आऐ, कै न आऐ ।

कबरई (जिला हमीरपुर)

१. अपुन काकी के इतै गए हते ?
२. दुय लप्पड़न माँ तुम्हार मौं सूधो हो जैहै।
४. नुमास माँ हम तुम (अपुन तुपन) सोउ चलबी (चलिहैं)।
११. जेखी अटकी हूहै, मोरे इतै आहै।
१३. जौन चमन्नी काल पीसैं आई ती, वा बड़ी चोट्टी निकरी।
१४. या चाय जी की बिटीना होय, बड़ी ऊधमिन है।
२५. द्याखौ, वा क्वाव जाय रओ है।
२६. ए ककरा मोरी खूलीथी माँ केनैं डार दए।
२७. एक पाथे जुन्डी क्यँह्माँ अँटहै।
३६. तुम कौनी दरजा माँ पर्हत हौ ?
३८. तनाँ वहैं खँ सरक जाव, काए सैं इतै चना को ब्वारा धरैं खँ है।
४१. ऊ की नाँईं महूँ गंगा मइया मँ सपरबे खँ जैहौं।
४७. ई मेहरिया लरकौरी है।
५३. मैं ओखी गुट्टी (दुल्हैन) आँव (हौं)।
५८. ऊ गुस्सैल है, बड़ी ध्यार सें गुस्साओ बैठो है।
५९. वा इकहरी द्याँव को है।
१०४. मैं कहत्तहौं, बाइयउ सें कहवाऊँ।
११०. ऊ नैं जिज्जी खाँ चाट्ठा कुर्त्ती सियाँई।
११६. मँहपर खाओ जात है।
११७. वा औ मैं दोऊ जनें खात्ते।
११८. वा बिजारउ खँ खबाय देव।
१२३. रमेश, खाँय मँ का सँकोस ?
१२४. जुहार करबो न बिसरियो।
१२५. ख्यालत-ख्यालत उब्काईं आवैं लागीं।
१२६. गाड़ी आवैं बारी (आवतई) है।
१२७. कौनौ लिखइया खँ बुलाव।
१२८. नचिनियन खँ जाँय देव।
१३६. वा गोरू मोरे खितवा माँ चरत्तो।
१४७. वा खाँ केनैं डरवा दओ ?
१५६. मैंने सब खाँ खबाय पिबाय दओ।
१५९. म्वाँखाँ चार पइसन कौ गुर चहै खँ है।
१६०. म्वाँखाँ घरै जाँय खँ है।
१६४. मोए ख्यातन माँ भौत से चैतुआ (रोजिहा) काम कर रए हैं।
१७०. हमाऔ खलीता तौ रीचो है।
१७७. हँस कैं बँहटाबो नीको नइँयाँ।
१७९. तला के किनारैं घूमैं खँ चलबी।
१८२. बिन्नू खँ लिवाबे पठाबे खँ हमई जैबी (जाहैं)।
१८८. ह्याँ लोदी भौत रअत हैं।
१९३. नौगाँव कौनी कनै है।
१९६. मैं या खँ लएँ जात हौं।

विशिष्ट शब्दावलि

कुटुम्बी और नातेदार

बाई	=	माता जी
ओरी	=	माता जी
दद्दा	=	पिता जी
लुगाई	=	औरत, पत्नी
लुगवा	=	आदमी, पति
बइयर	=	औरत, पत्नी
भौजी ~ भुज्जी	=	भाभी
लाला	=	देवर, साला, बहनोई, दामाद, ननदोई, साढ़ू
बिन्नूँ	=	बहिन, छोटी ननद
बिन्नाँ + सेली	=	मित्र (सम्बोधन)
आजी	=	पिता की माँ (सम्बो० में नहीं)
अजा	=	पिता के पिता (सम्बो० में नहीं)
बब्बा	=	पिता के पिता
बऊ	=	पिता की माँ
मम्माँ	=	मामा
माँईं	=	मामी
कक्का	=	चाचा
काकी	=	चाची
जिज्जी	=	बड़ी बहिन
जिजी	=	जिठानी
दाव्जू	=	जेठ
भउवा	=	बड़े बहिनोई
गुइँयाँ	=	साथी, सहेली
फूपा	=	फूफा
फुआ	=	फूफी
नाँती	=	पुत्र (पुत्री) का पुत्र
नाँतिन	=	पुत्र (पुत्री) की पुत्री
पन्ती	=	पुत्र (पुत्री) के पुत्र (पुत्री) का पुत्र
पन्तिन	=	पुत्र (पुत्री) के पुत्र (पुत्री) की पुत्री
सन्ती	=	पुत्र (पुत्री) के पुत्र (पुत्री) के पुत्र (पुत्री) का पुत्र
सन्तिन	=	पुत्र (पुत्री) के पुत्र (पुत्री) के पुत्र (पुत्री) की पुत्री
हल्कौ	=	सबसे छोटा
मँझलौ	=	बीच का
सँझलौ	=	मँझले से छोटा
नन्नाँ	=	बड़ा भाई
ननाँ	=	माता जी के पिता
नाँनी	=	माता जी की माँ
मौंड़ा	=	लड़का या पुत्र
मौंड़ी	=	लड़की या पुत्री
लौंडा	=	लड़का या पुत्र
लौंडिया	=	लड़की या पुत्री
डुकरा	=	बूढ़ा
डुकरिया	=	बुढ़िया
सरज	=	पत्नी के भाई की पत्नी
पुरखा	=	पूर्वज
राँड़	=	विधवा
रँडुवा	=	विधुर
नतैत	=	नातेदार
पाहुनै	=	मेहमान
घरैत	=	घर के
मौसी	=	मौसी
दयोरानी	=	देवर की पत्नी
बहिनौता	=	बहिन का लड़का
जिठौत	=	जेठ का लड़का
मौसिया	=	मौसा

शरीरांग

हाँत	=	हाथ
पाँव्	=	पैर
गोड़ौ	=	पैर
पेट	=	पेट
भत्यान	=	पेट (हेयार्थ)
हड्डा	=	हाड़
हड़्रा	=	हाड़
रकत	=	खून
गटा	=	आँख का श्वेत-भाग
नाँक	=	नाक
काँन	=	कान

कँबरई (जिला हमीरपुर)

१. अपुन काकी के इतै गए हते ?
२. दुय लप्पड़न माँ तुम्हार मौं सूधो हो जैहै।
४. नुमास माँ हम तुम (अपुन तुपन) सोउ चलबी (चलिहैं)।
११. जेखी अटकी हूहै, मोरे इतै आहै।
१३. जौन चमन्नी काल पीसैं आई ती, वा बड़ी चोट्टी निकरी।
१४. या चाय जी की बिटीना होय, बड़ी ऊधमिन है।
२५. द्यालौ, वा क्वाव जाय रओ है।
२६. ए ककरा मोरी खुलीथी माँ केनैं डार दए।
२७. एक पाथे जुन्डी क्यैह्याँ अँटहै।
३६. तुम कौनी दरजा माँ पर्हत हौ ?
३८. तनाँ वहैं खँ सरक जाव, काए सैं इतै चना को ब्वारा धरैं खँ है।
४१. ऊ की नाँईं महूँ गंगा मइया मँ सपरबे खँ जैहौं।
४७. ई मेहरिया लरकौरी है।
५३. मैं ओखी गुट्टी (दुल्हैन) आँव (हौं)।
५८. ऊ गुस्सैल है, बड़ी ध्यार सें गुस्साओ बैठो है।
५९. वा इकहरी द्यांव को है।
१०४. मैं कहत्तहौं, बाइयउ सें कहवाऊँ।
११०. ऊ नैं जिज्जी खाँ चाट्ठा कुर्त्ती सियाँई।
११६. मँहपर खाओ जात है।
११७. वा औ मैं दोऊ जनें खात्ते।
११८. वा बिजारउ खँ खबाय देव।
१२३. रमेश, खाँय मँ का सँकोस ?
१२४. जुहार करबो न बिसरियो।
१२५. ख्यालत-ख्यालत उब्काईं आवैं लागीं।
१२६. गाड़ी आवैं बारी (आवतई) है।
१२७. कौनौ लिखइया खँ बुलाव।
१२८. नचिनियन खँ जाँय देव।
१३६. वा गोरू मोरे खितवा माँ चरत्तो।
१४७. वा क्कॉ केनैं डरवा दओ ?
१५६. मैंने सब खाँ खबाय पिबाय दओ।
१५९. म्वाँखाँ चार पइसन कौ गुर चहै खँ है।
१६०. म्वाँखाँ घरै जाँय खँ है।
१६४. मोए ख्यातन माँ भौत से चैतुआ (रोजिहा) काम कर रए हैं।
१७०. हमाऔ खलीता तौ रीचो है।
१७७. हँस कैं बँहटाबो नीको नइँयाँ।
१७९. तला के किनारैं घूमैं खँ चलबी।
१८२. बिन्नू खँ लिवाबे पठाबे खँ हमई जैबी (जाहैं)।
१८८. ह्याँ लोदी भौत रअत हैं।
१९३. नौगाँव कौनी कनै है।
१९६. मैं या खँ लएँ जात हौं।

मूँ ~ मौँ	=	मुँह
आँखी	=	आँख
मूँड़	=	सिर
जी	=	दिल
घाँटी	=	गला, गर्दन
घिँची	=	गर्दन
गरौ	=	गला, गर्दन
खलरिया	=	खाल
जीब	=	जीभ
नौँ ~ न्यौँ	=	नाखून
उँगरिया	=	अँगुली
ऊँठा	=	अँगूठा
औँठ	=	होठ
जाँग ~ राँग	=	जंघा
पीँट	=	पीठ
कर्ह्या	=	कमर
कर्ह्याई	=	कमर
दयाँय्	=	बदन
डाँड़ी	=	दाढ़ी
अँसुआ	=	आँसू
टौँड़ी	=	टुड्ढी
बखौरौ	=	कंधों के नीचे का पिछला भाग
टक्नाँ	=	पिंडली और पैर का जोड़ का अंग
कौँचौ	=	पहुँचा (wrist)
पिँड़री	=	पिंडली
घूँटौ	=	घुटना
टेहुनीँ	=	कोहनी
मूँछ	=	मूछ
तरुवा	=	तालु
नकुवा	=	नासिका रन्ध्र
झुतरौ	=	उलझे बाल
पौँद	=	चूतड़

पशु-पक्षी

ढोर	=	पशु (पालतू गाय, बैल, भैंस)
गोरू	=	पशु (गाय, बैल, भैंस)
गइया	=	गाय
बैलवा	=	बैल
बधिया	=	नपुंसक किया बैल
सँड़्वा	=	साँढ़
बछ्वा	=	गाय का बछड़ा (नर)
बछिया	=	गाय का बछड़ा (मादा)
गट्टा	=	जोते जाने के लिए तैयार बैल
गट्टी	=	जोते जाने के लिए तैयार छोटे आकार का बैल
भैँसिया	=	भैँस (मादा)
भैँसा	=	भैँस (नर)
पड़्वा	=	भैँस का बच्चा (नर)
पड़िया	=	भैँस का बच्चा (मादा)
उसरिया	=	गाभिन होने के लिए तैयार भैँस
बुक्रा	=	बकरी (नर)
बुकरिया	=	बकरी का बच्चा
छिरिया	=	बकरी (मादा)
गाड़र	=	भेड़ (मादा)
मिड़्ला	=	भेड़ (नर)
मिढ़्रुवा	=	भेड़ का बच्चा
घुड़्वा	=	घोड़ा
घुड़िया	=	घोड़ी
बछिर्वा	=	बछेड़ा
बछिरिया	=	बछेड़ी
हँत्नी	=	हथिनी (मादा)
हाँती	=	हाथी (नर)
कुत्ता	=	कुत्ता (नर)
कुतिया	=	कुत्ता (मादा)
पिल्ला	=	कुत्ता का बच्चा (नर)
पिल्लिया	=	कुत्ता का बच्चा (मादा)
बँद्रा	=	बन्दर (नर)
बँदरिया	=	बन्दर (मादा)
बिल्रा	=	बिल्ली (नर)
बिलइया	=	बिल्ली (मादा)
बिलौटा	=	बिल्ली का बच्चा
सुँघर्वा	=	सुअर (नर)

सुँघरिया = सुअर (मादा)
घिट्ला = सुअर का बच्चा (नर)
घिटिलिया = सुअर का बच्चा (मादा)
हिन्नाँ = हिरन (नर)
हिन्नीँ = हिरन (मादा)
हिन्नौटा = हिरन का वच्चा
लिड़इया = सियार
लिड़ैन = सिंयारनी
लुखरा = लोमड़ी (नर)
लुखरिया = लोमड़ी (मादा)
डिँगुरा = बकरियों का बैरी जानवर (भेड़िया)
रुझवा = नील गाय
तिँदुआ = तेँदुआ
नाँहर = शेर
जनावर = सेर, तिँदुवा आदि खूं-ख्वार जानवर
गदा = गधा (नर)
गदइया = गधा (मादा)
बिघना = कुत्तों का बैरी जानवर
चौँखरो = चूहा
चौँखरिया = चुहिया
चिरवा = चिड़िया (नर)
चिरइया = चिड़या (मादा)
गलगलिया = गाय-बैलों के शरीर से निकाल कर कीड़े-मकोड़े खाती हैं।
टुइँयाँ = तोते की एक किस्म जो खूब बोलती है।
सुआ = तोता
कउवा = कौआ

बर्तन (मिट्टी, पीतल तथा बांस या लकड़ी)

गघरा = बड़ा घड़ा
गघरी = छोटा घड़ा
मटका = मोटा और बड़ा घड़ा
मटकिया = मोटा और छोटा घड़ा
चपिया = चौड़े मुँह का छोटा घड़ा
चरुआ = विशेष अवसर पर दाल, पानी पकाने का घड़ा
डहरिया = पानी भरने का बड़ा और ऊँचा बर्तन
कुठली = मिट्टी का बिना पका अनाज भरने का बड़ा और ऊँचा बर्तन
कूँड़ौ = मिट्टी का तसला
गुरसी = मिट्टी की अँगीठी
डबला = लोटा के आकार का
डबुलिया = डबला से छोटा
दिया = दीपक
डब्बी = छोटा, बत्तीदार दिया
कुँड़ी = पत्थर की कटोरी
गौरइया = गौरा पत्थर की कटोरी
नाँद = पानी भरने का चौड़ा बर्तन
टाठी = थाली
गड़ई = लोटा
तबेला = पतीली (बड़ी)
तबिलिया = पतीली (छोटी)
बटुआ = दाल या चावल बनाने का बड़ा, मोटा पात्र
बटलोई = दाल या चावल बनाने का बड़ा पात्र
बौँगना = भगौना (बड़ा)
बौँगनिया = भगौना (छोटा)
बेला = काँसे का कटोरा
बिलिया = कटोरी
कुपरा = बड़ा और मोटा थाल
कुपरिया = बड़ा और पतला थाल
हँड़ा = अनाज भरने का ऊँचा व बड़ा पात्र

कसैंड़ा	=	पीतल का बड़ा बर्तन जिसमें विवाह के अवसर पर मिष्टान्न भर कर भेजा जाता है।
कसैंड़िया	=	पीतल का छोटा बर्तन विवाह के अवसर पर मिष्टान्न भर कर भेजा जाता है।
घण्टी	=	छोटा सा लोटा
तुतइया	=	टोंटीदार घण्टी
खुरिया	=	कटोरी
खुरवा	=	कटोरा
कलसा	=	पानी भरने का लोहे का पतला घड़ा
कल्सिया	=	पानी भरने का लोहे का पतला घड़ा
तसला	=	लोहे की बड़ी चौड़ी थाली जिसमें खाने का काम नहीं लिया जाता
तसिलिया	=	लोहे की छोटी चौड़ी थाली जिसमें खाने का काम नहीं लिया जाता
डोल	=	लोहे का एक पानी भरने का पात्र
डोल्ची	=	लोहे का एक पानी भरने का पात्र
कर्हइया	=	कढ़ाई
कर्हाव	=	बड़ी कढ़ाई
तइया	=	कम गहरी, बड़ी कढ़ाई
झारौ	=	छेद-युक्त छोटी करछुल
झरिया	=	छेद-युक्त छोटी करछुल
कल्छुरी	=	करछुल
थैंता	=	छिद्र-रहित सपाट करछुल
पटा	=	पाटा (रोटी बेलने का)
बिलनाँ	=	बेलन (रोटी बेलने का)
दौल्ला	=	बाँस का एक चौड़ा मोटा बर्तन
दौरिया	=	बाँस का एक चौड़ा पतला बर्तन
टुकना	=	बाँस का एक बड़ा और चौड़ा बर्तन
टुकनिया	=	बाँस का एक छोटा परन्तु चौड़ा बर्तन
बिजना	=	पंखा
पैली	=	अनाज नापने का बर्तन
चौरी	=	अनाज नापने का बर्तन
पिरा	=	खाड़ू की टोकरी
पिरिया	=	खाड़ू की छोटी टोकरी

खाद्यान्न और साग-भाजी

सुहारी	=	पूड़ी
पुरी	=	बेसन भरी पूड़ी
लुचई	=	सादी पूड़ी
पुआ	=	मीठी पूड़ी
कुचइया	=	छोटी रोटी
गकरिया	=	बिना तवा के अँगारों (आग) पर सेंकी रोटी
माँड़े	=	घड़ें के नीचे हिस्से (कल्लौ) में सेंकी हुई बड़ी पतली रोटी
फरा	=	खौलते पानी में सेंकी रोटी
चीला	=	दोसा
महेरौ	=	मट्ठा में पकाए गए चावल
रसयावर	=	गन्ने के रस में पकाए गए चावल
थुली	=	दलिया
कलेऊ	=	नास्ता
बयारी	=	रात्रि का भोजन
पिसनौट	=	पीसने के लिए = तैयार अनाज

चून = आटा
कनक = गेहूँ का आटा
बेसन = चने का आटा
बिर्रा = गेहूँ तथा चना मिले हुए
जबर्रो = जौ तथा चना मिले हुए
बिझरा = ज्वार तथा जौ मिले हुए
गौंझई = गेहूँ और जौ मिला हुआ
जुन्डी, जुनरी = ज्वार
तिली = तिल
समाँ = सवाँ
कुदवा = कोदौ
जवा = जौ
कुदई = कोदौ के चावल
बिजरी = अलसी
कलींदो = तरबूज
डँगरा = खरबूजा
लिदरा = खरबूजा की एक किस्म
फूट = खरबूजा की एक किस्म
मुरार = मृणाल
पड़ोरा = जंगली परवल
भटा = बैंगन
भाजी = चने के पत्ते
चौंरई = पत्तेदार साग
खटुआ = खट्टे पत्तों का साग
नेबा, कुम्हड़ा = कद्दू
तेंदू = एक फल
फत्कुलियाँ = तरुई की एक किस्म
नैंना = तरुई की एक किस्म
किसुरुआ = कमल के फल
पुरैन = कमल के पत्ते
मकुइयाँ = बेर के आकार का फल

अन्य

गरदा = धूल
उरानौ = उलाहना (संज्ञा)
बींग = दोष
लाँच = घूस
बिचोई = मध्यस्थ
टिया = निश्चित समय
ऐरौ = आहट
हरयाँद = हरे पन की गंध
आंरो = आला, ताक
अकता (सैं) = पहिले (से)
पपीरा = चातक
सत्त्या = शक्ति
सरीक = दुश्मन
कहनौत = कहावत (जनोक्ति)
सार = गाय-बैल बाँधने की जगह
खोर = गली
ददोरा = चकत्ते की तरह सूजन
टूँका = टुकड़ा
सुघर = चतुर
दर = कद्र
उसनींद = उँघासी
खता = फोड़ा
पुरा-पालौ = पड़ोस
रमानैं = भेजना
बरकनैं = बचना
बमूरा = बबूल
टउका = छोटा काम
टेसन = स्टेशन
ओरौ = ओला
हीला = कीचड़
सौंज = साथ, साझा
साकौ = शौक, चाव
साँस = छेद, दरार
करोंटा = करवट
उमानौ = नाप
उलींचनैं = (पानी) फेंकना
गोरौ-नारौ = गोरे रंग का
अघानैं = तृप्त होना
अठाई = उत्पाती
उलायतैं = जल्दी
उकतानैं = जल्दी करना

घोकनैं = बिचारना
ढी = पार
घूरौ = कूड़ा खाना
परदनियाँ = मरदानी धोती
निभौली = नीम का फल
दारी = स्त्रियों के लिए गाली
हरजाई = भ्रष्टा स्त्री (गाली)
टौंका = छेद
टटवा = झाड़-फूस का दरवाजा
टेनैं = तेज करना
टटकौ = ताजा भरा हुआ (पानी)
सद्द = गुनगुना (पानी)
टिरउवा = बुलावा
रमतूला = विवाह के अवसर पर प्रयुक्त बाजा
टुनई = पेड़ का सर्वोच्च भाग
बहरा = झाड़ू
घुन्चू = घुँघचू, रत्ती
मौखात = जबानी
भबूका = लपट
मन्तक = चुपचाप
बन्नक = नमूना
बिरानौ = दूसरा
बगर = गाय-बैल बाँधने का बाड़ा
पटनैं = तय होना, निभजाना
पिरानैं = दर्द देना
पिरातौ = दर्द देने वाला दुख
पाउनौ = मेहमान
निबकनैं = ढीला पड़ना
धुंदकनैं = आग के धुआँ छौड़ने की स्थिति
थुतरी = मुँह (हेयार्थ)
थुतनौं = जानवर का मुँह
थतोलनैं = हाथ से टटोलना
ढेरनैं = केंड़ा देखना
ढूंकनें = झुककर देखना
झमाँ = चक्कर
पावनौं = नौकर चाकरों को दिया जाने वाला भोजन
छिपुरिया = जलाने की लकड़ी का छिलका
चौंतरा = चबूतरा
चिमानौं = चुपचाप
घालनैं = मारनैं
गारी-गुप्ता = गाली-गलौज
खकलनैं = डँसना
खूँटनैं = टोक देना
गतरा = टुकड़ा
उकड़ूँ = पंजों के बल बैठना
ऐना = दर्पण
ओली = गोद
औकात = हस्ती
ओंरा = आंवला
डूँड़ा = बिना सींग का
तक्का = उजाले के लिए आला
ततूरी = गर्म जमीन पर पैरों का जलना
तखरिया = तराजू
तुमरिया = लौंकी की तरह का फल
थिगरा = थेगली
थराई = एहसान
थम्मा = खम्भ, खेल का साँकेतिक स्थान
दसकत = दस्तखत, हस्ताक्षर
उड़ला = एक बार दला गया चना
निहुरनैं = झुकना
नोंचिया = चिउँटी काटना
निन्याम = बिल्कुल
राई = राहत
प्याँर = कोदौ की घास
खाँखर = तिली की घास
खाड़ू = अरहर की घास
टटेरौ = खड़ा, सूखा जुंडी का पेड़

करबी = कटे हुए टटेरे
पबरने = (प्र+ब्रज)
अनिच्छा से हटाना
पीप = मवाद
फरार = फलाहार, उपवास के बाद का
पान्नौं = उपवास के बाद का खाना
निन्नैं = बिना खाये हुए
बरेदी = गाय-बैल चराने वाले
हौदी = हौज
चिरहई = गाय-बैलों के पानी पीने का हौज
घिनौंची = स्नानागार
नरदा = नाबदान
लिड़ौरी = भूसा खाने के लिए बनाई गई जगह
जरियाँ = बेर के पेड़
जोरा = रस्सी
पगइया = रस्सी
जरीबानौ = जुर्माना
जाँतो = ऊँची चक्की
छैंरौ = छाया
छिदनाँ = छत्ता
छूँची = खाली
जड़यावर = जाड़े के कपड़ों का दान
मुंदरी = अँगूठी
पुँगरिया = नाक का आभूषण
दुर = नाक का आभूषण
पैंजना = पैर का आभूषण
गजरा = गले की माला
डेरा-डंगर = गृहस्थी का सामान
चीज-बसत = गहना
डेरा = गहना
करधौनी = कमर की साँकल
सुमी = देखा-देखी करना
समसर = बराबरी

बोरका = खरिया मिट्टी वाली दावात
किन्छा = पानी का छींटा
किन्छनैं = पानी छिड़कना
सकरौ = जूँठा
सैलानैं = बढ़ती कर देना
सुन्दाँ = सहित
सनाकत = शिनाख्त
गुजराती = इलायची
डौंड़ा = बड़ी इलायची
मउवा = महुवा
आँसौं = इस वर्ष
आँगित = पिछला या अगला साल
हँड़स = हठ
औरनैं = सूझना
अहानौ = कहावत
अनुवा = बहाना
अतर = इत्र
अत्पर = अधर
अलगोजा = बाँसुरी
उढ़रू = बिना विवाही स्त्री, रखैल
उपत = बिना बुलाए
उपनओ = बिना जूते पहिने
उसरी = बारी
औजी = बारी
उरतिया = पानी गिरने की पनाली
गारनैं घिसना
ऊननैं सुनना
झूंकनैं झींकना
झींकनैं खीचना
पसरनैं फैलना
मोनैं घी और पानी से आटा गूँधना
साननै गूँधना
कमनैं कम होना

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन के गौरवग्रन्थ

1. साहित्य का मर्म—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र
3. अकबरी दरबार का हिन्दी कवि—डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल
4. आचार्य केशवदास—डा० हीरालाल दीक्षित
5. आचार्य भिखारीदास—डा० नारायणदास खन्ना
6. हिन्दी सूफी कवि और काव्य—डा० सरला शुक्ल
7. अवध के प्रमुख कवि—डा० ब्रजकिशोर मिश्र
8. कृष्ण भक्ति काव्य में संगीत—डा० ऊषा गुप्त
9. कबीर दर्शन—डा० रामजी लाल सहायक
10. संत साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि—डा० सावित्री शुक्ल
11. जायसी की भाषा—डा० प्रभाकर शुक्ल
12. बुंदेली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन—डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल
13. वाल्मीकि रामायण और मानस का तुलनात्मक अध्ययन-डा० विद्या मिश्र
14. द्विवेदी युगीन उपन्यास—डा० शारदा अग्रवाल
15. हिन्दी कवियों को छन्दशास्त्र को योगदान—डा० मनोज
16. पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता—डा० कृष्णचन्द्र अग्रवाल
17. ब्रजभाषा सूर कोश—डा० दीनदयाल गुप्त, डा० टण्डन
18. शृंगार-मंजरी—डा० भगीरथ मिश्र
19. द्विवेदी युगीन निबन्ध—गंगाबख्श सिंह
20. परिचयी साहित्य—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
21. ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा—डा० प्रेमनारायण टण्डन
22. निरंजनी सम्प्रदाय—डा० भगीरथ मिश्र
23. हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना—डा० प्रताप नारायण टण्डन
24. अवधी में क्रिया संयुक्तता—डा० ज्ञानशंकर पाण्डेय
25. प्रसाद का मानवतावाद—डा० दीक्षित, डा० चतुर्वेदी
26. चांदायन में बैसवारी संस्कृति—डा० भुवनेश्वरी
27. मानस अनुसंधान—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव
28. अवध के स्थान नामों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन-स० प्र० अग्रवाल
29. हिन्दी साहित्य के सौ साल—डा० ब्रजकिशोर मिश्र
30. महाकवि देव : जीवनऔर काव्य—प्रो० हरिकृष्ण अवस्थी